श्री वीर कवि विरचित

जम्बूस्वामी चरित्र

• सम्पादक •

आचार्य वसुनंदी मुनि

प्रस्तुति: श्री निर्ग्रंथ ग्रंन्थमाला समिति (पंजी.)

संस्करण : प्रथम-1200 प्रतियाँ सन् 2003
द्वितीय-1200 प्रतियाँ सन् 2008
तृतीय-1200 प्रतियाँ सन् 2019
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
श्री निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, समिति (रजि०)

ग्रंथ : जम्बूस्वामी चरित्र
ग्रंथ प्रणेता : वीर कवि
पावन आशीष : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री विद्यानन्द जी मुनि
सम्पादक : आचार्य वसुनंदी मुनि
प्रकाशक : श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत), दिल्ली
मूल्य : स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला, समिति (रजि०)
मुद्रक : श्री जम्बूस्वामी तपस्थली, बोलखेड़ा, भरतपुर (राज.)
प्रिंटर : ईस्टर्न प्रेस, नारायण, नई दिल्ली-110028 फोन: 9312401976

प्राक्कथन

इस अनादि-निधन संसार में जितने भी पदार्थ विद्यमान हैं व वर्तमान में दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सब अनादि काल से हैं और अनंत काल तक रहेंगे। संसार में न कभी कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ है और न कोई नष्ट हुआ केवल पर्याय ही उत्पन्न होती है और पर्याय विध्वंस होती है।

चराचर पदार्थों से विद्यमान विश्व में रागी-वीतरागी, पापात्मा-परमात्मा, अधर्मात्मा- धर्मात्मा, दुर्जन-सज्जन, कषायी-निष्कषायी, मोही-निर्मोही, साधक-विराधक, आराधक- आराध्य, कारक-कार्य, जीव-अजीव, आस्रव-संवर, बंध-निर्बंध सब अनादि से हैं।

धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करने वाले तीर्थंकर महापुरुष अनादिकाल से है तो अधर्म की प्रवृत्ति करने वाले जीव भी रात-दिन की तरह से अनादि काल से हैं। महापुरुषों की श्रृंखला में जम्बूस्वामी का नाम भी आगम प्रसिद्ध है। जम्बूस्वामी तीर्थंकर महावीर स्वामी के पश्चात् मोक्ष जाने वाले तृतीय अनुबद्ध केवली हुए।

ये एक अनुपम महापुरुष थे, इनका वैराग्य राग की तीव्राग्नि में तपकर निखरा था। माता-पिता की आज्ञा पूर्ति हेतु ही विवाह इस शर्त पर रचाया था कि "शादी के दूसरे दिन ही दीक्षा ले लूंगा।" चारों श्रेष्ठि पुत्रियाँ ने फिर जम्बूकुमार से शादी की क्योंकि उनका मानना था कि "पुरुष का वैराग्य भी तभी तक टिकता है जब तक युवतियों के नेत्र कटाक्ष, विलास व भूभ्रंग का शिकार नहीं बनता।" स्त्री के साथ में रहकर वैराग्य को बचा पाना वैसे ही कठिन है जैसे बरसते पानी में भी सूखे बने रहना अथवा काजल की कोठरी में भी बेदग निकल आना। किन्तु जम्बूस्वामी का वैराग्य उधार का लिया हुआ या श्मशान वैराग्य नहीं था जो ओस की बूँद की तरह सूरज रूपी राग को देखकर उड़ जाये। उनका वैराग्य आत्म प्रदेशों से निसृत् था। अपनी चारों स्त्रियों को सम्बोधन देते हैं स्त्रियाँ राग की कथा कहती हैं जम्बूस्वामी वैराग्य की कथा करते हैं, इस तरह परस्पर कथायें चलती रहती हैं पुनः विद्युत्चर चोर भी मामा बनकर आता है, समझाने का प्रयास करता है। अंत में जम्बूस्वामी के सामने सभी स्त्रियों का राग विद्युत्चर चोर की विद्वत्ता व माता-पिता का मोह घुटने टेक लेता है आकर जम्बूस्वामी दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर धर्मोपदेश देते हुए मथुरा-चौरासी से निर्वाण अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।

अन्य श्रेष्ठागण, विद्युत्चर चोर व जम्बूस्वामी की स्त्रियाँ भी दीक्षा लेकर दुर्द्धर साधना कर सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थ-सिद्धि पर्यंत (यथायोग्य परिणामों के अनुसार समाधि मरणकर) देवेन्द्रे, अहमिन्द्र की अवस्था को प्राप्त करते हैं।

यह शास्त्र विपुल अलंकारों से युक्त होने पर भी प्रतिपाद्य विषय का रोचक शैली में वर्णन करने वाला है, अद्येता पढ़ते समय प्रतिपल नव-नव उत्साह के साथ अध्याय में संलग्न है। यद्यपि जम्बूस्वामी ग्रंथ विभिन्न महामनीषी आचार्य भगवंतो, कविवरों व विद्वानों द्वारा रचित है फिर भी कवि वीर द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रंथ भी वर्तमान में कोई कम महत्त्व नहीं है। यह अपना सातिशय पुण्य ही कहिये कि यह ग्रंथ दीमक, चूहों, छिपकली व गिलहरी आदि का सुपाच्य भोजन नहीं बना और न ही किसी दुकान पर रद्दी की टोकरी में पहुँच पाया और न ही किसी धर्म विद्वेषी के हाथ पड़कर अग्नि की होली रूपी हवन कुण्ड में समिधा रूप आहुति बना। अब यह ग्रंथ आप जैसे पाठक के हाथ में है, आप इस ग्रंथ का आद्योपांत स्वाध्याय करके अपने सम्यक्त्व को सुदृढ़, ज्ञान को विकसित एवं चारित्र को निर्मल बनायें।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ साधुवृंद एवं त्यागी व्रतियों को समाधिरस्तु आशीर्वाद तथ ग्रन्थ के प्रत्यक्ष व परोक्ष में सहयोगी मुद्रक, प्रकाशक, प्रूफ संशोधक, आयोजक, पुस्तक वाहक व प्रबंधक सभी (नाम आदि की चाहना से दूर सभी) सुधी श्रावकों को धर्मवृद्धि आशीर्वाद।

अलमति विस्तरेण

संयमानुरक्तः जिनचरणानुचर।
कश्चिदल्पज्ञ सूरी श्रमणः दिगम्बर
नोएडा सै.-50 (उ0प्र0)
16-07-2019

श्री शुभमिति
आषाढ सुदी पूर्णिमा
वी. नि. सं.-2076
गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर

ग्रंथकार का परिचय

मालव देश के गुणखेड़ नामक ग्राम में धर्मानुरागी, गुणानुरंजित जिनेन्द्र भक्त, षट् धर्मोनुरुप कर्तव्यपरायण, निर्ग्रंथ चरणानुचर, अर्हंत मतानुयायी लाड़वर्ग गोत्रीय महाकवि देवदत्त जी निवास करते थे। जिन्होंने 1. वरांगचरित्र (पद्धड़िया छंद में) 2. शाँतिनाथ यशोगान (चच्चरिया शैली में) 3. सुद्धय वीर कथा (काव्य शैली में) 4. नृत्याभिनय से उपयोगी अम्बादेवी रास नामक लोकोपयोगी ग्रंथों की रचना की। उस समय देवदत्त कवि का स्थान तत्कालिक कवियों में तृतीय था। प्रथम स्थान स्वयंभू कवि का व द्वितीय स्थान पुष्पदंत कवि का था। आपकी धर्मानुचारिणी, गुणानुरागी, सहधर्मिणी का नाम श्रीमती श्री संतुवा था। आपके चार पुत्र थे। जिनमें वय आदि गुणों में ज्येष्ठ व श्रेष्ठ ग्रंथ के रचयिता वीर ही थे। शेष तीन क्रमशः सीहल्ल, लक्षणांक एवं जसई थे। वीर कवि की क्रमशः 1 जिनमती 2. पद्मावती 3. लीलावती 4. जयादेवी नामक चार स्त्रियाँ थीं। प्रथम पत्नी से उत्पन्न पुत्र नेमिचन्द्र था।

वीर कवि का जन्म वि.सं. की ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। उन्होंने श्री शुभ मिती माघ सुदी दशमी विक्रम संवत् 1076 को प्रस्तुत ग्रंथ "जम्बू स्वामी चरिऊ" को अपभ्रंश में 11 संधियों में परिपूर्ण किया।

ग्रंथ का परिचय

अंतिम अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी का पावन जीवन चरित्र अनेकों आचार्य भगवंतों ने लिपिबद्ध किया है। वर्तमान काल में जम्बूकुमार चरित्र, जम्बूस्वामी रास, जम्बूस्वामी नाटक, जम्बूकुमार चौपाई, जम्बूस्वामी चतुष्पदी, जम्बूस्वामी चौढालिया, जम्बूस्वामी स्तवन, जम्बूस्वामी गीता इत्यादि शताधिक ग्रंथ लिपिबद्ध है।

जम्बूस्वामी का चरित्र-5वीं-6वीं शताब्दी में संघदास गणि द्वारा रचा गया था, इसके उपरान्त 7वीं शताब्दी में स्वयंभू देव ने रिट्ठणेमि चरिऊ में संक्षेप में उल्लेख किया है। 9वीं शताब्दी में आचार्य जयसिंह सूरि ने धर्मोपदेश माला में विवरण किया है। 9वीं शताब्दी में आचार्य गुणभद्र स्वामी ने उत्तर पुराण में 213 श्लोकों में रोचक शैली में वर्णन किया है। मुनिराज गुणपाल जी ने वि.की 11वीं शताब्दी में महाराष्ट्री (मराठी) प्राकृत में **जम्बूचरिय** लिपिबद्ध किया। महाकवि पुष्पदंत जी ने 100 संधियों में ग्यारहवीं शताब्दी में **तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु** (महापुराण) में कथन किया है। ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश भाषा में पं. सागरदत्त ने जम्बूस्वामी चरित्र की रचना की। कवि वीर ने वि.सं.1076 में जम्बूस्वामी चरित्र अपभ्रंश भाषा अत्यंत रोचक शैली एवं विपुल अलंकारों के साथ रचा। इसके उपरांत 12वीं शताब्दी में भद्रेश्वर जी ने प्राकृत भाषा में, 13वीं शताब्दी में रत्नप्रभ सूरि ने व 13वीं शताब्दी में श्री महेन्द्र मुनिराज ने, 13वीं शताब्दी

में उदयप्रभ ने, 15वीं शताब्दी में संस्कृत भाषा में जयशंखेश्वर सूरि ने 16वीं शताब्दी में प्राकृत भाषा में भुवन कीर्ति मुनिराज ने एवं 17वीं शताब्दी में आगरा निवासी पं. राजमल्ल जी ने संस्कृत भाषा में 13 पर्वों में सुगम भाषा में रचना की है।

प्रस्तुत ग्रंथ जम्बूस्वामी चरित्र वीर कवि द्वारा विरचित है इस ग्रंथ की कतिपय विशेषताऐं इस प्रकार हैं।

1. वीर कवि ने जम्बूस्वामी की चार पत्नियाँ मानी हैं जबकि कई मनीषी आचार्यों व विद्वानों ने आठ पत्नियाँ भी स्वीकार की हैं।

2. वीर कवि ने इस ग्रंथ में अलंकारों का विपुल भाषा में प्रयोग किया है जिससे कभी-कभी प्रारंभिक अध्येता तो ऊब ही जाता है, किन्तु कथ्य विषय जब समझ में आता है तब उसके मन में यही भाव आता है कि मैं इसे आद्योपात पढ़ूँ।

3. जम्बूस्वामी व उनकी पत्नियों की कथा रूप में जो वार्तायें हैं वे भवभीरुओं को वैराग्यवर्धक एवं रागियों को संसार की कारण हैं तथा वे कथाऐं श्रोता व वक्ताओं के मन को मोहित करने वाली हैं।

4. अंत में जो बारह भावनाओं का वर्णन किया है वह संक्षिप्त व सार गर्भित होते हुए भी संसार की असारता, तत्त्व प्रबोधता व जीवन की यथार्थता का प्रामाणिक कथन करने वाली है।

5. प्रस्तुत ग्रंथ में जम्बूस्वामी के संयमी जीवन, केवली काल, धर्मोपदेश व निर्वाण के बारे में अत्यंत संक्षेप में कथन किया है यदि इसका कथन भी विस्तार से किया जाता तो सोने में सुगंधिवत् आसन्न भव्य जीवों को और अधिक उपयोगी हो जाता।

6. वीर कवि ने प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं-कहीं लोक भाषा, मुहावरे, कहावतें, अत्यंत सरल दृष्टातों का भी संग्रह किया है तथा तत्कालीन वेष-भूषा, भाषा, चाल-चलन व व्यवहारों का भी समावेश किया है।

7. इस ग्रंथ की शैली उपन्यास की तरह अत्यंत रोचक, सरल सुबोध एवं तत्वावबोध युक्त है, जो भव्य जीवों को वैराग्य का प्रबल निमित्त कारण है।

इत्यलम्

पुण्यार्जक परिवार

क्र.	नाम	स्थान	निवासी
1	अनिल कुमार जैन (नेपाल)		दिल्ली
2	डा. नीरज जैन	पश्चिम विहार	दिल्ली
3	रमेश चंद गर्ग	सफदरजंग एन्कलेव	दिल्ली
4	रिषभ जैन	रोहिणी	दिल्ली
5	अनिता जैन	ग्रीन पार्क	दिल्ली
6	पी.सी. जैन	कोशी वाले	दिल्ली
7	निकुंज़ जैन	जी.के.-1	दिल्ली
8	राजीव जैन	सी.आर. पार्क	दिल्ली
9	प्रवीन जैन (टोनी)	ग्रीन पार्क	दिल्ली
10	श्रवण कुमार जैन	ग्रीन पार्क	दिल्ली
11	मुकेश कुमार जैन	यमुना विहार	दिल्ली
12	मीनु जैन	कृष्णा नगर	दिल्ली
13	रश्मि कांत सोनी	जयपुर	जयपुर
14	आशुतोष जैन	कृष्णा नगर	दिल्ली
15	नवनीत जैन	यमुना विहार	दिल्ली
16	डा. अरुण कुमार जैन (यू.एस.ए.)	रोहिणी	दिल्ली
17	योगेश जैन	मेरठ	मेरठ
18	अजय जैन	मेरठ	मेरठ
19	अक्षत जैन	मेरठ	मेरठ
20	राकेश जैन	रेस वाले	मेरठ
21	विपिन जैन	असौड़ा वाले	मेरठ
22	अंकुर जैन	अरिहंत ज्वैलर्स	मेरठ
23	अशोक जैन	हर्रा वाले	मेरठ
24	अलोक जैन	सरधना	मेरठ
25	अशोक जैन शाहबजाज		अजमेर
26	पूरन चंद जैन		अजमेर
27	वीरेंद्र जैन	बाड़मेर वाले	अजमेर
28	राजेन्द्र जैन	केलवा वाले	अजमेर
29	पवन बढ़ारी		अजमेर
30	गौरव जैन		एटा
31	विनोद जैन	मिलेनियम	फिरोजाबाद

क्र.	नाम	स्थान	निवासी
32	सोनू जैन (स्पोर्ट्स)		फिरोजाबाद
33	महावीर जैन संदीप जैन		फिरोजाबाद
34	अनिल जैन		ग्वालियर
35	पवन चौधरी		अलवर
36	विजय जैन		अलवर
37	रमेश जैन		अलवर
38	घनश्याम जैन		अलवर
39	अशोक जैन	शास्त्री पार्क	अलवर
40	सुरेंद्र जैन		अलवर
41	गुलाब चन्द जैन	गुलावली मसाला	अलवर
42	अरून जैन		अलवर
43	एन.के. जैन		अलवर
44	दिलीप जैन		अलवर
45	पवन जैन भौंच		अलवर
46	मनोज कुमार जैन		अलीगढ़
47	देवेंद्र जैन	रामपुर वाले	नोएडा
48	अजय जैन	सैक्टर 61	नोएडा
49	अनिल जैन	सैक्टर 41	नोएडा
50	सचिन जैन	वैशाली	गाजियाबाद
51	दर्शन दयाल जैन		हापुड़
52	चन्द्र सैन जैन		पलवल
53	ओम प्रकाश जैन		कोसी
54	श्रीमती रजनी जैन	कामा	भरतपुर
55	राकेश कुमार जैन		मेरठ
56	शीतल प्रसाद जैन		दिल्ली
57	राजेश कुमार जैन	यमुना विहार	दिल्ली
58	सुरेश कुमार जैन	गौतम नगर	दिल्ली
59	विनोद कुमार जैन	इंदिरा कॉलोनी	फिरोजाबाद
60	लिपि जैन		नोएडा
61	अमित जैन		नोएडा
62	आवेश जैन		फरीदाबाद

ॐ

वीर-विरइउ

जंबूस्वामि चरित्र

संधि-1

(मंगलाचरण)

महावीर भगवान् के चरणाग्र (अंगुष्ठ) से आक्रान्त होने पर मंदराचल के कंपायमान होने से (अभिषेक) कलशों से छलकते हुए जल की सूर्य से टकराती हुई छिटकारें जयवंत हों ॥1॥ उन (महावीर भगवान्) की जय हो जिनके जन्माभिषेकनिमित्तक जल के पूर से पांडुवर्ण होता हुआ कनकाचल (सुवर्णगिरि मेरु) हिमगिरि की शंका उत्पन्न करता हुआ शोभायमान हुआ ॥2॥ वे जिन भगवान् जयवंत हों जिनके अरुण-नख रूपी मणियों में ही अपने समस्त चक्षुओं को लगा देने वाला सहस्राक्ष (इन्द्र) भगवान् के शेष सब अवयवों को न देख सकने के कारण दुस्थ अर्थात दरिद्र व परिसीमित अर्थात् अपर्याप्त नेत्रों वाला हुआ ॥3॥ घूमती हुई (स्वऋद्धिनिर्मित सहस्र) भुजाओं के वेग से समस्त ज्योतिर्गणों को घुमा देने अर्थात् स्वस्थान-भ्रष्ट कर देने के कारण रात्रि है या दिन ऐसी, अथवा रात में दिन और दिन में रात ऐसी; अथवा क्षण-क्षण में कभी दिन कभी रात, ऐसी शंका उत्पन्न करनें वाले सुरपति ने जिनके सामने अभिराम किया, ऐसे जिन भगवान् जयवंत हों ॥4॥ उन महावीर भगवान् की जय हो जिनके द्वारा अपने (आत्म) ध्यानरूपी अनल में रतिसुख

अर्थात विषय सेवन, अथवा रति अर्थात निजभार्या, उसके साथ काम भोग का भाव भस्मसात् कर दिया गया है और जिनके ज्ञान में समस्त भुवन इस प्रकार स्पष्ट झलकता है जैसे आकाश में एक नक्षत्र ॥5॥ अपने दोनों पार्श्वों में स्थित नमि तथा विनमि की कृपाणों में जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, जिनसे ऐसा लगता है कि मानो तीनों लोकों का धर्मानुशासन करने के लिए उन्होंने अपने ही अन्य युगल रूप निर्माण किये हैं, उन ऋषभजिन की जय हो ॥6॥ श्री पार्श्वनाथ की जय हो जिनके शरीर की नीलिमा से विलक्षण सर्प (धरणेन्द्र) का मणिगर्भित फणाटोप विद्युत् की छटा से युक्त (आषाढ़ के) नये मेघ के समान शोभायमान है॥7॥

पांचों परमगुरुओं (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु) को प्रणाम करके मोक्षरूपी महागति अर्थात् श्रेष्ठ गति को जाने वाले अन्तिम केवली जंबूस्वामी की कथा यथा परम्परा प्रारम्भ की जाती है। मैं उन वर्द्धमान् जिनेश्वर को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने लोक में वर्द्धमान् अर्थात् सर्वोत्कृष्ट धर्मरूपी तीर्थ का प्रवर्तन किया व देवताओं सहित असुरों-द्वारा जिनका जन्माभिषेक किया गया और जो संसार रूपी समुद्र से पार उतारने के लिए सेतु रूप हैं; जिन्होंने अपने चरणों के अग्रभाग (अंगुष्ठ) से स्थिर मेरु पर्वत को भी कम्पायमान कर दिया व इस प्रकार शक्र देवेन्द्र की शंका (कि यही जिन हैं या नहीं; अथवा कहीं भगवान् का शिशु शरीर इतने सुदीर्घ प्रमाण वाले एक हजार आठ कलशों के जलाभिषेक के पूर में बह तो नहीं जायेगा) को नष्ट कर दिया; तथा जिन्होंने अपने नखों की कान्ति से चन्द्रमा व सूर्य की प्रभा को जीत लिया है और समस्त लोकालोक की स्थिति को जान लिया है; जगत् को (धर्म का) शासन देने के लिए जिन्होंने समवशरण के साथ बिहार किया, एवं जो चतुर्गति (देव, मनुष्य, तिर्यंच व नरक) के दुःखों से पीड़ित जीवों के लिए शरणभूत हैं; तथा जिन्होंने अपने ध्यानरूपी अग्नि से कर्मबन्ध को भस्मसात् कर दिया है और जो भव्यजनों रूपी कमल समूह के लिए सूर्य के समान हैं; व जिन्होंने चारुमूर्ति अर्थात् अत्यन्त शोभावती, शुद्धवर्णा व्र श्रेष्ठ शुद्धात्मस्वरूप लक्ष्मी का आलिंगन किया एवं रत्नत्रय

(सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) के द्वारा परम मुक्ति अर्थात् सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों सहित सिद्धावस्था को प्राप्त किया; जो त्रैलोक्य के स्वामी हैं तथा शत्रु व मित्र में समान भाव रखते हैं व जिन्होंने अपनी वचन सुधा से सभी जीवों को (सद्गति रूप उपलब्धि का) आश्वासन दिया है। ऐसे धर्मरूपी तीर्थ के प्रवर्तक होने से तीर्थंकर, केवलज्ञान के धारक, शाश्वतपद (मोक्ष) के स्वामी, जरा, मरण व पुनर्जन्म का विध्वंस करने वाले सन्मति (महावीर) देव मुझे सन्मति अर्थात् सद्बुद्धि प्रदान करें ॥1॥

वीर भगवान् के चरणों को प्रणाम करके मंदमति वीर कवि विनयपूर्वक कहते हैं-जो दूसरों के गुण ग्रहण करने के लिए ही जीवित अर्थात् जागृत व उद्यत रहता है और स्वप्न में भी लेशमात्र दोष नहीं देखता, ऐसा स्वभाव से स्वच्छमति सज्जन (किसी के) गुण दोषों की परीक्षा में अयोग्य होता है-अर्थात् उस ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं जाती परन्तु दुर्जन अपने अभ्यास (आदत) दोष से जानता हुआ भी दूसरों के गुणों को तो ढाँकता है और झूठे दोष को प्रकाशित करता है। दूसरे के गुणों का निराकरण करने का जिसका स्वभाव है, ऐसा दुर्जन मेरे इस निर्दोष काव्य में दोष न ढूंढ़ सकने के कारण निराश होगा। मैं हाथ जोड़कर विद्वानों का अनुस्मरण तथा मध्यस्थ जनों की अभ्यर्थना करता हूँ। कोई अपशब्द देखकर उसे मन में धारण न करें। उसे दूर से छोड़कर सुंदर पद रचना ही कर लेवें। काव्य कर्तृत्व ही जिसका एक मात्र गुण है, वह काव्य रचना ही करता है और कोई अन्य उसका व्याख्यान करने में निपुण होता है। एक पाषाण स्वर्ण को उत्पन्न ही करता है, और एक अन्य पाषाण (कसौटी) उसकी परीक्षा ही करता है। ऐसा तो कोई विरला ही होता है जो उभयमति अर्थात् दोनों प्रकार की (काव्य-रचना व काव्य-परीक्षा अथवा व्याख्यान करने की) प्रतिभा से सम्पन्न हो। ऐसा यदि कोई हो भी जो श्रुति-सुखकर (कर्णमधुर) स्वर में उसे पढ़े और मन में स्फुरायमान होने वाले काव्यार्थ को अपने वचन में रखे तथा रस और भावों से विद्वज्जनों का अनुरंजन करे तो वह (महाकवि) स्वयम्भू को छोड़कर अन्य कौन हो सकता है? ऐसा विद्वान भी यदि (अपने ज्ञान का) गर्व नहीं करता, तो उसके लिए

ही ये वातवलय त्रिभुवन को धारण करते हैं (अर्थात् ऐसे विद्वान् से ही यह त्रैलोक्य अलंकृत व सार्थक होता है)। जिस प्रकार कोई चोर अपना स्वरूप परिवर्तन (ब्राह्मणादि का वेष बनाकर) करने पर भी प्रकट सैंध लगाने के कारण बिना कहे भी विशेषज्ञों-द्वारा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार दूसरों की काव्य रचनाओं में वर्ण या शब्द-परिवर्तन करने मात्र से काव्य रचना करने वाला कवि अपने काव्य गठन में बिना कहे ही काव्यालोचकों द्वारा पहचान लिया जाता है (कि यह चोर कवि है) ॥2॥

सुन्दर काव्य रचना में लगे हुए मन वाले मुझ जड़बुद्धि ने कौन-सी सामग्री एकत्र की है? क्या मैंने प्रदीप नामक शब्दशास्त्र को प्राप्त कर लिया है जिससे कि वस्तु का शुद्ध वचनों-द्वारा वर्णन किया जा सके? अथवा क्या मैंने वन में जाकर (ऋषि-मुनियों से) छंद सहित निघंटु नामकोश को सुना है? बल्कि वन में स्वछन्द तथ निर्घंट-घंटा रहित गज होता है, ऐसा मैंने सुना है। अथवा क्या मैंने गो-अर्थात् वाणी में रस के विचार तथा तर्क (शुद्धता) को जाना है? बल्कि गोरस-अर्थात दुग्ध का विकार तक होता है, यही मैंने जाना है। महाकवि-द्वारा रचे गये काव्यभेद (काव्य विशेष) सेतुबंध को भी मैंने नहीं सुना; केवल रामायण में सेतु (बंधन) की बात सुनी है। शास्त्र रचना में गुण और वृद्धि (व्याकरण की प्रक्रियाएँ) के नाम पर, मैंने सज्जन में गुण तथा सुत के द्वारा ख्याति-प्राप्त करने में वृद्धि (अर्थात् वंशवृद्धि-वंशोन्नति) की बात सुनी है, और वृत्त का अर्थ मैंने केवल चारित्र-अर्थात आचरण से समझा है, वृत्त अर्थात् एकाक्षरादि छंदसमूह को मैंने नहीं समझा, उसी प्रकार वरण अर्थात् पाणिग्रहणमें पयःबंध (पद बंध) अर्थात् जलार्पण के द्वारा वर-वधू का संयोग कराया जाता है यही मैंने जाना है; परन्तु गद्य-पद्यमय पदबंध अर्थात् पद रचना-द्वारा महाकाव्यों की रचना करना मैं नहीं जानता। दुर्वचन अर्थात् (वैयाकरणों के अनुसार) 'अपशब्द' के नाम पर मैं दुर्वचन बोलने वाले दुष्ट चुगलखोर को ही समझता हूँ व समास (कर्मधारय, तत्पुरुष आदि) के नाम पर मास युक्त संवत्सर को। भोलेपन से ऐसा समझकर कि मैं काव्य रच सकूंगा, मैं कविकर्म में प्रवृत्त होता हूँ, और इस प्रकार मैं

भुजाओं-द्वारा सागर को तर जाने की इच्छा करता हूँ। दीर्घवृक्ष के फलों की ओर हाथ बढ़ाने वाले श्रद्धालु पंगु के समान ही मैं लोकों में विकल प्रयास, अर्थात् असफल प्रयत्न होऊगाँ। अथवा महाकवियों द्वारा इस विषय के प्रबन्ध (महाकाव्य) की रचना की गयी है, तब क्या आश्चर्य जो मैं भी वैसी ही रचना करूँ, क्योंकि हीरे से बिंधे हुए महारत्न में धागा भी प्रवेश कर जाता है॥3॥

इस देश में अन्तिम तीर्थंकर-महावीर के चरणों का भक्त, गुलखेड का निवासी, शुभ आचरण वाला, श्री लाडवर्गगोत्री, निर्मल यशवाला और (काव्य रचना रूपी) कसौटी पर कसा हुआ महाकवि देवदत्त था, जिसने पद्धड़िया छंद में नाना भावों से युक्त वरांगचरित का उद्धार किया तथा काव्य गुणों व रसों से विद्वत्सभा का मनोरजंन करने वाली सुद्धयवीर कथा(?) का विस्तार से वर्णन किया। उन्होंने सरस चच्चरिया बंध में शान्तिनाथ का महान् यशोगान किया; तथा जिन भगवान् के चरणों की सेविका अंबादेवी का रास रचा जिसका जिन भगवान् के चरण सेवकों-द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है। ऐसे सम्यक्त्व रूपी महद्भार की धुरा को धारण करने वाले और सरस्वती देवी से वर प्राप्त करने वाले उसे (देवदत्त) कवि को संतुवा (भार्या) के गर्भ से विनय सम्पन्न वीर नाम का प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र को अस्खलितस्वर अर्थात् अव्याबाध संस्कृत कवि जानकर पिता ने आदेश दिया-लोकप्रिय प्राकृत प्रबन्ध (शैली) में काव्य-रचना करो अन्य रचना से क्या? ॥4॥

मालव देश में धन धान्य से समृद्ध सिंधुवर्षी नाम की नगरी है। वहाँ धाकड वर्ग वंश का तिलक भूत, मधुसूदन का गुण निधान पुत्र तक्खड नाम का श्रेष्ठि रहता है, जिसके यश का डंका तीनों लोकों में बजता है। महाकवि देवदत्त के सज्जनों को सुख देने वाले उस परम सुहृत् ने वीर कवि को कहा-चिरकाल से कवियों-द्वारा अनेक ग्रन्थों में उद्धृत जंबूस्वामी चरित्र का संक्षेप में कथन करो तब 'आर्यजनों को व्यर्थ विस्तार-अर्थात् पुनरूक्ति न मालूम हो' इस प्रकार मन में शंकित होकर वीर कवि ने कहा-हे भव्यबंधु! (मेरे-द्वारा) रचित संक्षिप्त कथा विशिष्ट सभा अर्थात् विद्वज्जनों को अनुरंजन

कैसे कर सकेगी? इसके अनन्तर पिशुन रूपी सिंहों के लिए अष्टा पद के समान, तक्खड के कनिष्ट भ्राता भरत ने कहा-हे दिव्यध्वनि (देवों के समान सुमधुर वाणी) वाले वीर कवि सुनो, विस्तार और संक्षेप में बड़ा भारी अन्तर होता है; नदी, सरोवर और चरहियों में बहुत सा जल है, वह सभी सरस नहीं माना जाता; परन्तु करवे (छोटा पात्र) में रखा हुआ थोड़ा-सा विमल जल लोगों के द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है॥5॥

और भी-भरत के इस वचन का समर्थन करते हुए श्रेष्ठि श्रीतक्खड ने ऐसे वचन कहे जिन से वीर के मन में काव्य रचना का उद्यम (उत्साह) बढ़े। उन्होंने कहा—वे श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकते जिनकी परिपुष्ट भारती महान् प्रबन्धों (महाकाव्यों)-द्वारा रस व भावों की वृष्टि करती हुई लोक में विस्फुरायमान नहीं होती। वर्णों (रंगों) के उत्कर्ष (अर्थात् चटकदार रंग चढ़ाने में) अत्यन्त चतुर धातुवादी तथा वर्णों के उत्कर्ष में अर्थात् बड़े-बड़े व सुंदर शब्दों के प्रयोग में चतुर कवि इस लोक में बहुत हैं परन्तु रस (धातुरस) की सिद्धि से अर्थ अर्थात् सुवर्ण का संचय करने वाला धातुवादी तथा काव्य रसों की सिद्धि सहित सुंदर अर्थ का संचय करने वाला कवि कोई एक विरला ही होता है। जगत् में वे कवि विजयी हों जिनकी वाणी अदृष्टपूर्व (अभूतपूर्व) अर्थों के विषय में धरणीतल को प्रकाशित करती हुई तथा उपयोग-विशेष के द्वारा गूढ़धन को प्रकाशित करने वाली साधक वर्त्तिका के समान प्रवृत होती है। जिनके मतिरूपी फलकपर समग्र शब्दसमूह (संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश,) रूपी कन्दुक नाना अर्थों में प्रवृत्त होती हुई क्रीड़ा करती है; उनके भी ऊपर और किसकी बुद्धि प्रतिस्फुरित हो सकती है। और क्या तुम अपने ही रचे हुए इस वृत्त को स्मरण नहीं करते-'ऐसा कोई विरला ही अन्तर्वेदी कवि होता है जिसके हृदय में वचन-परिपाटी की घटना करते हुए वाणी के अगोचर कोई अभूतपूर्व ही अर्थ स्फुरित होता है, जिसके अर्थों को कहने के प्रयास में सरस्वती भी बड़ी विषम अनात्मनीय (असाधारण) चेष्टा का अनुभव करती है और कष्ट मानती है।

ये वचन सुनकर जिनमति के पति (वीर कवि) ने उत्साह से कथा प्रारम्भ की। यहाँ पर धनकण से समृद्ध, महीतल में सुप्रसिद्ध मगध नामका देश है। वह धर्माचार से युक्त है और दूषण रहित है, अतः पांडवनाथ युधिष्ठर के समान भारत (महाभारत, पक्ष में भारत देश) का भूषण है। वह सब देशों में श्रेष्ठ कहा जाता है, अतएव सैकड़ों पक्षियों में हंस के समान तथा विषयों में श्रेष्ठ तरुणि जनों के स्तन मण्डल के संस्पर्श के समान क्यों न वर्णनीय हो? अपने उद्यानादिकों में वह पक्षियों के स्वर (वी+स्वर) से संयुक्त तथा जल और शस्य (नीर+शस्य) से अति मनोहर होता हुआ कुकविकृत काव्य कथा बंध के समान स्वरहीन (विस्वर) है जो काव्य रस के ज्ञान से हीन ग्राम्य पुरुष को खूब मनोहर लगता है। जहाँ की जलवाहिनियाँ जलवाहिनी (पनिहारिन) कामिनियों के समान हैं, वहाँ की पनिहारिनें मंद-मंद गमन करने वाली तथा विशाल, गंभीर व सुपुष्ट नितम्बों वाली हैं, उसी प्रकार वहाँ की जववाहिनयाँ मंद-मंद प्रवाह वाली तथा अति विशाल व गम्भीर ह्रदों रूपी सुपुष्ट नितम्बों को धारण करने वाली है। वहाँ की पनिहारिनें चंचल मत्स्यों के समान दीर्घ व चंचल नेत्रों वाली, तथा विकसित इंदीवर के समान प्रफुल्लित एवं सुंदर मुखवाली हैं, उसी प्रकार वहाँ की जलवाहिनियाँ चंचल मत्स्यों रूपी दीर्घ व चंचल नेत्रों वाली तथा विकसित इंदीवरों रूपी प्रसन्न व सौम्य मुखवाली हैं, वहाँ की पनिहारिनें जलगजों के कुंभस्थलों के समान स्थूल स्तनों को धारण करने वाली तथा फेणावलि के समान शोभायमान श्वेत (मुक्ता) हारों को धारण करने वाली हैं, उसी प्रकार वहाँ की जलवाहिनियाँ जलहस्तियों के कुंभस्थल रूपी स्थूल स्तनों को धारण करने वाली तथा फेणावलि रूपी धवलहारों से शोभायमान है, जिस प्रकार पनिहारिनें पहने हुए वस्त्रों तथा घड़ों में छलकते हुए जल के खल-खलरव एवं कटिमेखला (की किंकिणियों के मधुर कलरव) से सुसज्जित रहती हैं, उसी प्रकार जलवाहिनियाँ उभय तटों के द्रुमोंरूपी पहने हुए वस्त्र एवं जल के खल-खल रव रूपी कटिमेखला (की किंकिणियों के मधुर रव) से सुसज्जित हैं। उस मनोहर देश को छोड़कर नदियाँ अपेय विष (जल व हालाहल) के आकर

(सागर) का अनुसरण करती है; अथवा जड़मति (पक्ष में जलमयी) स्त्रियों में कहीं विवेक देखा जाता है? वे तो केवल सलोने (सुन्दर, पक्ष में सलवण-खारा) का आदर करती हैं ॥6॥

जहाँ के सरोवर कुकलत्रों के समान हैं, कुकलत्र सैकड़ों उपहसनीय मुखों (या पात्रों अर्थात् उपपतियों?) वाली तथा अविनयशील होती हैं; उसी प्रकार वहाँ के सरोवर हसित अर्थात् विकसित शतपत्रों से युक्त तथा अविनयशील अर्थात् जल के निरन्तर गमनागमन से युक्त हैं। वे सरोवर तटवर्ती वृक्षों से छाये रहने के कारण शीतल जलवाले तथा सज्जनों के हृदयों के समान गंभीर हैं। वहां के उद्यान यौवन के समान हैं, यौवन में मार अर्थात् काम खूब बढ़ता है। और प्रिय जनों का कामोद्रेककारी आलाप ही उसमें सार होता है, उसी प्रकार वहाँ के उद्यानों में मार (हड) वृक्ष खूब बढ़ रहे हैं और प्रियाल वृक्षों की पंक्तियों तथा पानी से सार युक्त अर्थात् समृद्ध हैं। वहाँ (पके हुए फलों के गुच्छों से) निरन्तर गिरता हुआ द्राक्षारस कभी क्षय नहीं होता और स्थल कमलिनियों के पत्रों पर पड़ा हुआ पिया जाता है। जहाँ शुकों के द्वारा मुख चूंबे हुए (चोंच मारे हुए) लटकते हुए परिपक्व कदली फलों के गुच्छे (केले) खाये जाते हैं। और जहाँ (सुधातुल्य मीठा द्राक्षारस पीने व मीठे फल खाने से जिनका) मुँह बेस्वाद हो जाने से जिन्हें और कुछ खाने से अरुचि उत्पन्न हो गयी है, ऐसे पथिकों के द्वारा मिरिच की बेल चखी जाती है। ऐसे (प्राकृतिक) आहारों से जहाँ क्षुधा क्षय हो जाती है, वहाँ अपने घरों से संबल (पाथेय) लेकर नहीं चला जाता तथा जहां नागलता (पान की बेल) से वेष्टित पूगवृक्ष फलों के भार रूप पूर्ण सफलता को प्राप्त कर झुक रहा है। उस देश में गोकुल के आंगनों में नीले वस्त्रों को धारण करने वाली तथा अत्यन्त घने स्तनों व रमणों के भार से आक्रान्त रास खेलती हुई गोपियों के द्वारा (पथिकों के लिए) पथ में गमन करने में विलंब कर दिया जाता है।

जहाँ कलम नामक धान की बालों की सुगंधि से युक्त, समस्त रंध्रों को भरने वाला (व रोमं-रोम पुलकित करने वाला) समीर बहता है। जिस देश की भूमि बड़ी-बड़ी हिलती हुई मंजरियों के बहाने मानो रसरंजित

(मदमत्त) होकर घूम रही है, श्रेष्ठ मूंग की कोमल सेम युक्त फलियों से मानो रोमांचित हो रही है; चपल कोंपलों के ऊपर के फलियों के गुच्छों के द्वारा मानों उछल रही है; विकसित मुख अर्थात् खिले हुए कर्पासफलों से मानो हँस रही है और झुकते हुए नलों (सरकंडे) के द्वारा मानो नाच रही है, फूले हुए सण से मानो मुख को सजा रही है और फूली हुई खेती से मानो सर्वांग उत्कर्षित अर्थात् उल्लसित हो रही है ऐसा वह देश इक्षु रस निकालने के यंत्रों की चीत्कारों-द्वारा मानों सीत्कारें छोंड़ते हुए नाच रहा है। अपनी सरल अंगुलियों को उठा-उठाकर बोलने वाले अपने कुटुम्बी अर्थात् किसान गृहस्थों के द्वारा जो अपनी ऋद्धि-समृद्धि को प्रकट करता है। देवकुलों से विभूषित वहाँ के ग्राम ऐसे शोभायमान हैं मानो विचित्र भवनों वाले स्वर्ग अवतीर्ण हो गये हों। उस देश में परिखा और प्राकारों से घिरा हुआ इंद्रपुरी की शोभा को भी मात करने वाला अत्यन्त मनोहर राजगृह नाम का पत्तन है ॥8॥

जहाँ गोपुर भटों से सुरक्षित होने से (शत्रुओं के लिए) दुर्दम्य अर्थात् दुर्जेय हैं और जहाँ गमन करती हुई पनिहारिनों के द्वारा कर्दम कर दिया जाता है; वहाँ हाट-मार्गों से चलता हुआ नागर (?) समुदाय परस्पर के अंगों से खूब संघट्टित होता है, कामिनियों के स्वेद से चुये हुए कुंकुम (की कीचड़) में वह धंस जाता है और शिर से खिसकी हुई पुष्पमालाओं में स्खलित होता है। जहाँ ऊपरी तल के प्रासाद के भीतर के गवाक्षों में कामोद्रेक से पांडुरवर्ण कपोल वाली कामिनी अपने श्वास की (सुगंधित) मरुत् आकृष्ट हुई भ्रमरपंक्ति सहित मुखमंडल दिखला रही हैं और राहु-शशि संयोग अर्थात् चन्द्र-ग्रहण की भ्रान्ति उत्पन्न करती है वहाँ स्फटिक शिलाओं से घटित घर प्रांगण पद्मराग से मिश्रित मणियों की रंगोली दिखाई देती है। देदीप्यमान रविकांतमणि की किरणों से जहाँ अन्धकार नष्ट हो जाता है, अतः वहाँ यामिनी केवल निद्रा से ही जानी जाती है। उन घरों के पृथ्वीतल इन्द्रनील मणियों से खचित हैं, जिनकी लहराती हुई किरणें चंचल सर्पों की शंका उत्पन्न करती है, इसलिए वहाँ मयूर पुनः-पुनः अपने चरणों से भूमिको आक्रान्त (आहत) करके (वास्तविक सर्प को न पाकर) अपने चंचु को कुंचित करके सिर धुनता है।

वहाँ घर-घर में गोरी सीमन्तिनियाँ हैं (स्वर्ग में एक ही गौरी हैं) तथा घर-घर में शक्र और धनद कुबेर जैसे धनी लोग हैं (स्वर्ग में एक ही शक्र और एक ही धनद है)। इस प्रकार अपनी ऋद्धि की तुलना में वह नगर स्वर्ग को तुच्छ धनवान्, दु:स्थित और दयनीय मानता है।

उस श्रेष्ठ नगर में घर-घर में ऐसा मनोहर तूर बजता है, मानो दुर्दिन में मेघ गरजता हो। घर-घर में गंधर्वों जैसा श्रवण सुखद वीणा का संगीत सुनाई पड़ता है। जहाँ घर-घर में नूपूर ध्वनि करती हुई गोस्वामिनियाँ (गोपियाँ), (नूपुर ध्वनि की हंसों की ध्वनि से समानता के कारण) हंसों को (भ्रान्ति उत्पन्न करके अपने पीछे-पीछे अनुगमन कराती हुई मानों उन्हें) चलना सिखलाती हैं। जहाँ हाथ में लिए हुए दर्पण में अपनी ही सूरत देखकर आसक्त अर्थात् मत्त हुई मुग्धा के द्वारा अधरों की उपाधि अर्थात् सामीप्य जन्य ईषत् लालिमा को न समझकर धवल बनाने की इच्छा से अपनी दंतपंक्ति को पुन:-पुन: छीला जाता हैं जहाँ की कामिनियाँ संभोग सुख देने वाले (अथवा विरचित भोग अर्थात् नाना प्रकार के वस्त्राभरणादि से सजे हुऐ) अपने प्रमियों से सनाथ हैं, अत: वे चंदन वृक्षों की उन शाखाओं के सदृश हैं जो विरचित भोग अर्थात् फैलाये हुए फणों वाले भुजंगों (सर्पों) से युक्त होती हैं। जिनका सकल कला युक्त रूप देखकर हेला से अर्थात् अनायास ही महेश्वर का चित्तविजित हो गया, अत: विजय की आकांक्षा करने वाला अनंग उन त्रिनेत्र (महादेव) के भय से त्रस्त हुआ उन कामिनियों के अंगों की शरण में प्रविष्ट हो गया। जहाँ कामदेव ने घने स्तनोंरूपी कलशों में चूचकों रूपी मुद्रा (मुहर) लगाकर उनमें अपना सर्वस्व श्रृंगार (सौंदर्य) स्थापित करके अधरों में काममद से भरा मधु डालकर अपना धनुष चढ़ाकर उनके भ्रूभंगों में छोड़ दिया है, अर्थात् अपने धनुष को तो भौहों को समर्पित कर दिया और अपने बाण कामीजनों के मन की कदर्थना करने वाले उनके नयन-कटाक्षों में समर्पित कर दिये हैं, उन रमणियों का जंघाओं रूपी स्तम्भों से मंडित श्रोणितलरूपी भुवन मानो रतिका आवास-भवन ही है। ऐसे नगर में श्रेणिक नामका राजा रहता है, जो रूप में रतिपति को भी जीतने वाला है, तथा लवणोदधि के कूल

तक पर्वतों सहित समस्त धरामंडल का धारक अर्थात् स्वामी व करपालक अर्थात् कर ग्रहण करने वाला है ॥10॥

जिसने गहन वनों व पर्वतों तथा व्यवधान रहित देशों वाले समस्त मांडलीकों को साथ लिया है एवं देवलोक को भी बलपूर्वक वश में कर लिया है, तथा जिसके भुजदंड में जयश्री का वास हैं जिसका यश मरकत (नील, कृष्ण) वर्ण कृपाण से उत्पन्न होने पर भी अमरगज अर्थात् ऐरावत हाथी के (धवल) वर्ण का है, अथवा अमर गत वर्ण अर्थात् देवताओं तक भी उसकी स्तुति गायी जाती है। जिसका अतृप्त प्रतापाग्नि शत्रुरूपी ईंधन के क्षीण हो जाने पर (अतिरिक्त ईंधन की) खोज करता हुआ शत्रुओं की विधवा हुई पत्नियों के द्वारा अपने हृदय में निरन्तर उनका स्मरण किया जाता है, अत: शत्रुपक्ष वहाँ अवश्य प्राप्त होगा, इस हेतु से उसे दहन करने की इच्छा से चला व रिपु-गृहिणियों के हृदयों में (अपने मृतपतियों के शोकाग्नि के रूप में) प्रज्वलित हो उठा। जो नृप नीतिरूपी तरंगिणी के लिए सागर है, वही सज्जनों रूपी कमल समूह के लिए दिवाकर है। वह अरहंतों का भक्त है तथा धर्मरूपी महारथ (की धुरा) को कंधों पर उठाने वाला है।

और भी-जिसके प्रचंड मांडलीकों की मंडली के अतिबलशाली भुजदंडों को काटने वाले वीभत्स खड्ग की गोद में जयश्री मानो उसकी धारा से खंड-खंड हो जाने के भय से निवास करती है ॥1॥

रे ! रे ! भाग (भागकर अपने प्राण बचा), क्योंकि स्वामी संग्राम में कायरों के मुख नहीं देखते (पलकें उठने से पूर्व ही तत्क्षण मार डालते हैं), इस प्रकार की जिसकी प्रताप घोषणा से ही वैरी दूर से ही विघटित अर्थात् छिन्न-भिन्न हो जाते हैं॥2॥

उस संरक्षित गोमंडल (गायों का संघात अर्थात् ब्रजमंडल) राजा के पक्ष में पृथ्वी मंडल (वाले पुरुषोत्तम (विष्णु व पुरुषों में उत्तम श्रेणिक राजा) की स्पर्द्धा से (कि हमारा भी पृथ्वी मण्डल अच्छी तरह संरक्षित है) युद्ध में कौन शत्रु गतप्रहरण अर्थात् शस्त्रहीन होकर, गदाप्रहरण अर्थात् गदाशस्त्र को

धारण करने वाले केशव (केसवा) अर्थात् शवमात्र नहीं हो गये (के सवा = के शवाः न जाताः टि.) ॥3॥

अन्य और गाथायुगल-जिस नरपति के क्रोधरूपी दुर्वात का वेग रिपुरमणियों के रम्य यौवन रूपी वनों में पड़कर इस प्रकार विनाशकारी हुआ। दुर्वात अर्थात् आंधी का वेग रमणीक वनों में पड़कर भूमिलताओं की शोभा को भग्न कर देता है, कोमल पल्लवों की अरुण-आभा को हर लेता है, नवांकुरों पर से अलिमाला (भ्रमरपंक्ति) को उपशान्त अर्थात् दूर कर देता है, पुष्पों को गिराकर निष्फल परिणाम कर देता है, तथा चंदन व तिलकवृक्षों की रुचि (शोभा) को विनष्ट कर देता है, उसी प्रकार नगरपति के क्रोधरूपी दुर्वात के वेग ने रिपुरमणियों के रमणीय यौवन काल में ही उन पर पड़कर (उन्हें विधवा बनाकर) श्रृंगार के अभाव में उनके अधर पल्लवों की अरुण कांतिको हर लिया है, पुष्पसज्जा के अभाव में उनकी अलकों पर आकृष्ट होने वाली भ्रमरपंक्ति को दूर कर दिया है, उनके 'पुष्पपरिणाम' अर्थात् ऋतुमती होने को निष्फल कर दिया है, एवं अंग-प्रत्यंग में चंदन लेप व माथे पर तिलक की शोभा का हरण कर लिया है॥4-5॥जिस नरपति के राज्य के नभोमार्ग व नीतिमार्ग में वायु व सूर्य मर्यादा का अनतिक्रमण करते हुए बहते व तपते हैं, एवं जहाँ स्वयं वसुमति चारों दिशाओं में 'सम्पूर्ण मनोरथफल' अर्थात् सभी मनोरथों को पूर्ण करने रूपी फल प्रदान करती है॥11॥

(12)

उस राजा की मदन को दर्प पैदा करने वाली, सौभाग्य व रूप की निधि अष्टसहस्र रानियाँ थीं। वे विशाल पूर्णचन्द्रमा के समान मुख तथा भयत्रस्त बालहरिणी के समान नेत्रों वाली थीं। उनका स्वर कलकंठी (कोकिला) के समान मधुर था, व अधरोष्ठ बंधूक पुष्प के समान ताम्रवर्ण (लाल रंग के) थे। उनके स्तन कलधौत कलश के समान निर्भेद्य अर्थात् कठोर व सुपुष्ठ थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण व नितम्ब बड़े-बड़े चक्कों के आकार के थे। सुदंर कामनियों के हाथों से उनके ऊपर चमर डुलाये जाते थे, एवं मुख की सुगन्धित आश्वास से आकृष्ट होकर एकत्र होते हुए भौंरे गुंजार

करते थे। उन रानियों के साथ विलास पूर्वक बिहार करता हुआ राजा सप्त-अंगो (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग कोश, बल एंव सुहृद्) से पूर्ण राज्य करता था। इस प्रकार जब एक दिन शक्र के समान क्रीड़ा (विलास) धारण करता हुआ राजा स्वर्णसिंहासन पर विराजमान होता हुआ, सामंत व मंत्रियों के परिवार सहित सभा मंडप में बैठा था, तब शलाकादंड से कपड़े को (मूठ बनाकर) बांधे हुए दौवारिक द्वारा भेजा हुआ एक अत्यन्त जवान व्यक्ति वहां आया और उसने नरपति को प्रणाम किया ॥12॥

हे जयश्री में रस लेने वाले व चारों रत्नाकरों के अन्त तक प्रसृत यशवाले राजाधिराज देखिए! देखिए! एक बड़ा अचंभा हो रहा है कि नभस्तल दुंदुभि के शब्द से फूटा जा रहा है। आज अकाल अर्थात् बिना ऋतु के समस्त वनस्पति हरी-भरी हो उठी है और वह अभिनव पत्रों-पुष्पों व फलों से समृद्ध हो गयी है। आज ऐसा सुगंधित शीतल व सघन वायु बह रहा है जिसने सारे कानन को पूर दिया है। और जो तालाब हैं, सब में पानी बढ़ गया है, तथा विमल तरंगों से उनके तीर प्रक्षालित हो रहे हैं। आज बिना कृषि किये हुए ही पके हुए कणवाले अनेक प्रकार के धान्य से समस्त क्षेत्र भूमि (कृषि भूमि) प्रसवित (निष्पन्न) हो रही है। आज यह दिखाई देता है कि गायें (बिना दुहे ही) प्रचुर मात्रा में अत्यन्त सरस दूध क्षरण कर रही हैं। हे देव! मैं आपको बड़ा भारी कौतहूल उत्पन्न कर रहा हूँ व इस हेतु से आपको बधाई देता हूँ कि इस प्रकार से समस्त समवशरण संपदा के साथ चारों गतियों के कर्मों का क्षय करने वाले वर्द्धमान तीर्थंकर विपुलमहाशिखर पर पधारे हैं॥13॥

उस शुभ समाचार को सुनकर मगधेश्वर ने अपने शिरोकमल पर प्रणामांजलि करके जय! जय! का गंभीर घोष करते हुए सहसा सिंहासन छोड़कर अपने उज्ज्वल केयूर, कड़े और मणिकुडंलों से वर्द्धापक का पूजा-सत्कार किया। फिर सम्यक् श्रद्धा युक्त भक्ति से रोमांचित गात्र होकर कुछ पद (सात) आगे (भ0 के समवशरण की दिशा में) जाकर (प्रणाम किया) वापिस लौटा। शीघ्र ही कानों को बधिर करने वाला तथा समस्त

दिगन्तों को पूरने वाला आनंदतूर्य बजाया गया। थग-थुगि, थुगि-थग-दुगि करते हुए पटहका शब्द होने लगा, व घुम-घुम करते हुए मुरजका नाद (सब दिशाओं में) घूमने लगा। खर-तड, तडि-खर-तडि करते हुए तरड वाद्य (लोकों में) क्षोभ अर्थात् आश्चर्यपूर्ण हलचल उत्पन्न करने लगा, व रण-झण रण-झण झंकार उत्पन्न करते हुए कांस्य वाद्य सुंदर लगने लगा, त्रं त्रं त्रं करते हुए श्रेष्ठ ढक्का (डमरु) बजाया जाने लगा, व रुं रुं रुं करते हुए रुंजा वाद्य उच्चस्वर से रुंजायमान हुआ। तड-तड-तड करते हुए काहल वाद्य का विलास हुआ व दीर्घ आश्वास से आपूर्यमाण शंख हू हू करके बज उठे। सब लोग चल पड़े, बड़े उच्चस्वर का परिघोष हुआ व राजा भी शीघ्रगामी-हथिनी पर सवार हो गया। जिस प्रकार नक्षत्रमंडल का पति पूर्णिमा का चंद्रमा तारों से परिवारित अर्थात् चारों ओर से घिरा हुआ उदित होता है, उसी प्रकार पृथ्वीमंडल का स्वामी वह राजा भी परिजन, पौरजन व मंत्रि-सामंत इत्यादि से परिचरित होकर जिनवंदना की भक्ति से प्रसन्न मन होकर नगर से निकला ॥14॥

तब पौरजनों से युक्त चतुरंग सैन्य चल पड़ा, व उसके चलने से बड़ा कलकल हुआ। कहीं पर मद झराता हुआ हाथी आर दिखाने वाले अर्थात् महावत वीरों से क्रुद्ध होकर दौड़ पड़ा। कहीं पर नृपकुमारों द्वारा कशाघात से आहत हुआ अश्व खुरप्रहार से क्षीणी (पृथ्वी) को खोदता हुआ गया। कहीं पर रथ की घर-घराहट से त्रस्त हुआ खच्चर हिनाहिनाकर सवार को आसन से गिराता हुआ भाग खड़ा हुआ। कहीं कुंत, असि व कटिशूल आदि शस्त्रों को धारण करने वाले समर्थ भुजाओं वाले पदातियों का समूह खेलता हुआ दौड़ पड़ा। कहीं भूमिक्रम अर्थात् पंक्ति संगठन का परित्याग करने वाली अपनी वीर मंडली को रोककर दंडधारी नायकों ने उन्हें पंक्ति में स्थित रखा; आकाश कहीं पर तने हुए मणिखचित चंदोवों व कहीं पताकाओं तथा धवल ध्वजा और छत्रों से छा गया। तब थोड़ी दूर पर विपुलगिरि देखा गया और लोगों ने हाथ पसार पसारकर एक दूसरे को बतलाया। जो (विपुलगिरि) समोशरण की विभूति से शोभायमान था, उसे निकट गये हुए लोगों ने आंखें उठाकर देखा । वह अपनी श्रेष्ठता से हर्षित होकर (मानो) गरज रहा था कि

यह कनकशैल (सुवर्णाचल-मेरु) मेरी तुलना कैसे कर सकता है? इसका भह सुवर्ण और यह तुंगिमा दूर हटाओ! नाना देवनिकायों से बसे हुए इसकी मेरे साथ तुलना ही क्या? मेरे शिखर पर तो देवाधिदेव (तीर्थंकर) विराजमान हैं ॥15॥

हाथी, घोड़े व रथ वाहनों को दूर ही छोड़कर परिजन, पौरजन एवं रानियों के साथ भूपति ने समोशरण को देखा, जो केवलज्ञान को वहन करने वाले तीर्थंकर से मानो मोक्ष का द्वार ही था। वह समोशरण इंद्र के आदेश से धनद के द्वारा निर्मित किया गया था, तथा एक योजन विस्तार और चार गोपुरों से परिमित था, व मणिनिर्मित भित्तियों के बीच में प्रदक्षिणा बनी थी, उसमें राजा ने बहुत सुहावने बारह कोठे देखे। एक कोठे में गणधर को प्रमुख करके सब श्रमण बैठे थे, और दूसरों में कल्पवासी देवियाँ, तीसरे कोठे में आर्यिकाएँ और चौथे में स्फुरायमान् कांतिवाली ज्योतिष्क-युवतियाँ, पाँचवें में सुंदर व्यन्तर नारियाँ थी, तो छठे में भवनवासी देवों की स्त्रियाँ, तथा सातवें में ज्योतिषी देव, आठवें में व्यन्तर देव और नौवेमें भवनवासी देव स्थित थे। दसवें कोठे में कल्पवासी देव तथा ग्यारहवे में मनुष्य विराजमान थे। बारहवें कोठे में परस्पर बैर-विरोध को भूलकर शुभभावना से स्वस्थमन होकर सब तिर्यंच जीव बैठ थे। तब राजा ने मरकतमणियों से जड़े हुए पद्मरागमणि के समान पुष्पों व मरकतमणिदलों के समान अत्यन्त सुंदर, कोमल व चंचल पत्रों से प्रचुर अशोक महावृक्ष को देखा ॥16॥

उस अशोक वृक्ष के नीचे अपनी किरणों से सुरेन्द्र के शेखर की किरणों को तिरोहित करने वाले स्वर्ण रत्नमय सिंहासन पर (तीनो लोकों के) प्रभुत्व को प्राप्त व तीन छत्रों (अथवा तीर्थंकरत्व) से अलंकृत, देवकुमारों द्वारा वर्षाये गये पुष्पों से सुशोभित, कल्याणप्रद यक्षेश्वर के द्वारा हाथों में चंवर धारण किये जाते हुए, (दिव्य) दुंदुभि के शब्द से समस्त प्रतिशब्दों के निहत होते हुए, एवं समस्त बोलियों का परिज्ञान करानेवाली तथा (अठारह देशोत्पन्न महाभाषा) सर्वभाषा समन्वित दिव्यवाणी से युक्त वे भगवान भामंडल के मध्य में बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनका वर्ण स्फटिक के समान था, जिसका

कोई प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। उनका उत्तम शिरोभाग भ्रमरकुल के समान काले केशों से उद्भासित था, और उनकी दंतपंक्ति की दीप्ति से संपूर्ण लोकरूपी मंदिर उज्ज्वल हो रहा था। उत्पन्न हुए धर्मचक्र से मंडित सर्वशक्तिमान वीतराग और त्रैलोक्य के पितामह उन जिनेन्द्र को राजा ने प्रदक्षिणा देते हुए देखा, और फिर स्तोत्र का उच्चारण करके प्रणाम किया–इस संसार रूपी निशा में रति (काम व मोह) रूपी अंधकार से ग्रहीत और मायारूपी निद्रा के वशीभूत होकर सोते हुए (अर्थात् आत्महित से विमुख) जगत को आपने अपने केवलज्ञान रूपी दिवाकर से प्रतिबुद्ध किया ॥17॥

हे देव! आप सर्वज्ञ हैं और (केवलज्ञानादि रूप) लक्ष्मी से विशाल हैं। मैं अबोध अज्ञानी आपका वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ। आपकी शोभा स्वयं प्रकाशित है, तथापि क्या तेजपूर्ण सूर्य दीपक से पूजा नहीं जाता (अर्थात् मेरे द्वारा आपके गुणों का वर्णन सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है)। वीतराग होने से, तुझे न तो पूजा से तोष (आनंद) होता है और न शांतवैर, अर्थात् वीतद्वेष होने से निंदा से रोष। तथापि आपका नाम, जो कि सुख का धाम है, वह उच्चारण करने मात्र से मेरे चित्त को पवित्र करे (अर्थात् पवित्र करता है) तुम्हारी पूजा करने वाले लोक के महापुण्य-संचय में लेशमात्र पाप दूषण उत्पन्न करने में उसी प्रकार समर्थ नहीं होता, जिस प्रकार हालाहल विष का एक अमंगलकारी कण अमृतसागर को दूषित करने में! देव! आपने त्रिलोक के अग्रभाग अर्थात् मोक्ष को जाने वाले भव्य जीवों के लिये निर्विघ्न एवं समग्र मार्ग का उपदेश किया तथा मोहरूपी काल सर्प से खाये जाते हुए जीवों को अपनी दिव्यवाणी रूपी सुधा से (उसी प्रकार) शुद्ध किया (जिस प्रकार सर्प का विष सुधा अर्थात् अमृत अथवा चूने से उतारा जाता है, हे स्वामिन्! आप इस संसार सागर के तीर पर पहुँच गये हैं एवं संपूर्ण विद्यारूपी शरीर अर्थात् केवलज्ञान के धारक हैं। आपकी ही ज्ञानज्योति से उद्दीप्त होकर यह चंद्र और सूर्य का तेज उद्भासित होता है। मूर्ख लोग दर्पण में मुखाभास अर्थात् मुख प्रतिबिम्ब को देखकर यह मुख है, ऐसा मान बैठते हैं। उसी प्रकार अहं बुद्धि (मैं और मेरा) से ग्रसित वे भोले लोग अपनी मति के अनुसार वस्तुस्वरूप

का (एकांगी) निरूपण करते हैं। हे देव! आपका ध्यान करते हुए सच्चे ज्ञान में लीन होकर मेरा मन समस्त संकल्प-विकल्प रहित हो जाये । इस प्रकार सैकड़ों स्तोत्रों द्वारा वीर जिनेश्वर की वंदना करके अन्तःपुर परिजन, व पुरजनों के साथ राजा ग्यारहवें कोठे में बैठ गया।

मुनिवृंद जिनके चरणयुगल की वंदना करते हैं, जो कमलासन पर विराजमान हैं और जो ज्ञानियों के संघ का अनुशासन करने वाले हैं ऐसे समस्त विद्याओं के आश्रय वीर भगवान् की जय हो! (यहाँ पर श्लेष में वीर कवि यह भी प्रगट करना चाहता है कि वह ज्ञानीजनों के संप्रदायका अनुशासन करने वाली विद्याओं का आश्रयभूत था)। यहाँ यह कथा पूर्वकाल से प्रसिद्ध होने पर भी, जो मेरे द्वारा पुनः रची जा रही है, इसका कारण है-ग्रंथ बाहुल्य होने के कारण लोग अब उसके पढ़ने से घबराते हैं। सरोवर और नदी आदि में स्थित प्रभूत जल भी उस प्रकार नहीं पिया जाता, जिस प्रकार करवे में रखा हुआ थोड़ा सा, इष्ट अर्थात् स्वास्थ्यकर और स्वादु जल लोगों के द्वारा अभिलाषा पूर्वक पिया जाता है (उसी प्रकार जंबूस्वामीकथा का पहले से बड़ा विस्तार होने पर भी मेरी यह कथा संक्षेप में होने से अभिलाषापूर्वक पढ़ी जायेगी) ॥18॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार-वीर रसात्मक महाकाव्य में राजा श्रेणिक का समोशरण आगमन नामक प्रथम संधि समाप्त ॥संधि-1॥

संधि-2

देव और मनुष्य सबके अभिप्राय से श्रेणिक राजा ने विनय सहित ललितवाणी-द्वारा केवलज्ञान के धारक सन्मति जिन भ. महावीर से शिर नवाकर जीवतत्व के विषय में पूछा। तब महान् गर्जनशील मेघ के समान गंभीर वाणी से परमेष्ठी कहने लगे-हे राजन्! ऐसा जानो कि स्वभाव से यह जीव निरंजन (पूर्णत: कर्ममुक्त), शांत एवं दर्शन, ज्ञान से युक्त है यह आत्मा स्वयं और पर दोनों के परमतत्व (परमार्थ-सत्य) को संवेदन करने वाला है तथा (सत्ता की अपेक्षा अनादि-अनंत एवं (विस्तार की अपेक्षा) स्वज्ञान-प्रमाण मात्र है। पर-पदार्थ को जानते हुए भी यह 'पर' से मिलता नहीं और आकाश प्रमुख द्रव्यों (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल) से इसका स्खलन अर्थात् इसकी किसी क्रिया का विरोध नहीं होता। (तथापि) प्रत्येक शरीरीजीव सर्वथा अनात्मस्वरूप कर्मजनित शरीर से सुख-दु:खात्मक उपाधि को उसी प्रकार सहन करता है, जिस प्रकार जंगम (सजीव) बलीवर्दादिक (बैल) प्राणी अजंगम (निर्जीव) शकटादि वस्तु को ढोता है। आत्म-परिणामों से प्रादुर्भूत कर्मपरमाणु नया भव ग्रहण करने तथा आत्मप्रदेशों में अवकाश पाने में उसी प्रकार समर्थ होते हैं, जिस प्रकार पृथिव्यादि पदार्थ आकाश में स्थान पाने व स्वकार्य करने में समर्थ होते हैं। और जिस प्रकार सूर्यकांतमणि रविकिरणों के संपर्क से अग्नियुक्त दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार अचेतन पुद्गलात्मक कर्म-परमाणुओं से प्रादुर्भूत शरीर भी सचेतन आत्मा के संपर्क से चेतन व क्रियावान् दिखाई देने लगता है। आत्मा (भाव) कर्म से तदनुरूप कर्मरूप परिणत हुए पुद्गल-परमाणुस्कंध (से जो इंद्रियाँ निर्मित होती हैं उनकी वृद्धि ही (आत्म-संबंध के कारण) 'मैं बढ़ रहा हूँ' ऐसा बुद्धिबंध अर्थात् बुद्धिविकल्प उत्पन्न होता है। जीव के निमित्त से एवं मोहनीय कर्म के सामर्थ्य से यह नाना विकल्पात्मक इंद्रिय समूह उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो भी जीवनिमित्तक (पर्याय) है, व्यवहार में उस वस्तु को जीव ही कहा जाता है। उस जीव के द्वारा ही संसार-निबंधन और पुनर्भव को बाँधने में कारणभूत

जो कर्म उत्पन्न किया जाता है, उस कर्म का निरामय-निर्व्याधि अर्थात् निःशेष नाश ही मोक्ष कहा जाता है यह (व्यावहारिक) जीव उत्पन्न होता है, क्षीण होता है अर्थात् मरता है; छोटी बड़ा होता है। छोटा-बड़ी शरीरपर्याय धारण करता है, एवं नरक-प्रधान गतियों का अनुभव करता है। और वही जीव कर्मास्त्रवको निवारण करने वाले कारण (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र) की भावना करके मोहजाल को खपाता है, अर्थात् नष्ट कर डालता है॥1॥

जब जीव नरकगति में उत्पन्न होता है, तो उसे करौंत से चीरा जाता है, अग्नि से खौलते हुए तेल में तला जाता है और नारकियों के द्वारा परस्पर को खाया जाता है। तिर्यंच-योनिको प्राप्त होकर निष्कारण ही बांधा, पीटा व मारा जाता है। मनुष्यत्व को पाकर भी मनुष्य धर्म नहीं करता, बल्कि पाप के ढेर को ही इकट्ठा किया करता है। बाल-तप की साधना से देवलोक में उत्पन्न होकर भी देवों का वाहनरूप कुत्सित देव होता है। दूसरे भी जो सुंदर देव होते हैं, वे भी देवलोक से च्युत होते समय दुःखातुर होकर क्रंदन करते हैं। छह मास पर्यंत आयु शेष रहने पर देवों को ऐसा होता है-हाय! हमारा यह देवविमान और ये सुंदर अप्सराएँ छूट रही हैं, हाय! हाय! शरीर की दिव्य कांति परिभ्रष्ट होकर, यह सब अनिष्ट मुझसे अत्यन्त कष्ट से किस प्रकार सहन किया जायेगा? हाय! हाय! हे देव पुरंदर! रक्षा करो! हाय! यह मंदराचल फिर कहाँ दिखाई देगा? इस प्रकार हे नरपति! यह चारों गतियों के विविध अनंत-दुखों को दिखानेवाली (कर्म) परिणति जानकर जब (सम्यक्) चारित्र का पालन किया जाता है, तभी यह बढ़ती हुई सांसारिक तृष्णा (भोगाकांक्षा) नष्ट होती है॥2॥

जिनेश्वर के इस कथानक को कहते समय जब मनुष्य और देव शुद्ध भावना को धारण कर रहे थे, अपने तेजरूपी जल के पूर से दिशाओं को पूरता हुआ, अतीव तेजस्वी होते हुए भी जो सूर्यरश्मियों का अत्यन्त तापयुक्त निकुंज नहीं था तथा निरन्तर (मेघ) गर्जना होने से पुंजीभूत विद्युत्पुंज भी नहीं था, ऐसा (एक देव) नभांगन से आता हुआ देखा गया। यह कौन है? इस प्रकार का विकल्प करके राजा के पूछने पर साधु वचनों से जिन भगवान्

बोले-हे नरेंद्र! यह अत्यन्त भास्वर विद्युन्माली नामका देव है जो (जिन) वंदना की इच्छा से भ्रमण कर रहा है। यह स्वर्ग से सातवें दिन च्युत होगा और यहीं मनुष्य भव से अन्तिम केवली होगा। इसके अनन्तर रण रण करती हुई किंकिणियों से शोभायमान विमान को आकाश में ही छोड़कर वह देव वहाँ आया। अपनी चार प्रियाओं के साथ पाँचवा वह सभा मंडप में बैठे हुए लोगों के द्वारा देखा गया और जिनेश्वर को नमस्कार कर अपने कोठे में बैठ गया। उस क्षीणकर्मों वाले, दशों दिशाओं को विमल करने वाले और अपने रूप से देवों की सभा को भी तिरस्कृत करने वाले देव को देखकर सुख से तृप्त होकर, विस्मित मन से मगधराज पुनः कहने लगे- ॥3॥

हे भगवन्! आपने (अभी) कहा है कि अन्तिम छः मास आयु शेष रहने पर देवों के शरीर की कांति विनाश को प्राप्त होती है, और मस्तक (कण्ड में पड़ी) की कुसुममाला भी सूख जाती है। परंतु इसकी केवल सात दिन आयु शेष है, फिर भी शरीर अत्यन्त कांतिमान् और सुन्दर वर्ण है। यह तेज तिलभर भी अपने स्वभाव से रहित नहीं हुआ, प्रत्युत इसकी देह प्रचुर तेज से स्फुरायमान दिखाई देती है। तो कहिये कि पूर्वभव में इस व्रतधारी के द्वारा किस प्रकार के चारित्र का पालन किया गया? तब श्रेणिक देवों व असुरों के साथ सुनने लगा और त्रिभुवनगुरु (जिनभगवान्) उसका चारित्र कहने लगे-रमणियों के रूप से इंद्र को प्रसन्न करने वाला, वर्द्धमान नाम से विख्यात ब्राह्मणों का क्रमागत अग्राहार ग्राम है। जहाँ बड़े-बड़े भट्ट समुदाय के विशेषज्ञ ब्राह्मण-समूहों द्वारा वेद घोष किया जाता है, जहाँ दीक्षितों के द्वारा पशु होम किया जाता है, और जहाँ प्रतिदिन सोमपान किया जाता है। जहाँ वृक्ष-वृक्ष में एवं सघन लतागृहों में एक दूसरे को कर्कश वचनों से पुकार कर शाखाओं से कूदते हुए, व् अपनी (पूंछ के समान) चंचल शिखाओं को नचाते हुए वटुक वानरों के समान क्रीड़ा करते हैं॥4॥

उस गांव में लोगों में प्रशंसा-प्राप्त, विशुद्ध-वंश (बांस) तथा गुण (प्रत्यंचा) युक्त धनुष के समान विशुद्ध-वंश (कुल) में उत्पन्न और (शीलादि) गुणों से युक्त, एवं श्रुति वेद और कथाओं से अलंकृत-कंठ अर्थात् समस्त

शास्त्रों को कंठ में धारण करने वाला, आर्यवसु नामका सूत्रकंठ (ब्राह्मण) रहता था। वह जल (गो), और पद्मिनी (विस) के अंकुरों के निधान कमलाकर के समान अनेक गायों (गो) और वृषभों (विस) का निधान था। (सब रानियों में) प्रधान अग्रमहिषी से युक्त मंडलपति राजा के समान वह ब्राह्मण प्रचुर दूध-घी देने वाली प्रधान महिषियों (भैंसों) से युक्त था। उसकी पतिव्रत को धारण करने वाली कृतपुण्य-अर्थात् पुण्यवान् सोमशर्मा नामकी गृहिणी थी। उसका शरीर समदन अर्थात् कामोत्तेजक था, और वह अपने पति में अत्यन्त अनुरक्त थी; उसके कान बहुत सुंदर थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण तथा वेणी बहुत रमणीक थी और गहरे स्नेह से बंधी हुई वह पति के चरणों का अनुगमन करती थी। ऐसी प्राणों से भी अधिक प्यारी कांता अन्य कौन पा सकता है? उसे भवदत्त नामका प्रथम पुत्र हुआ, दूसरा द्विजों के द्वारा भवदेव कहलाया। उनका अंग-प्रत्यंग परस्पर के स्नेह से परिपूरित (ओत-प्रोत) था और वे शब्द व अर्थ के समान सदा एक साथ रहते थे। जब जेठा (भाई) अठारह वर्ष का हुआ और कनिष्ठ बारह वर्ष का उसी समय पिता व्याधि से पीड़ित हुआ और उसकी कांति नष्ट हो गई। पूर्वजन्म में अर्जित पापकर्म से वह कुष्ठग्रस्त हुआ, उसका चर्म गल गया, तथा हाथ व पैरों की अंगुलियां व नाक और अधर केवल जुगुप्सनीय चिन्ह मात्र शेष रह गये। जीने की आशा छूट जाने पर वह विष्णु का स्मरण करता हुआ चिता रचकर अग्नि में प्रविष्ट हो गया। प्रिय के मरणवियोग को न सह पाती हुई उसकी प्रिया सोमशर्मा भी उसी चिताग्नि में प्रविष्ठ होकर मर गयी। उन दोनों का मरण देखकर और धाड़ देख कर हा कष्ट! हा कष्ट! कहते हुए, छाती पीट-पीटकर रोते हुए उन दोनों पुत्रों को स्वजनों ने धैर्य बंधाया ॥5॥

शोकानल की ज्वाला से दग्ध हृदय उन दोनों ने ब्राह्मण-क्रिया अर्थात् वेदविहित अनुष्ठान के अनुसार तिल और जौ देकर शीघ्र ही पितरों को पिंड दान दिया। बहुत दिनों में उनका दुःखभार कुछ कम हुआ, और गृहाश्रम की नीति में कुशल भवदत्त, कनिष्ठ (भ्राता) के साथ घर का पालन करने लगा। अथानन्तर विषयों की अभिलाषा से रहित मुनियों द्वारा पूजित

एवं बारह प्रकार के तपोगुण से भरे हुए सौधर्म नामके महामुनि अपने गण (संघ) के साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे। शांतचित्त और शुभदर्शन अर्थात् सम्यग्दृष्टि लोगों ने उन मुनिवर को प्रणाम किया। वे मुनि जो कोई जो कुछ पूछता था, उसे अपनी दिव्य वाणी से जीवादि तत्वों को बतलाते थे (और कहते थे)-यह सारा जगत् इंद्रियचंचल है, और मिथ्यात्व मोहरूपी तिमिर से अंधा है। जीवन के असि-मसि-कृषि आदि व्यापार व आहारादि संज्ञाओं से युक्त, कामातुर तथा सुख की तृष्णावाला है। दिनभर के कामों से थककर, श्रान्त होकर, रात्रि में निद्रा से मूर्च्छित होकर सोता है। मरणभय से यह लुकता है, परंतु किसी प्रकार उससे चूक नहीं पाता (बचता नहीं), शिव सुख को चाहता है, पर पाता नहीं। इस प्रकार का यह मनुष्य रूपी पशु भय और काम के वश होकर अपने हृदय में ताप अनुभव करता हुआ तनको जलाता है॥6॥

जिस परिग्रह में मनुष्य अपने आपको बड़े क्लेश से स्थापित करता है, अर्थात् बड़े कष्ट से जिसका संग्रह करता है, वह परिग्रह बड़े दुःख से छोड़ा जाता है। यह लोक विपरीत विवेक (उल्टी मति) से जीता है, यद्यपि यह देह के भीतर देखता भी है तो भी बाह्याचरण में शरीरादि परिग्रह के प्रति अभिलाषा युक्त होने से हाथ में दंड लेकर कौओं को उड़ाता रहता है। मुनि के इस कथन को सुनकर भवदत्त का हृदय काँप उठा और उसने उन परमगुरु से विज्ञापना की, 'हे स्वामी! आपके शुभ अर्थात् हितकारक चरणयुगल ही मेरी शरण हैं, मुझ संसार रूपी कर्दम में पड़े हुए व्यक्ति का समुद्धार कीजिए, और प्रव्रज्या देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए।' संतानों पर (संरक्षक रूप से) सहोदर को स्थापित करके, मनमें-से कषायों का क्षय कर भवदत्त दीक्षित हो गया। सम्यग्दर्शन की सराहना करते हुए, विषयों का त्याग करते हुए, वह दृढ़मति व शुद्धचरित्र दिगंबर, गुरुवचनों को सुनने में मन लगाता हुआ, कर्मास्त्रवों का संवर करके बिहार करने लगा॥7॥

मैं परम कृतार्थ हूँ जो कि धैर्य (साहस) धारण करके सम्यक्त्व जैसी दुर्लभनिधि को पा गया। कोटि-कोटि जन्मान्तरों में भी जो नहीं मिला, वह सम्यक्त्व अब भव-भ्रमण करते-करते पा लिया। वह वीर (भवदत्त) प्रतिदिन

स्वाध्याय और ध्यान करता था, तथा अत्यन्त घोर तपश्चरण करता था। सदैव आगम-दृष्टि से अर्थात् शास्त्रानुसार बिहार करते हुए जब बारह वर्ष व्यतीत हो गये तो व्रतों से क्षीण शरीर वह श्रमणसंघ उस गांव के निकट प्रदेश में ठहरा। स्वयं और परके प्रति समान उपकारबुद्धि वाले उस भवदत्त दिगंबर को ऐसा हुआ-'मेरा अनुज बेचारा भवदेव दुःख की गर्त्तस्वरूप संसार रूपी महानदी में न पड़े, यदि मेरे रहते हुए वह श्रावक व्रतों को धारण कर ले और मिथ्यात्व-भाव को छोड़ दे। यह सोच कर भवदत्त ने आचार्य से विज्ञापना की— 'यहाँ से एक योजन के अन्तर पर (मेरा) गाँव है, यदि वहाँ जाने में कोई प्रमाद (दोष) न हो, और यदि कनिष्ठ भ्राता मेरी बात सुने, तो मैं उसे उपशांत करना चाहता हूँ, 'तो फिर मेरे साथ एक ऋषि दीजिए।' गुरु ने अनुमोदन किया और कहा-(वहाँ जाने में) लेशमात्र भी दोष नहीं है, अतः तुम लोग वहाँ जाओ; ऐसे गुरु के आदेश व संप्रेषण से वे दोनों मुनिवर निकलकर चले और क्षणभर में उत्तम ब्राह्मणों से भरे हुए उस रमणीक वर्द्धमान गाँव में प्रविष्ट हुए ॥8॥

भवदेव का सुंदर घर दिखाई देने लगा, जो कि गोबर से लिपा और चूने से पुता था, (और कहीं पर) गेरु से पिंगलवर्ण दिखाई देता था, व जिसका शिखर खूब चमक रहा था, तथा जो तोरणों से युक्त और मंडप से शोभित था, व जहाँ मंगल तूर बज रहा था, चपल ध्वजाऐं फहरा रही थीं, मंगलगान गाया जा रहा था और स्त्रियाँ मनोभिराभ नृत्य कर रहीं थीं, स्थान-स्थान पर काष्ठचित्र आदि निर्मित थे, विप्रों को खिलाया जा रहा था, और चंदन की शालाएँ कुंकुम से सुगधिंत हो रही थी, स्वस्तिक बंध में बंधे हुए कुसुमों की सुगंध फैल रही थी, और दान देकर लोगों का सम्मान किया जा रहा था। उन तपः- प्रबल मुनि-युगल को पौरजनों ने देखा और भाई को कहा-मुनि भवदत्त तुम्हारे घर आये हैं। तब भवदेव शीघ्रता करके, विनययुक्त होकर, शिर झुकाये हुए, वस्त्रों को फहराता हुआ, हाथ जोड़े हुए, स्वजनों के साथ बाहर आया। भवदेव के मन में बांधवदर्शन से होने वाला उद्वेग रुक नहीं सका, और अंगों में न समाता हुआ, फूट-फूटकर प्रसृत होता हुआ, मानो पुलक (रोमांच) के बहाने से निकल पड़ा ॥9॥

अपने शिर कमल को पृथ्वी पर रखकर भवदेव ने भाई के पदयुगल को प्रणाम किया। मुनि ने भी- 'हे वत्स! तुम्हें धर्म की वृद्धि हो', कहकर भाई को आशीर्वाद दिया। उसकी पीठ पर हाथ फेर कर, मंडप में दिये हुए आसन पर बैठकर भवदत्त मुनि बोलने लगे-हे भवदेव! सुन। यह क्या बात है, जो तू उपयाचितक (?) वस्त्र धारण किये हुए दिखाई देता है, हाथ में ऊन से बना हुआ कंकण बँधा है, परिणय की शोभा से तुम्हारा मुख ललनीय (सलौना) हो गया है; वत्स! तू कहीं वर (दूल्हा) तो नहीं हो गया? तब नेत्रों में आंसू भरकर, स्नेहाभिमान पूर्वक गद्‌गद वाणी से वह नव-वर यूँ बोला-तुम्हारे समक्ष ही माता ने पिता से जैसा कहा था, उसी प्रिया का आज मैंने वरण किया है। हे नाथ! मुझ शिशु की परवाह न करके, घर छोड़कर, पूर्व में जिस स्नेह को तुमने तोड़ दिया था, आज अपने आगमन से, उसे पुनः अर्थात् जागृत करके दिखलाया है ॥10॥

इसी वर्द्धमान नगर में तुम्हारा जाना हुआ, दुर्मर्षण नाम का स्वकुलभूषण द्विज है। उसकी नागदेवी नाम की प्यारी भार्या है, उन दोनों की नागवसू नाम की पुत्री है, उसी सुलक्षणा का मैंने परिणय किया है। विचक्षण लोग समविवाह की ही सराहना करते हैं। तब भवदत्त मुनींद्र ने कहा-तुमने स्वजनों को रुचने वाला अच्छा काम किया। यह सब शुभकर्म का प्रभाव है। धर्म का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है। धर्म से ही चक्रवर्ती, हरि (वासुदेव) और बलराम होते हैं, तथा धर्म से ही लोकपाल, व चंद्रमा और सूर्य। धर्म से ही मनुष्य महान गुणोंवाली व भोगों को प्रदान करने वाली पुरंदर की लीला धारण करते हैं। धर्म अहिंसा लक्षण वाला है, और आगम से अच्छी तरह परीक्षा करके उसे किया जाता है। और आगम वही है जो जीव दया बताये, तथा जिसमें पूर्वा पर विरोध कथन न किया जाये। इस प्रकार अपना हित जानकर जो इस भव में जिनागम में कहे हुए धर्म का पालन नहीं करता उसे धिक्कार है, उसकी अवहेलना करो और उसे अभी भी गर्भवास में ही स्थित मानो ॥11॥

मुनि की वचनसुधा से भावित-मन होकर, श्रावक के व्रत धारण करके, उसने विनयपूर्वक कहा-एक कार्य निवेदन करता हूँ, आज मेरे घर

भोजन कीजिये। मुनि पुंगवों ने उसको स्वीकार किया, और उन्होंने विधान पूर्वक आहार लिया। 'तुझे अक्षयदान (का लाभ) हो' ऐसा कहकर मुनि चल पड़े और लोग उनके पीछे (कुछ दूर तक) जाकर प्रणाम करके लौट पड़े। भवदेव भी गाढ़-स्नेह से बंधा हुआ श्रद्धायुक्त भाव से (तथापि) लौटाये जाने की इच्छा से उनके पीछे पीछे चलता रहा। मंडप में महिलाजन इस कौतुक को देखें, जब मैं क्रीड़ा पूर्वक कंकण छुड़ाऊँ। इस प्रकार चिन्तन करते हुए चलते चलते अन्योक्ति आलाप की रीति से वह बोला-हे प्रभु! फैलती हुए शाखाओं तथा बहुत घनी छायावाले इस विशाल न्यग्रोध वृक्ष को देखिये! और इस चंचल तरंगों वाले रमणीक सरोवर को देखिये, जो गुंजार करते हुए भ्रमरों से युक्त शतपत्रों से आच्छादित है। आगम-विरूद्ध (वचन से अपने) को बचाते हुए बड़े भाई ने यह नहीं कहा कि वत्स, (वापिस) चले जाओ। वे मुनि बोले यह कोई अपूर्व (अदृष्ट) प्रदेश नहीं है, बालपने में हम लोग इस सम्पूर्ण क्षेत्र के खूब अभ्यस्त थे। इस प्रकार वह भवदेव उन मुनियों के साथ विमनगात्र अर्थात् अनिच्छा पूर्वक चलता हुआ जहाँ ऋषिसंघ था, उस स्थान को प्राप्त हुआ। दोनों शिष्यों ने भक्तिपूर्वक गुरु को प्रमाण किया, भवदेव ने भी गुरु की वंदना की और वह नव-वर उन अनेक गुणों के भंडार आचार्य के आगे बैठ गया ॥12॥

प्रशस्त वेश देखकर मुनिसंघ के द्वारा उस द्विज का अभिनंदन किया गया। एक ने सरल स्वभाव से कहा-यह आया है, तपश्चरण लेगा। उपकार में प्रयत्नवान वे भवदत्त धन्य हैं, जो इसको संबोधन करके यहाँ लाये। इन तीखे अक्षरों को सुनकर वह मन में काँप गया, यह दिगंबर कैसी निष्ठुर वाणी बोल रहा है। मैं बहुत त्वरा पूर्वक घर जाऊँगा और शेष विवाह कार्य निबटाऊँगा। दुर्लभ सुरत-क्रीड़ा करूँगा और नव वधू के साथ सुख भोगूँगा। मुनि ने जो यह (दीक्षा लेने का) नाम लिया, वह ज्येष्ठ (भाई) ने बहुत पहले ही निश्चय कर रखा था, और मुझे जो घर नहीं लौटा दिया,यही भाई की पैज (प्रतिज्ञा) का प्रत्यय है। मैं किससे कहूँ? कैसे फूट-फूट कर रोऊँ? इधर पास में व्याघ्र है, और उधर (दूसरी ओर) दुष्ट नदी! तो ठीक है, मैं इनकी

बात अमान्य नहीं करता, (क्योंकि) ज्येष्ठ सहोदर पिता के समान होता है। आज नि:शल्य (नि:शंक) होकर प्रव्रज्या ले लेता हूँ, कल चला जाऊँगा मुझे कौन रोक सकेगा? इस प्रकार हृदय में पर्यालोचन करके फिर बोला-हे प्रभु! दीक्षा देकर प्रसाद कीजिये। भवदत्त के रहते हुए मुझ गिरते हुए का भी भव-वैतरणी से उद्धार कीजिये ॥13॥

इस प्रकार बोलते हुए, (परंतु हृदय में) स्त्री के प्रति स्नेह रखते हुये (भवदेव) को गुरु ने अवधिज्ञान का प्रयोग करके जाना कि यद्यपि यह दीक्षा मांगता है, पर हृदय में घर को चाहता है, तथापि लज्जावश यह उसका निर्वाह करेगा। 'यह निश्चय से निष्कलंक आसन्न-भव्य (शीघ्र मोक्ष जाने वाला) जीव है, ऐसा मानते हुए गुरु ने उसे दीक्षा दे दी। मुनि -युगल उसकी देख रेख करने लगे, और इस प्रकार उसे रखने लगे कि वह मार्गान्तर को प्राप्त न कर सके अर्थात् भाग न पावे। पढ़ाते हुए उसें अक्षर नहीं आता था, वह तो सुंदर अंगों वाली पत्नी का ही ध्यान करता था। दिन-दिन यही सोचता हे कांता! हे सुंदरी, तुम्हारी यौवन श्री कोई अपूर्व ही है। मुख पर नेत्रों की विशालता है व अधरों में विद्रुमराग का स्फुरण (अर्थात् कांति) है, वर्तुलाकर घनी स्तन मंडली है, और कृष्ण रोमावलि त्रिवलि का लंघन करती है। दोनों बाहुओं से आलिंगन करने पर वह अपने सुपुष्ट और विस्तीर्ण नितम्ब-भाग में बहुत दुष्करता से सेवित होती है। उसके मसृण ऊरुओं से सारा लोक वश में किया जाता है, और उसके नखों की दीप्ति में संपूर्ण महीतल चित्रित होता है। उस मुग्धा का वह भरपूर यौवन क्या (कभी) फिर वैसा ही नूतन दिखाई देगा? ऐसा कब होगा, और वह धन्यदिवस कौन-सा होगा, जो मेरे मन को संतुष्ट कर सके ॥14॥

वह धन्या (भार्या) मेरे मन में लीन है, प्रतिबिम्बित है, लिखित है, और उत्कीर्ण है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो दैव ने हृदय में रखकर खूब गहरी कील ठोंक दी हो।

नीलकमल दल जैसी कोमल, श्यामलांगी, नवयौवन की लीला से ललित और पतली देह वाली ऐसी अपनी रूपऋद्धि से मन को हरण करने

वाली, और मार डालने वाली, हे मुग्धे! शोक है कि तू मेरे बिना काम से पीड़ित हुई होगी ॥1॥

इसी सोच-विचार में देशान्तरों में बिहार करते-करते बारह संवत्सर व्यतीत हो गये। तब वे धन्य मुनिवृंद वर्द्धमान ग्राम के निकट आये। उपवास किये हुए भवदेव को देखकर, उसे पारणा के किये मुनियुगल के साथ भेजा गया। गोचरी के मार्ग में प्रविष्ट होने पर उसने कहा मुझे निश्चित अन्तराय हो गया है। तब एक मुनि ने कहा-गुरु के पास चले जाओ। वह शीघ्रगति से लौट पड़ा। चलते हुए उसके चित्त में बड़ा आनंद हुआ कि ऐसा दिन न कभी हुआ और न होगा। तो ठीक! घर जाकर प्रिया को देखूंगा और मनचाहा विषयसुख भोगूँगा। फिर थोड़ी दूर जाकर (मुनियुगल की) दृष्टि बचाकर (घर की) दिशा का विशेष ध्यान करके शीघ्रता से चला। और फिर दूर से ही भलीभाँति अपने हृदय में भरे हुए भावों के विषय में सोचने लगा-आज एक बार मैं अपने मन को अपनी-अपनी धन्या से प्रसन्न करूँगा, व उत्कंठा पूर्वक अतिगाढ़-आलिंगन करूँगा, नख चिन्हों से उसके स्तनमंडल को मंडित करूंगा और अधरबिंब को दांतों से काटूँगा। उसका दुर्लभ मनुष्य (प्रिया) के विरह से झुलसा हुआ, व (अबतक) लज्जा से दबा हुआ प्रेमपुंज बढ़ गया। जैसे-जैसे गाँव निकट आता गया, वैसे वैसे उसका चित्त कुछ इस प्रकार चमत्कृत हुआ (अर्थात इस प्रकार चिन्तन करने लगा)-यह जिनशासन बहुत गुणवाला है, और आर्ष-ऋषियों द्वारा विषयभोग के लिये इस प्रकार के (व्रतभंगादि) कारण को अत्यन्त धिक्कार किया गया है। हम जैसे केवल पदों को पूर्ण करने वाले, अर्थात् मुनि-पद का केवल बाह्यतः निर्वाह करने वाले, कापुरूषों के जीने से ही क्या? ॥15॥

हा शोक! (इधर तो) भवदत्त मुनि (मेरे इस आचरण से) लज्जित होंगे, (और उधर) उस धन्या की वीणा के समान मधुर ध्वनि (सुनने को मिलेगी), (एक ओर तो) ऋषि संघ कुगति के पथ से निवारण करता है, (परंतु दूसरी ओर) उस जैसी सुंदरी का जंघास्पर्श किसे मिलता है, (इधर तो) संसार के उच्छेदन के लिए व्रत कहे गये हैं, (और उधर) उस श्रेष्ठ कांता

की सौंदर्य से दीप्तिमान देहयष्टि है अरे चित्त! यह मिथ्यात्व वर्तन अर्थात् मिथ्याचरण छोड़ दे! (पर) उसके अधरों का चुं बन करके कृतार्थ होगा। इस प्रकार हर्ष विषादपूर्वक वह मार्ग में चल रहा था कि एक अन्य आंशका उसके हृदय को जलाने लगी- बारह वर्षों में रतिक्रीड़ा प्रिय उस भामिनी की आजकल कैसी क्रिया है, क्या जानूँ? क्या यौवन के वश होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा? अथवा यदि किसी तरह कुलक्रम (कुलाचार) का पालन किया भी हो तो लुंचितशिर, मलधारी, तथा दुर्गंधयुक्त शरीर वाले मुझ दिगंबर को देखकर वह हैरान होगी। इसलिए मैं शीघ्रता से प्रवेश नहीं करूँगा बल्कि पहले उसे बाहर ही बुलवा लूँगा। इतने में उसने गांव से लगा हुआ, श्वेत चूने से धवल और फहराती हुई चपल ध्वजा से युक्त एक देवकुल देखा। (और) सोचने लगा-पहले तो यह नहीं था। जब उसने उस चैत्यघर में प्रवेश किया तथा जिनप्रतिमा को देखकर वंदना करके जब विश्वस्त होकर बैठा, तो क्षणभर के उपरांत नियमव्रत से क्षीण शरीर एक स्त्री को एक कोने में बैठे देखा जो विरूपाकृति के कारण चंडी के रूप का अनुसरण कर रही थी और सूखे कपोलों से लोगों को त्रास उत्पन्न करती थी॥16॥

तो फिर उस स्त्री ने भक्ति पूर्वक मुनि को प्रणाम किया। 'तुम्हें धर्मवृद्धि हो' कहकर मुनि पूछने लगे-हे अंबे तुम्हारी दीर्घ आयु है, यहाँ बसने वाले सभी को तुम स्वयं जानती होगी। यहाँ एक भवदत्त और दूसरा भवदेव ये दो सहोदर ब्राह्मणपुत्र थे, वे कहाँ है? उसने कहा-जानती हूँ, यहाँ आर्यबसू द्विज के दो पुत्र रहते थे, उन्होंने दिगंवर-वृत्ति (दीक्षा) का आचरण करके इस संसार नदी को तर लिया। तब मन में और दिलचस्पी उत्पन्न होने से श्रमण ने फिर कहा-भवदेव ने नागवसू का परिणय किया था, पति के बिना क्या वह कुलमार्ग (पतिव्रत-धर्म) में स्थित रही अथवा कुछ विपरीत क्रिया करके रहती है? लावण्य-तरंगों से उद्भासित उसका तारूण्य कैसा रहा? बोलता हुआ वह मुनि उसके द्वारा पहचान लिया गया कि यह निश्चय ही व्रतों से डिगा हुआ भवदेव है। वह परमविषाद को प्राप्त हुई, कि देखो इस राग की परिणति

का कौन निवारण कर सकता है, जहाँ कि मनुष्य आड़े-टेढ़े वा गले-सड़े चर्म खंड से कैसे-कैसे विकार को प्राप्त होता है ॥17॥

'इसकी पापमति को नष्ट करूंगी, (मनमें ऐसा निश्चय करके) वह सम्यग्दृष्टि (नागवसू) बोली-हे त्रिभुवनतिलक श्रमण तुम धन्य हो, जिसने सुख का धाम, ऐसा जिनदर्शन पा लिया। तरुणाई में भी इंद्रियों को दमन करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन दिखाई देता है? यदि परिगलित वयस् में सभी का विषयाभिलाषरूपी अग्नि शांत हो जाता है (तो उससे क्या लाभ?)। कांच से रत्न कौन बदलवाता है? पीतल के लिए स्वर्ण कौन बेचता है? स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सुख को छोड़कर रौरव नरक में कौन प्रवेश करता है? महिला के कारण व्रतानुष्ठानादि क्रियाओं से कौन भ्रष्ट होता व कौन ऋषि अपने स्वाध्याय (आत्मचिंतन) की हानि करता है? जैसे-जैसे वह शुद्धमति बोलती गई, वैसे-वैसे मुनि लज्जा से अधोमुख होते गये। (उसने फिर कहा)-तुमने जिस नागवसू को पूछा, सुनिये! उसके लावण्यरस (सौंदर्य स्वरूप) को प्रकट करती हूँ-उसका शिर नारियल के समान मुंडित है, मुख लारयुक्त हो गया है, और उसमें से वाणी घर घराती हुई निकलती है। नेत्र जल के बुलबुले के समान, अपने स्थान को छोड़कर तालु तक चले गये हैं; चिबुक, ललाट, कपोल और त्वचा मानो वाताहत होकर रण-रण शब्द करते हैं (अर्थात् सारा शरीर शिथिल हो गया है, उसमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, अतः सदैव किटकिट आदि शब्द करता हुआ काँपता रहता है)। यह देहरूपी घर निर्मांस और निर्लोहित होकर चर्म से नथा हुआ अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रह गया है। हृदय को और भी निःशल्य करने वाले मेरे इस प्रतिरूप को देखिए। इस सदृश रूप तुम्हारे हृदय में कुटिल-शल्य की भांति कैसे स्थित रहा? तुमने परलोक नहीं साधा ऐसे ही समय बिताया। तुम्हारा सारा समय निरर्थक ही गया ॥18॥

तब (नागवसू के) उस संबोधनात्मक वार्तालाप करते-करते ही उसका मोहजाल तड़ से टूट गया, और उसका मन निःशल्य भाव

(शुद्धात्मपरिणाम) में लग गया, ऐसा स्पष्ट रूप से जानकर उस नागवसू ने पुनः कहा-हे नाथ! मैं ही तुम्हारी परित्यक्ता गृहिणी हूँ। मैं पतिधर्मरूपी अपने कुलाचार से च्युत नहीं हुई। घर में तुम्हारा जो द्रव्य रखा था, वह सब मैंने धर्मकार्य में दे दिया, और यह सुंदर चैत्यघर बनवा दिया। मेरा यह व्रतोपवास से शोषित शरीर देखिए! यह सुनकर चित्त में लज्जित होता हुआ प्रामाणिक धर्मशिक्षा पाकर वह बोला-हे जाया! मैं जो संसार सागर में डूबा जा रहा था, तुम्हारी वाणी से मेरी नाव की चेष्टा (गति) अब निर्दोष हो गयी है। और फिर पूर्व-संकेत अर्थात् विषय सेवा के संकल्प को छोड़कर वह वहां से निकला व अतिशीघ्र मुनींद्रों के पास जा पहुँचा। गुरुचरणों की वंदना करके व आत्मनिंदा करके संपूर्ण घटना का निवेदन किया, (और प्रार्थना की) हे प्रभु! आज मेरी प्रार्थना को मत ठुकराइए, मुझे पुनः दीक्षा दीजिए, मैं संसार से उद्विग्न हो गया हूँ ॥19॥

उसने सभी संक्लिष्टभावों को त्याग दिया और पुनः विशेष दीक्षा-ग्रहण की। वह निरंजन परमात्मा का अभ्यास (ध्यान) करने लगा, और राग व द्वेष इन दोनों का त्याग कर दिया। मन, वचन, काय के प्रसार को अवरुद्ध कर लिया, और इंद्रियविषयों (अर्थात् भोगवासना) का नाश कर दिया। उसके लिए व शत्रु व मित्र एक समान हो गये और स्वर्ण व तृण बराबर, सुख-दुःख जीवन-मरण सब एक-सा; तथा निंद्रा व प्रशंसा सब में समान बुद्धि। वह शुद्ध व्रतों वाला हुआ। वह हाथ में ग्रास लेकर जिव्हारहित के समान भोजन करता, अंधे के समान रूप दर्शन करता, तथा बहिरे के समान निरीहभाव से शब्द सुनता। कठोर स्पर्शों को वह पत्थर के समान वेदन करने और क्षुधा-तृषादि बाईस परीषहों का सहन करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार भवदत्त के साथ तप करते हुए उसने पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा की। जीवन के अन्तिम समय में विमलगिरि का आश्रय लेकर अनशन पूर्वक पंडितमरण करके दोनों ही भाई सात सागर की आयुवाले तृतीय स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वहाँ दिव्य अप्सराओं के नयनकटाक्षों-द्वारा लक्षित, कंकण,

मुकुट, व केयूरों के धारक, हृदयोच्छित आकार धारण करते हुए, वे दोनों अतुल वीर्यवान् देव स्वर्गविमानों में रमण करने लगे ॥20॥

इस प्रकार महाकवि देवपुत्र के पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी चरित नामक इस श्रृंगार वीर रसात्मक महाकांव्य में भवदेव का सनत्कुमार स्वर्गमान नामक द्वितीय संधि समाप्त ॥2॥

संधि-3

बालक्रीड़ाओं में भी वीर (कवि) के मुख से प्रसूत होते हुए काव्य पीयूष को लोगों के द्वारा आनंद से निमीलित नेत्र होकर कर्णपुटों से पिया जाता है ॥1॥ भरत के अलंकार और काव्य लक्षणों से युक्त लक्ष्य पदों अर्थात् काव्यपदों की रचना करती हुई, वीर कवि के मुखरूपी रंगमंच पर नृत्य करती हुए सरस्वती जयवंत होवे ॥2॥

उस विशाल स्वर्ग में दोनों देवों ने विविध प्रकार का विलास किया। इस प्रकार वहाँ रहकर सुख भोगते हुए सात सागर की आयु बीत गयी ॥3॥ जो स्वर्ग में देवायु को बहुत मानते हैं, वे लोग कृपण मानस अर्थात अल्पबुद्धि हैं। परन्तु जो ज्ञानलक्ष्मी सम्पन्न हैं, उनके लिए तो समस्त काल द्रव्य (काल परिमाण) भी एक दिन के समान है ॥4॥

मंदराचल से पूर्व दिशा में लोगों के नेत्रों को प्यारा पूर्वविदेह स्थित है। वहाँ उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप से कालचक्र के आरे नहीं बदलते, तथा वहाँ लोक के नाथ तीर्थंकर (सदैव) उत्पन्न होते रहते हैं वहाँ नाभेय जिन (ऋषभनाथ), बाहुबलि तथा भरत और मेघेश्वर ये अरहंत सिद्ध एवं चक्रवर्ती सदैव विद्यमान रहते हैं। वहाँ शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है और जीव पूर्व कोटि वर्षों तक जीता है। वहाँ शत्रु के भय को न जानने वाला

पुष्कलावती नाम का देश है, जो जलनिधि के समान रत्नों को धारण करने वाला है, व जहाँ घरों के शिखरों से टकराकर बादल झरने लगते हैं। घने नंदनवन से वहाँ की दिशाएँ आच्छादित हैं तथा शस्य के कंपनशील तीक्ष्ण अग्रभागों से उसकी समृद्धि दृश्यमान है जहाँ दांतों को कंपायमान करने वाला शीतल पवन बहता है और कोकिला के सुमधुर स्वर से सब कंदर बिबर भर जातें है, क्रीड़ा पूर्वक बहता हुआ वायु सरल नामक वृक्षों को कंपित कर देता है, चंचल हरिणियां सीधी छलांग लगाती हैं, और जहाँ खेतों में खड़ी हुई चंचल आंखों वाली हालि (कृषक) वधुओं को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए पथिकों से मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तथा जहाँ ग्रामीण जन अत्यन्त प्रमोद पूर्वक रमण करते हैं, और जो नागरिकों के जोड़ों को (वहाँ रहने की) अभिलाषा उत्पन्न करता है, उस देश में मणिजटित प्राकार व जल प्रचार से युक्त परिखामंडल सहित तथा अनेक प्रकार के भोग भोगने वाले लोगों से मंडित पुंडरिंकिणी नामकी नगरी है॥1॥

बारह योजन लंबी और नव योजन विस्तृत उस नगरी को देखकर मोहित हुए मनुष्य व देव स्वर्ग को भी भूल जाते हैं। वह मनोरम नगरी भुवन के प्रदीप रूप जंबूद्वीप की तिलक भूत है। उस नगरी के बाहर अनेक वृक्षागुल्मों व लतामंडपों से अलंकृत उद्यान हैं व भीतर सर्वत्र नाना प्रासादों (मंड) से अलंकृत राजकुल हैं। वहाँ बाहर तालाबों सहित वाटिकाएँ हैं, व भीतर ताल मंजीर इत्यादि वाद्यवादन से युक्त नृत्यशलाएँ। बाहर विंडग वृक्षों से ललित सरपाली अर्थात् सरोवर-पंक्तियाँ हैं, व भीतर विदग्ध-जनों के नखों से व्रणित स्मरपालित (कामयुक्त) गणिकाएँ हैं। बाहर मुनिवरों से शोभायमान क्रीडा पर्वत हैं और भीतर चैत्यगृह। बाहर स्वच्छ जलवाली अत्यन्त रमणीय वापियां हैं, व भीतर पयोधरों मनोहर (स्तनों) वाली अतिरमणशील सुंदर रमणियाँ। बाहर (उद्यानों में) सुंदर फलों व पत्रों से युक्त मंडपस्थान हैं, तथा भीतर मनोवांछित फल देनेवाला सुपात्र दान किया जाता है। बाहर अश्वों सहित अश्वक्रीड़ा स्थल हैं, और भीतर नागरिक प्रजा रहती है। बाहर गजकुल अपने दाँतों की दीप्ति से, व भीतर बालक अपने रत्नाभरणों

की कांति से शोभायमान हैं। वहां गुणों का निवास तथा नयनों को आनंद देने वाला वज्रदंत नामका राजा था, जिस रणशूर के नाम से ही शत्रु बल दूर से ही भयभीत हो जाता था ॥2॥

उसकी यशोधना नाम की महा देवी स्वच्छकमल जैसे मुख वाली, कमल दल के समान नेत्रों वाली, कमल सदृश उज्ज्वल शरीर वाली और स्वयं कमला (लक्ष्मी) के समान थी, जो उसे बहुत प्रिय थी। ज्येष्ठ भाई भवदत्त जो देव हुआथा, वह स्वर्ग से च्युत होकर उसका पुत्र हुआ। वह सागर जैसा गंभीर और चंद्रमा के समान मुखवाला था, इसलिए लोग उसे सागरचंद्र कहने लगे। सब विद्याओं को सीखकर वह उनमें कुशल हो गया था और जिन भगवान् के पदयुगल रूपी कमलों का भ्रमर (भक्त) था। और वहीं पर लोगों के मन को आनंद देने वाली वीताशोक नाम की नगरी थी, जहाँ पर महानस (रसोई)में हविष (खाद्यसामग्री) को एकत्र करके सूर्यकांत मणियों को पाकाग्नि के काम में लाया जाता था। अथवा जहाँ सूर्यकांत मणि से उत्पन्न अग्नि से महानस में भोजन पकाया जाता था। जहाँ चद्रंकांत मणियों से झरा हुआ सुस्वादु, शीतल और विम्रल जल पिया जाता था, जहाँ मरकतमय भित्तियों की कृष्ण छाया पड़ने से अपनी गौरांगी प्रियाओं को भी श्यामवर्ण हो जाने से उनके स्वामी पहचान नहीं पाते थे, जहाँ इंद्रनीलमणियों से निर्मित व (हरित) मणियों से जड़ी हुई भूमि से कभी पहले ठगा हुआ मृग अब दूब को भी (हरित मणि समझकर) नहीं चरता; वहाँ याचकजनों के लिए कल्पदुम के समान व (राज्य) लक्ष्मी से अलंकृत महापद्म नाम का राजा था। वह मंत्री आदि नौ निधियों का रत्नाकर तथा षट्खंड वसुंधरा से कर लेने वाला चक्रवर्ती था। मणिमय मुकुटों के धारक बत्तीस सहस्र आज्ञापालक राजा उसकी सेवा करते थे। कटिहार, कटिसूत्र एवं (कर्ण) कुंडलों को धारण करने वाली उसकी छयानवे हजार रानियां थीं, जिनमें वनमाला महादेवी थी, जो अपनी मुखकांति से हरिणांक (चंद्रमा) की शोभा को जानने वाली थीं इस प्रकार चक्रवर्ती की विभूति के सभी गुण (सर्व साधन) उसके पास थे, एक पुत्र ही नहीं था, यह बात सदैव हृदय को दु:ख से जलाती रहती थी। जिन

भगवान का न्हवन और श्रमणों की वंदना के पुण्य प्रभाव से भवदेव देवता का जीव विशालनेत्रों वाली वनमाला का पुत्र हुआ ॥3॥

शुभ नक्षत्र, योग, तिथि और वार को पूर्णचंद्रमा के समान मुखवाले, बत्तीस उत्तम अंगलक्षणों के धारक तथा कुवलय के समान दीर्घ नेत्रों वाले उस पुत्र के जन्मदिन पर बहुत से परिजनों ने चक्रवर्ती को आनंद-बधाई दी। पुत्र के मुख को देखकर गंभीर स्वर से बोलने वाले उस राजा ने उसका नाम शिवकुमार रख दिया। बड़ा होता हुआ वह बालक कहीं भी (पृथ्वी पर) छोड़ा नहीं जाता था, तथा सब राजाओं के हाथों से हाथों तक भी नहीं पहुंच पाता था। आठ वर्ष का होते ही वह शिशुभाव को छोड़कर सकल विद्याओं व कलाओं का धाम बन गया। चक्रवर्ती ने कौतूहल पूर्वक उसे युवराज पद पर संस्थापित (अभिषिक्त) कर दिया और पांच सौ राजकन्याओं के साथ परिणय करा दिया। वह, आदेश दीजिए, जीवंत होइए आदि वचन पूर्वक जय जयकार करने वाले मंत्री व सामंतकुमारों से घिरा रहता था। जिस प्रकार उसे राजप्रासाद से बाहर न ले जाया जा सके, इस प्रकार अंगरक्षकों की बहुत बड़ी सेना द्वारा उसकी रक्षा की जाती थी। वह मृगनयनी रानियों के साथ सुख भोगता था, और रात्रि व दिन कब गये यह नहीं जान पाता था। तब तक इधर जहाँ वह विशुद्धगुणों का धारक सागरचंद्र रहता था, वहाँ उस पुंडरिंकिणी नगरी में इन्द्रियों का दमन करने वाले दयावान मुनि बिहार करते हुए पधारे ॥4॥

मति, श्रुत, अवधि और विमल-मनः पर्यय इन चार ज्ञानों के स्वामी सुबंधुतिलक नाम के चारण ऋद्धिधारी मुनि उपवन में ठहरे। ऋषिचरणों की वंदना का उत्साह मन में लिये हुए पौरजनों को चलते हुए देखकर कुमार सागरचंद्र भी वहाँ गया, जहाँ उद्यान में वे परम मुनि ठहरे थे। परम्परानुसार भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने जन्मान्तरों को पूछा। मुनि ने कहा-तुम दोनों भारतखंड में पवित्र मन वाले ब्राह्मण पुत्र थे। तू जेठा भाई भवदत्त था और तेरा छोटा भाई उत्तम भुजाओं वाला भवदेव था। तपश्चरण करके आयुष्य क्षय होने पर मरकर तीसरे स्वर्ग में उत्पन्न हुए वहाँ से च्युत होकर तुम व्रजदंत के

पुत्र सम्यक्त्वधारी राजकुमार हुए हो और वह जो तुम्हारा अनुज था, वह महान महापद्म चक्रवर्ती का शिवकुमार नाम का ज्ञानवान पुत्र हुआ है इस प्रकार संक्षेप में तुम्हारा भवांतर कह दिया गया। यह सुनकर व भवगति अर्थात् भवस्थिति को विद्युत् के समान चंचल मानकर जन्म मरण से भयभीत यह सागरचंद्र नीति-सदाचार युक्त राजपुत्रों के साथ दीक्षित हो गया ॥5॥

तपः श्री से भूषित अंग, गुणों से वेष्टित, राग व (पंद्रह प्रकार के) प्रमाद का नाश करने वाले, क्षमा, दम शील, नियम और व्रतोंरूपी शरीरवाले तथा इंद्रियों के दर्पको गलित करने वाले उन सागर चन्द्र मुनि को बारह प्रकार का तपश्चरण करते हुए, तथा ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों का अनुसरण (आरोहण) करते हुए चारण (ऋद्धि) आदि सभी ऋद्धियां उत्पन्न हो गयीं। पश्चात् किसी समय स्वाश्रय सुख (अर्थात् आत्म-सुख) में लीन रहते हुए वीताशोक नगरी में पधारे। मध्यान्ह में उन्होनें चर्या के लिए नगर में प्रवेश किया और विस्मितचित्त लोगों ने उन्हें ऐसे देखा मानो पहले से ही मुनि के उत्तम वेश के प्रति आदरयुक्त होकर बाल दिवाकर ही तप करता हो, (अन्यथा) अन्य किसका ऐसा निर्मल प्रताप हो सकता है, जिसने अपनी दीप्ति से नभस्तल को पिंगलवर्ण कर दिया हो? राजकुल के निकट ही एक घर से एक वणिक्पति ने शिरसा प्रणाम करके, ठहरिए ऐसा निवेदन करते हुए, विधिपूर्वक उन दिगंबर (संत) को पारणा करायी। इस आहारदान (के प्रभाव) से रत्नों की वर्षा ने श्रेष्ठी के घर को पूर दिया। उस आश्चर्य को देखकर वैभवसंपन्न लोगों के द्वारा किया हुआ बड़ा भारी कोलाहल उठा। उस कलकल को सुनकर, मन में आश्चर्यचकित होकर शिवकुमार अपने प्रासाद पर चढ़ गया। तब किसी एकने (राजकुमार से) वृत्तांत कहा, और श्रेष्ठी के घर से मुनि जाते हुए दिखाई दिये। 'इन मुनिवर को मैंने चिरकाल पूर्व देखा है' इस प्रकार कुमार मन में विस्मित हुआ, तथा मुनिदर्शन के कारण (पूर्वकृत) अशुभकर्म के क्षय होने से उसने अपने जन्मान्तर (अर्थात् पूर्वजन्म) को स्मरण किया ॥6॥

मैं इसका छोटा भाई था, यह मेरा बड़ा। इपी के होने वाले सुप्रसाद से मैंने सम्यक्त्व पाया था। तप करके हम दोनों स्वर्ग में देव हुए, फिर वहाँ

से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुए, इस प्रकार भवांतर को स्मरण करते ही वह मूर्च्छित हो गया। तब बड़ा भारी हाहाकार मचा। पति के दुःख से शोकातुर कुमार का अन्तःपुर धाड़ देने लगा। मंत्रियों व सामंतों की पुत्रियाँ इस प्रकार रोने लगीं-हाय! हम लोग हृदय फटकर मर क्यों नहीं गयीं, चंवर की वायु और चंदन से सींचने पर वह जिस-किसी तरह कष्ट पूर्वक उन्मूर्छित हुआ। उसने मंत्री पुत्र दृढ़धर्म को अपना जन्मान्तर स्मरण होना बतलाया (और कहा)- 'हे मित्र! मैं जरा-मरण युक्त इस संसार से उदासीन हो गया हूँ, चक्रेश्वर को मेरे वचन से कहना कि तप लेने में मुझे विघ्न न करें। वह गया, राजसभा में प्रविष्ट होकर प्रभु को प्रणाम करके बैठा, और कहने लगा- हे देव! आपका पुत्र आपसे विज्ञापना करता है कि यह भव (अर्थात् पुनः पुनः जन्ममरण) रूपी काला सांप सारे लोक को पराभूत करता है, जो कि इंद्रियोंरूपी फणा, चर्तुगतिरूपी मुख, मिथ्यात्व-मोहरूपी विसदृशनेत्र, रतिरूपी दाढ़ तथा विषयभोगरूपी चंचल जिव्हा से युक्त है, और शुभाशुभ कर्मफलरूपी गरल से भरा हुआ है। उसका क्षय करने वाला तपरूपी मंत्राक्षर (मंत्र) जिन भगवानरूपी गरुड़ ने उद्धृत किया है। वह मेरे द्वारा लेने और पालन करने योग्य है। वह (तप) बारह प्रकार का है और बहुत गुणों से भरा है ॥7॥

पुत्र के तप ग्रहण की बात सुनकर वह पुत्रवत्सल राजा वहीं विह्वल हो गया और उसे दुःख की महाज्वाला बढ़ गयी। करधनी को स्खलित करती हुई, पगनूपुरों से रण रण करती हुई, और स्वेदजल से आर्द्र रानियाँ (कुमार की माताएँ) वनमाला से अलंकृत होकर अर्थात् वनमाला देवी को आगे करके तुरंत कुमार के नेत्रों को आनन्द देने वाले आवास में पहुँची। चक्रेश्वर ने कहा-बेटा! तेरा यह प्रव्रज्या लेने का अभी कौन-सा काल है? तू अक्षय धन तथा रत्नऋद्धि से युक्त इस भली (अर्थात् सुंदर व सुखदायक) राज्यलक्ष्मी को भोग। तब कुमार कहने लगा-हे तात! यदि यह सुंदर है तो फिर (इसे भोगने वाले) चक्रवर्ती, वासुदेव और बलराम आज कहाँ है? सदा नये नये वरों का वरण करने वाली यह वसुमती वेश्या के समान किस-किस के द्वारा नहीं भोगी गयी। मैं तब इसे भोगूगाँ, यदि (कभी) आयु न टूटे, और यह दुस्तर

व्याधि तरंगिणी खंडित हो जाये, (अथवा) मैं तब इसका भोग करूँगा यदि जरा शरीर को क्षीण न करे और काल भुजंग की दाढ़ इसे कभी डंसे नहीं। परंतु यदि कल राज्य का विनाश होना हो, तो मैं आज ही अपने (मोक्ष साधन के) कार्य के लिए जाता हूँ। हे तात! मुझे अजर अमर व शाश्वत और श्रेष्ठ, ऐसे मोक्षनगर में निवास बनाना है, और मैं त्यजनीय अविद्यारूपी (भ्रान्त, असत्य एवं अशाश्वत) राजलक्ष्मी का शीघ्र ही त्याग करूंगा ॥8॥

(पुत्रके) निश्चय को जानकर चक्रेश्वर ने कहा-पुत्र (दुःख से) मेरा हृदय जल रहा है, तथापि मुझे यह कहना है कि इंद्रियों का निग्रह ही तप है और वह घर में भी सिद्ध हो सकता है। यदि मन में राग-द्वेष निवास नहीं करते तो तप लेकर वन में ही क्या करोगे? और यदि हृदय काम-क्रोधादि कषायों से रचित है, तो फिर वहाँ तपश्चरण कैसे साधा जा सकेगा? तो इसलिए मेरी यह अभ्यर्थना मानो कि घर में रहते हुए ही नियम और व्रतों को धारण करो। कुमार ने पिता के वचन स्वीकार किये और सब लोग अपने-अपने निवास को चले गये। उस दिन से लगाकर वह राजपुत्र घर में रहता हुआ भी घर के कार्यों से अलग रहने लगा। उसने मन वचन काय का संवरण कर लिया और नवविध ब्रह्मचर्य धारण कर लिया। पास में स्थित तरुणी समूह को वह रूप बनाये हुए व्याधिपुंज के समान मानने लगा। उसने मंत्रीपुत्र दृढ़धर्म से सम्मान पूर्वक कहा कि मुझे कांजी का ही आहार दिया जाये। न (तैयार) कराया हुआ, न स्वयं किया हुआ, न अपनी इच्छा (अनुमोदन) से बनवाया हुआ, ऐसा श्रावकों के घर से भिक्षा में स्वीकृत आहार मेरी पारणा के लिए छट्ठे आठवें दिन एकान्तर से ला देना, ऐसा जान लो। जब कुमार ने उसको ऐसा कहा तो वह दूसरे-दूसरे घरों से भिक्षा-भ्रमण करके कांजी सहित विशुद्ध भात उसे लाकर देने लगा और राजकुमार उसे अपने करपात्र में ही जीमने लगा। महाव्रतों-रूपी तीव्र शस्त्र को धारण करनें वाले उस उपशांत-मन राजकुमार के विषय (विषय वासना) नष्ट हो गये, प्रहार पड़ने से लोभरूपी गजेंन्द्र मारा गया। और राग भी दिन के समान (सान्ध्य अरुणिमा के रूप में) सन्ध्या की शरण में चला गया अर्थात् अस्तंगत हो गया। उसका भोग (भोगाभिलाष)

मरुत भोजी सर्पों में भोग अर्थात् फणाटोप के रूप में जा लगा, और अंजन अर्थात् पापरूपी कल्मष सीमन्तिनियों के नेत्रों में (काजल के रूप में) लग गया। तप का फल अर्जन करके वह चौंसठ हजार वर्षों तक जीवित रहा और आयुष्य के अन्त में जिन भगवान के द्वारा उपदिष्ट एवं आगम में निर्दिष्ट संन्यासमरण किया ॥9॥

ऐसा वह (शिवकुमार) तप के फल से ब्रह्मोतर स्वर्ग में अपने शरीर की गंध से वायु को सुगंधित करने वाला, दस सागर की स्थिर आयु वाला विद्युन्माली नाम का श्रेष्ठ देव हुआ है। यह कभी भी विनयगुण को न छोड़ने वाली चार देवियों के साथ सुख भोगता है। इधर सागरचंद्र मुनि भी निर्बाध (अखंड) समाधिपूर्वक मरकर उसी स्वर्ग में देव हुआ है। वह इंद्र के समान प्रशंसित प्रतींद्र हुआ है और देवताओं से नमस्कृत होता हुआ वहाँ विलास करता है। यह तप का महत् फल और इस प्रकार शरीर-कांति संबंधी विद्युन्माली देव की कथा कह दी गयी। अब यहाँ से सातवें दिन च्युत होकर, अन्तिमशरीरी मनुष्य होकर यह विद्या एवं बल के धाम विद्युत्चर नामक चोर के साथ तप लेगा। उस अवसर पर प्रणाम करके (व्यवहार) निपुण श्रेणिक राजा ने वर्द्धमान जिन से पूछा-'हे भट्टारक! इन चारों देवियों का विशेष तपानुष्ठानयुक्त पूर्व-भव कहिए।' (तब) जिनेन्द्र कहने लगे-भारत देश में जनसंकुल और विस्तीर्ण चंपा नामकी नगरी थी। वहाँ एक बहुत धनवान समृद्ध व स्वच्छ चित्तवाला सूर्यसेन नामका श्रेष्ठी रहता था। उसकी जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी व चौथी यशोमती नाम की पत्नियां थीं। वे बहुत सुंदर नखोंवाली तथा कामदेवरूपी धनुर्द्धर के पैने किये हुए बाण के समान तीक्ष्ण कटाक्षों वाली थीं, जो मानो उस रतिपति की सारे भुवन को बींधकर जीतने वाली चार बरछियाँ ही थीं ॥10॥

उनके साथ सुख भोगता हुआ श्रेष्ठी अपने कर्मों के वैसे भाव अर्थात् वैसी कुछ परिणति से पूर्वोपार्जित पाप के कारण सैकड़ों व्याधियों से ग्रस्त होकर कांतिहीन और अदर्शनीय हो गया। उसके जलोदर, काश, श्वास और त्रासोत्पादक क्षयरोग व भंगदर हो गया। अस्थिवात उसके शरीर को मोड़ने

व फोड़ने लगा। उसका मन विसदृश अर्थात् प्रतिकूल हो गया और समस्त वात-पित्तादि धातुएँ विकृत हो गयीं। अपनी पत्नियों की कांति देखकर वह रुष्ट होने लगा और प्रतिदिन अधिकाधिक ईर्ष्यालु होता गया। 'ऐसा कोई निवास नहीं है जहाँ पाप न हो, (ऐसा सोचते हुए) वह उन पर लाठी से भारी आघात करता हुआ रहने लगा। वह बड़ी क्रूरता से तीखे और कठोर वचन बोलने लगा (कि), परपुरुष चाहे वह चंद्र हो अथवा सूर्य, यदि वह घर के प्रांगण में, या दीवार के पास (कहीं भी) तुम लोगों के साथ देख लिया तो तुम लोगों का ओष्ठसहित नाक काट लूँगा। वह क्षुद्र यदि किसी कारण से बाहर जाता था, तो उन लोगों को मुद्रांकित ताले में बंद करके निवृत होता। उसने एक वृद्ध पुरुष की उनका कड़ा रक्षक नियुक्त कर दिया। (इस पर भी) जब भी वह लौटकर आता तो इस प्रकार देखता हुआ कि मानो तालों की मुद्रा तोड़ दी गयी हो, तथा अपनी शपथ देकर क्रोधपूर्वक पूछता-क्या कोई जार तो घर में नहीं आया? वे दु:खित होकर परस्पर में कहतीं-यह दुष्टभावों वाला हताश (दुर्जन) मरता भी क्यों नहीं, जो आने जाने वाले पितृ व मातृबन्धुओं (चाचा व मामा) को भी शयनीयों के रूप में देखता है अर्थात् इन पितृजनों के साथ भी हम लोगों के द्वारा संभोग किये जाने की नीच शंका करता है। इस प्रकार रहते हुए, व काल व्यतीत होते हुए प्रोषित-पतिकाओं को भय देता हुआ, रति को स्थापित करने वाला (अर्थात् रतिभाव को बढ़ाने वाला) व मिथुनों के लिए सुखकर वसंत मास आ गया ॥11॥

रावण के द्वारा हरी गयी सीता तथा विरहातुर कामिनियों के द्वारा निंदा किया जाता हुआ, तथा मारुत अर्थात् दक्षिण पवन के द्वारा दिशाओं (रूपी वधुओं) के मुख को चूमने वाला वसंत, रावण के द्वारा हरी गयी सीता के विरह में आतुर राम के द्वारा (सीता का कुशल समाचार लाने के उपरांत आशंसापूर्वक) देखे जाते हुए एवं मारुत अर्थात् अपने पिता पवनंजय के द्वारा (स्नेह पूर्वक) चुंबित मुख हनुमान के समान विलास करने लगा॥

प्रतिदिन जैसे-जैसे रात्रि का मान घटने लगा, वैसे-वैसे जिनके प्रिय दूर हैं, ऐसी कामिनियों की निद्रा भी क्षीण होने लगी। प्रतिदिन जैसे-जैसे

दिवस-प्रहर बढ़ने लगा वैसे-बैसे कामियों का रतिरस भी बढ़ने लगा। प्रतिदिन जैसे-जैसे आम्र पर बौर आने लगा, वैसे-वैसे मानिनियों का मान मद मुकुलित अर्थात् क्षीण होने लगा। जैसे-जैसे कलकंठी कोकिला का कलरव सुनाई देने लगा, वैसे-वैसे पथिक घरों की ओर मति (मन) करने लगे। जैसे-जैसे गढ़ों में जल क्षीण होने लगा, वैसे-वैसे मिथुन आभूषण कम करने लगे। जिस प्रकार भ्रमर पाटल पुष्पों की ओर दौड़ने लगता है, उसी प्रकार प्रभावती अर्थात् सुंदरी नायिकाएँ अपने प्रियपतियों के संग होने लगीं। जिस प्रकार प्रियका संगम विरह को बाहर निकाल देता अर्थात् नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कुसुमों की समृद्धि बाहर निकलने अर्थात् प्रकट होने लगी। जिस प्रकार भ्रमर मालती पुष्प से भयभीत (त्रस्त, निराश)हो, गुंजार करने लगता है, उसी प्रकार घर-घर में गंभीर तूर बजने लगा। अतिमुक्तक का फूल जैसे खिलता है, वैसे ही कामिनीजन अत्यन्त स्वच्छन्द होकर घूमने लगीं। विचकिल्ल के वृक्ष ने जैसे कुसुम समूह को दर्शाया, वैसे ही पथिक वेग पूर्वक घर जाने लगे। पलाश नीले (हरित) हो गये, और किंशुकलाल, परंतु भ्रान्तचित्त (कामी) को (हरित दलों के ऊपर लाल-लाल पुष्पों को देखकर लगा कि कहीं ये शुक पक्षी तो नहीं हैं। लोग देवकुलों में पूजा समारने लगे, और मिथुनों के हृदय में समान भाव से रति उत्पन्न हो गयी जिस प्रकार गीले चनों को (देखकर) घोड़े नाचने लगते हैं, उसी प्रकार नव बसंत को (देखकर) तरुणियाँ नाचने लगीं। पुलिंद (भील) दावानल लगाने लगे और कामदेव ध नुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा। मंद-मंद मलय पवन बहने लगा और लोग मध ुर स्वर से वीणा (वल्लकी) बजाने लगे। अथानन्तर वहीं बसंत की शुक्ल पंचमी के दिन, नंदनवन के देवालय में रहने वाले, अपने फणमणि के तेज से अग्नि के तेज को तिरस्कृत करने वाले, ज्वलन नामक नागदेव की यात्रा के लिए लोग चले। नागरिक जन तथा अपने परिजनों सहित राजा, अपने-अपने वैभव को प्रगट करते हुए नगरी के रक्षक नाग-यक्ष की यात्रा के लिए उद्यान में गये ॥12 ॥

तब रविसेन ने अपनी चारों प्रियाओं को विविधाभरणों से भूषित करके पालकी में बैठाकर रक्षक के साथ यात्रोत्सव में भेजा। वे अपने शरीर की कांति से वन को प्रकाशित करती हुई, तुरंत नागभवन को गयीं। फणशोभा से युक्त नाग की पूजा, प्रणाम करके, उसको अपने हृदय का दुख कहने लगीं-हे परमेश्वर! बस इतना करना कि सूरसेनके समान कांत मत देना। फिर वहाँ से निकल कर वासुपूज्य के आसन्नवर्ती रमणीक जिनमंदिर में अर्हंत भगवान् को प्रणाम करके प्रसन्न हुई, और वहाँ सुमति नामक मुनि पुंगव को देखकर वंदना की। उन्होंने मुनि से पूछा और वे भवनिशा अर्थात् मोहान्धकार को नष्ट करने वाले महर्षि पुण्य-पाप का फल कहने लगे- 'मनुष्य जो सुखका भाजन दिखाई देता है, वह सब पुण्य का ही प्रभाव कहा जाता है। पाप से जीव शूल लगने के समान दुःख से दुःखी, भार से आक्रांत एवं प्यासा और भूखा रहता है। चित्त में पुण्यफल की अभिलाषा के साथ वे श्रावक व्रतों को लेकर घर आ गयीं। कुछ दिनों में व्याधि-संतप्त और सत्वहीन होकर सूरसेन मर गया। पीछे अपने द्रव्य से केवलज्ञान के धारक जिनभगवान् का मंदिर बनावाकर वे चारों स्त्रियाँ घर से निकलकर सुव्रता (आर्यिका) के पास आर्यिकाऐं हो गयी। तप साधकर और समाधि पूर्वक मरकर वे चारों निरन्तर सुख वाले ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में विद्युन्माली देव की प्रियाएं बनीं ॥13॥

यह विद्युत्वती है, यह विद्युत्प्रभा, यह अदित्यदर्शना तथा इनमें यह जो अन्य चौथी प्रिया दिखाई देती है, वह सुदर्शना कहलाती है। इसके अनन्तर मगधपति कहने लगे-देव! तुम्हारे चरणों में यह विज्ञप्ति है कि जिसके साथ यह (विद्युन्माली देव) तप लेगा, वह विद्युत्चर नाम का चोर कहाँ उत्पन्न हुआ है? सम्प्रति वह लोगों को लूटता हुआ कहाँ विद्यमान है? और किस कारण से चोरपने को प्राप्त हुआ? तब जिनेंद्र कहने लगे-मगधदेश में पृथ्वी में श्रेष्ठ हस्तिनापुर नाम का नगर है। वहाँ शुत्र बल रूपी बादलों के लिए प्रलय की आँधी के समान विश्वंधर नाम का राजा रहता है। उसकी श्रीसेना नाम से विख्यात प्रिया है, उसको विद्युत्चर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़े होते हुए उस कुमार ने सकल श्रेष्ठ विद्याओं का पार पा लिया, और इस पृथ्वीतल पर

जो-जो कुछ भी विज्ञान है, उस सबको उसने निःशेष रूप से जान लिया। इस प्रकार प्रतिदिन विद्याओं का अनुशीलन करते हुए, उसके चित्त को चोरी भा गयी। औषधि से पहरेदार को स्तम्भित करके रात्रि में अपने ही तात के घर में प्रविष्ट हो गया। जागते हुए राजा को भी सुप्त (जैसा) करके उसने कंठा, कड़ा और कटिसूत्र हर लिये। तो प्रभात होने पर राजा चिंता में पड़ा कि क्या मैंने यह (चोरी) स्वप्न में देखा? अथवा यदि स्वप्न है, तो फिर रत्न और कंठा व कटक (कड़ा) प्रमुख आभरण कहाँ गये? अपने पुत्र को बुलवाकर इस कार्य से रोका कि यह तस्कर-कर्म सज्जनों से निंदित हैं, तुझे राज्य से क्या नहीं पूरता? (तो फिर) हे पुत्र! तू किस कारण से चोरी करता है? यह सुनकर कुमार ने कहा-तात! यह सावधि (सीमित) राज्य मुझे कैसे रूचे? यह जो अनन्त पर-धन दिखाई देता है, वह समस्त अक्षय निधि मेरे हाथों में बसती है। इस प्रकार नित्य रोकने पर भी वह नहीं माना, बल्कि तात से रूसकर चला गया। राजगृह नगर में तरुणों की प्यारी, व काम की लता के समान कामलता नामकी कामिनी है, उसके साथ विलास भोगता है और नगर को लूट-लूटकर धन उसके घर में लाकर भर देता है। न्याय नीति से रहित तस्करवृत्ति से, वह विद्यवान, उत्तम वीरपुरुष विद्युत्चर विलास करता हुआ तुम्हारी नगरी में रहता है॥14॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर-कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार वीर-रसात्मक महाकाव्य में 'शिवकुमार का विद्युन्माली देव बनना' नामक यह तृतीय संधि समाप्त॥संधि-3॥

संधि-4

गुणहीन लोग गुण को समझते नहीं है; और जो गुणी है, वे दूसरों के गुण को देखना भी नहीं सहते। जिन्हें दूसरों के गुण प्रिय हैं, ऐसे कवि वीर के समान गुणी लोग विरले ही होते हैं।

तब मगधराज ने कहा-भगवान् बतलाइए उसकी कौन माता है, कौन पिता? वे कहाँ है? तथा कौन सा वह कृतार्थ गोत्र है जहाँ विद्युन्माली नर रत्न इस काल में जन्म लेगा? तब नागेन्द्र नरेन्द्र व अमरेंद्रों द्वारा वंदित चरण जिनश्रेष्ठ वर्द्धमान कहने लगे-यहीं तुम्हारे इसी राजगृह नामक उत्तम नगर में, जहाँ देवकुलों के श्रृंगों से मेघ टकराते है, यहां जो नेत्रों को आनंद देने वाला अरहदास नामका वणिकपुत्र दिखाई देता है, इसी की अत्यन्त विनयशील जिनमती नामकी प्रिया के गर्भ में उत्पन्न होगा। तीर्थंकर के इस वचन (कथन) को सुनकर एक यक्ष नाचता हुआ उठा, और हर्षोत्कंठित होकर कहने लगा-(अपने वंश की) कैसे प्रंशसा करूँ? मैं स्वयं को परमकृतार्थ मानता हूँ जिसके गोत्र में भवकलि अर्थात् सांसारिक कालुष्य या कर्ममल से रहित (अथवा कर्ममल का नाश करने वाला) अन्तिम केवली उत्पन्न होगा। वह कुल परम धन्य है, जहाँ अरंहत, सिद्ध व अन्य केवलज्ञानी जन्म लेते हैं। तब विस्मित मन से राजा ने जिनवर से पूछा- हे देव! कहिए, आनंद पूर्वक बोलता हुआ यह यक्ष किस कारण से नाच रहा है॥1॥

इस यक्ष देव का मनुष्य गोत्र में संबंध कैसे हो सकता है? यह बात तो (सिद्धान्त) विरुद्ध पड़ती है। तब भगवान् कहने लगे-तुम्हारी इसी नगरी में धनदत नाम का एक धनी व संतोषी वणिक् रहता था। उस गुणवान चंद्र की रोहिणी व राम की रति अर्थात् सीता जैसी गोत्रवती नामकी पत्नी थी। उसे अरहदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो मनुष्य वेश में पुण्य का पुंज ही आ गया हो।दूसरा पुत्र जिनदास कहलाया, जो अपनी यौवनावस्था में दुर्व्यसनों से भोगा गया (वशीभूत हुआ)। वह प्रतिदिन घर से द्रव्य अपहरण करके, उसे

देकर वेश्या जन का भोग करता, और डिंडिम व डक्का बजते हुए सजी हुई दुकानों में मद्य पीता, तथा जूए का एक बड़ा फलक सजाकर कंकरों के स्वर और जुआरियों की विरस ध्वनियों के साथ जुआ खेलता। एक दिन वह जुए में सुवर्ण की बतीस सहस्र मुद्राऐं हार गया। द्यूतगृह में छलक नामक जुआरी ने अत्यंत अपमानित करके उसको पकड़ लिया। इसने कहा-यह क्या भारी बात है? मैं इसे तृण बराबर समझता हूँ, घर जाकर तुझे सुवर्ण (मोहरें) दे दूँगा। तब छलकने ये निष्ठुर वचन कहे-यदि घर को चले तो सिर तोड़ दूँगा। रे जिनदास! बड़े बोलों से दूसरे जुआड़ियों ने तुझे बड़ा गर्वित कर दिया है (बहुत चढ़ा दिया है); 'परंतु तुम मेरी यह पैज (प्रतिज्ञा) जान लेना कि घर तो दूर ही रहे, तू एक पैर भी आगे रख ले तो मैं अपना सुख्यात (सार्थक) नाम छोड़ दूँ। इस प्रकार पहले से ही पैज करके वह उसके प्रति ईर्ष्या (द्वेष) युक्त हो गया। इस प्रकार दोनों में निरर्गल (निर्बाध) झगड़ा बढ़ा। और जुआड़ी ने जिनदास को कटारी से आहत किया। तब जिनदास को भूमि पर पड़े हुए और आँतें निकली हुई देखकर 'छलक' अपने प्राण लेकर भाग गया ॥2॥

और इधर उस दु:खद वृत्तांत को सुनकर अरहदास जिनदास को घर ले गया। आँतों को धोकर (अन्दर करके -टि0) व्रण को सिलवा दिया। तब जेठे भाई ने कहा-द्यूतका फल पा लिया। तू निर्मल श्रावक कुल में उत्पन्न हुआ, परंतु हे बंधु! तूने एक भी व्यसन नहीं छोड़ा। बड़े भाई की इस बात को जानकर जिनदास ने कहा-कुल को मलिन करने वाला मैं कृतान्त से खा लिया गया। अब इस मरण-समय में जो करना चाहिए, ऐसा ही कुछ उपदेश मुझे दीजिए। फिर जिनदास ने श्रावकव्रत लेकर संन्यास पूर्वक प्राणोंका त्याग किया। वही (जिनदास का जीव) मरकर यहां शुभमन वाला, कुंडल कड़े और मौड़ (मुकुट) से आभूषित शरीर वाला यक्ष हुआ है। 'मेरे भाई को सुर नर वंद्य चरमशरीरी पुत्र होगा, इस कारण से हर्षितमन होकर यह बारबार अपने गोत्र की प्रशंसा करता हुआ नाच रहा है। यह विद्युन्माली देव लक्ष्मीवान् (पउत्त?) वणिक्पुत्र अरहदास का प्रिय पुत्र होकर, जंबूस्वामी नाम उपार्जन

करके, गृहवास को छोड़कर तप लेगा और भवजल अर्थात् सांसारिक जड़ता (मोह एवं अविद्या) का नाश कर, केवलज्ञान प्राप्त करके, मोक्षधाम को जायेगा। इसके पश्चात् जिनवचन को धारण करने वाले श्रुतकेवली होंगे। कर्माश्रवरूपी प्रबल पवन के दर्प अर्थात् उत्कटता से युक्त अवसर्पिणी काल में (अज्ञान) अंधकार पुंज भ्रमण करेगा और वह त्रैलोक्य के प्रदीप रूप केवलज्ञानियों रूपी दीपकों को बुझा देगा ॥3॥

आगे निरंतर जिस क्रम से जंबूस्वामी कथानक होगा, उस सबको वीर जिनेन्द्र ने केवलज्ञान में देखेनुसार विस्तार पूर्वक नरेंद्र को कहा। ऋषभ-प्रमुख चौबीस जिनेश्वर, भरतादिक बारह चक्रेश्वर, नौ बलदेव नौ केशव, और तीन खंडों को भोगने वाले नौ प्रतिकेशव, इस प्रकार तुमने जो प्रश्न पूछे उनके उत्तर रूप गुणों के निधान त्रेसठ महापुरुषों के पुराण कहे गये और भी जो सैकड़ों चरित्र हैं, वे सब भगवान ने राजा को कहे। नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों की संतति अर्थात् क्रम परम्परा से युक्त चार गतियाँ कारणों सहित कहीं। जीव शुभाशुभ कर्म व धर्माधर्म का फल जिस प्रकार भोगता है,वह कहा। पुनः कथाविराम होने पर राजा ने भगवान का अभिनंदन किया, और वंदना की - हे मद (मान कषाय) को जीतने वाले परमात्मा! परमपुराण पुरुष, देवाधिदेव आपकी जय हो! हे महात्मन्, निरंजन अरंहत, आपकी जय हो। हे सिद्धिवधू के मनको रंजित करनेवाले, आपकी जय हो! जय हो! हे निर्मल-शासन (पवित्र धर्मोपदेश देने वाले) तथा प्राणियों को (सद्गति रूपी) आश्वासन देने वाले देव! आपकी जय हो! हे जिनेश्वर! हे परम+आत्मा-परमात्मा आपकी जय हो! और हे देव! दुस्तर भवसागर से पार उतारने वाले आपके चरण युगल मेरे धारक अर्थात् अभ्युद्धारक हों ॥4॥

त्रिलोक के अग्र भाग पर विराजमान, महामेरु के समान धीर, जिनके अशुभकर्म क्षीण हो गये हैं, ऐसे भव्य जनों रूपी कमलों को प्रबुद्ध करने के लिए एकमात्र सूर्य, ऐसे वीर भगवान को नमस्कार करके सभा को भास्वर करने वाली स्थिर शोभा में देदीप्यमान देहवाला नरेंद्र जिनोपदिष्ट धर्म व सुकर्म का अनुस्मरण करता हुआ सामंतवृंद तथा अपनी रानी एवं सेना

सहित राजगृह नगर में प्रविष्ट हुआ। वह मृगलोचना तथा घने व ऊँचे स्तनों वाली प्रमदाओं मनसमूह रूपी धन को चुराने वाला था। दूसरों के लिए दुर्लंघ्य ऐसे अनिष्ट संघ अर्थात शत्रुसंघ को उसने नष्ट कर दिया था, एवं उसका प्रताप निरन्तर स्फुरायमान अर्थात बृद्धिंगत हो रहा था। ढक्का के बजने व भटों की छोड़ी हुई हांकों से बड़ा कोलाहल हो रहा था। उसका वक्षस्थल राज्यलक्ष्मी से आलिंगित था, और नृपाचार अर्थात राजनीति में वह पूर्ण दक्ष था। इस प्रकार प्रजापालन प्रिय वह राजा सुंदर माणिक्यों से जगमगाते हुए महा सिंहद्वार से अपने घर में प्रविष्ट हुआ। स्वमार्ग अर्थात् स्वधर्म में सावधान, जिनेन्द्र के भक्त दीनशील व भोग (साधनों) से युक्त पुरवासी लोग अपने-अपने सुंदर घरों में स्थित हो गये। तदनन्तर क्रमशः सातवीं रात्रि आने पर चूने से पुते हुए, चित्रों से सजे हुए व दीप्तिमान और पवित्र श्रेष्ठ निवासगृह में रात्रि के अवसान मात्र शेष चौथे प्रहर के रमणीय समय में, मृगांक के समान धवल, सुन्दर चादर से ढके हुए, सुंगधित व उत्तम रूई के गद्दे पर पलंग के ऊपर सोती हुई, उद्दाम लावण्यवती जिनमती नाम की अरहदास की कुल पुत्री (कुलवधू) ने ये मांगलीक स्वप्न देखे ॥5॥

उसने अपनी गंध से भ्रमर कुल को आकर्षित करने वाले जंबूफलों का गुच्छा देखा। धग-धग करके जलते हुए समस्त दिशाओं को प्रकाशित करने वाली निर्धूम अग्नि को देखा। फूले हुए शालिक्षेत्र को देखा, जिसकी शुभगंध से युक्त पवन समस्त रंध्रों को पूरता हुआ सर्वत्र प्रसृत हो रहा था। चक्रवाक, हंस, और बलाकाओं के कूजन से युक्त फूले हुए कमल सरोवर को देखा, तथा मगरमच्छ और कच्छपों के संचार से युक्त एवं रत्नों से पूर्ण उदधि को देखा। उसने जो जैसा देखा था, वैसा प्रभात में जागने पर अपने भर्त्तार को कहा। उसको सुनकर प्रसन्नचित होकर श्रेष्ठी तुरन्त अपनी पत्नी तथा स्वजनों के साथ जिनमंदिर में पापों का नाश करने वाले महर्षि के पास गया। भक्तिपूर्ण नम्र हृदय से प्रणाम करके सारे स्वप्न दर्शन को बतलाया। वे भगवन् स्वप्नों का परमार्थ इस प्रकार कहने लगे-अरहदास! स्वप्नों का अर्थ सुनो। जंबूफलों के देखने से तुम्हें गुणवान व कामदेव के समान रूप वाला पुत्र

होगा। अग्नि देखने से वह कर्मों को जलायेगा और शालिक्षेत्र देखने से (केवलज्ञान रूपी) श्रेष्ठ लक्ष्मी का धाम होगा। सरोवर देखने से वह (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप) रत्नों का धारक होगा, और उदधि देखने से भवसमुद्र से पार होगा। तुझे नेत्रों को आनंद देने वाला पुत्र होगा, जो गृहवास छोड़कर दीक्षा लेगा, व महान् गुणों का धारक चरमशरीरी होगा ॥6॥

उस स्वप्न फल को सुनकर वणिक्वर हर्षित हुआ और मुनि को नमस्कार करके परिजनों के साथ घर गया। उसी समय विद्युन्माली देव स्वर्ग से च्युत होकर जिनमती के गर्भ में आया। उसके गुरु भार से जिनमती के कोमल अंग कुछ दिनों में आलस्य युक्त हो गये। उसका पांडुर वर्ण मुख चन्द्र को जीतने लगा, और श्वेत स्तन मुख ऐसे काले हो गये मानो उनके मुंह पर स्याही लगा दी गयी हो अथवा मानो लक्ष्मी ने मरकतमणि कलशों को सबसे ऊपर शिखर रूप से रखकर रजतमय कुंभ धारण किये हों, अथवा मानो मकरध्वज के प्रासादशिखर पर दो मयूर चढ़े हों अथवा वे ऐसे श्वभ्र हंसों के समान शोभित हो रहे थे, जिनके मुख में चंचुसे खंडित कीचड़युक्त कमल कंद- कमलांकुर हों । वह विशुद्धमति गर्भवती उस गर्भ से इस प्रकार शोभित हुई जैसे दान से समृद्धि। पास में स्थित ज्येष्ठाओं अर्थात् (प्रसवकर्म में कुशल) वृद्ध परिचारिकाओं, व नये दुग्ध से युक्त पयोधरों से वह ऐसी लगती थी, मानो ज्येष्ठा(नक्षत्र) के पास वाली, नये जल से परिपूर्ण पयोधरों से युक्त पावस-श्री ही हो। बसंत मास में शुक्लपक्ष की पंचमी को निर्मली चंद्रमा के रोहिणी-नक्षत्र में स्थित होने पर उसने प्रत्यूषकाल में रोहिणी नक्षत्र में शुभलक्षणों से युक्त, व कुल के लिए कल्याणकारी और जगवल्लभ अर्थात् सर्वलोकप्रिय पुत्र को जन्म दिया। उस नगरी का क्या वर्णन किया जाये जहाँ कि दशों दिशाओं को पूरने वाले बधाई के तूरों और मंगलगान गाते व पढ़ते तथा नृत्य करते हुए लोगों के कारण कान पड़ा कुछ सुनाई नहीं देता था ॥7॥

तरुण, अरुण व दीप्त तेजवाले बालरवि ने अपने तेज के प्रसार से निशांत अर्थात् उपकाल को अलंकृत किया अथवा मानों उस शिशु ने ही अपने

अति आरक्त वर्ण व दीप्तिमान तेज के प्रसार से निशांत अर्थात् राजगृह को अलंकृत किया, तथा प्रसूति गृह में जलाये हुये दीपक समूह से उत्पन्न दीप्तिको अपनी देहकांति से निष्प्रभ करके दूर कर दिया। सुख, समृद्धि एवं अभ्युदय की बधाई देने वाले लोगों के द्वारा बजाये जाने वाले पटुपटह, तीखे तरड, मंदस्वर वाले बहुत से मर्दल, और उद्दाम व मधुर वेणु तथा वीणा की ध्वनि एवं साल व कंसाल की ताल के अनुसार आनंद से ईषन्मत्त हुई, घूमती हुई व नाचती हुई चंचलाक्षी तरुणियों के महा समूहों के परस्पर संघट्टन से टूटते हुए आभरणों की मणियों से चतुष्पथ मंडित हो गये। लटकाये हुए प्रतिपट्ट व पटोल, पांड्य देश निर्मित नेत्र नामक वस्त्रों से छाये हुए मंडपवितानों में लटकती हुई मुक्ता फूलों की मालाएँ व झूलते हुए माणिक्य के झूमकों से फैलते हुए इंद्रायुध के समान पंचवर्ण किरण जाल से घर-प्रांगण चित्रित जैसे हो गये। श्रेष्ठी के द्वारा धान्य, धन, रत्न व उत्तम वस्त्रों की वर्षा अर्थात् अपरिमाण भेंट द्वारा सब लोगों का सन्मान किये जाने पर छठे दिन रात्रि-जागरण प्रमुख उत्सव के समय देवताओं के चित्त को भी चमत्कृत करने वाली कोई अपूर्व ही शोभा उस नगर में अवतीर्ण हुई, और इस प्रकार लोगों का आनंद बढ़ा।

और भी-कार्तिक नहीं होने पर भी आकाश निरतिशय रूप से अभ्रमुक्त हो गया; तथा वर्षाकाल नहीं होने पर भी असार (क्षुद्र) रज मानो धरातल में पूर्ण उपशम को प्राप्त हो गया। उस समय काल (ऋतु) नहीं होने पर भी न केवल वृक्षसंतति, बल्कि समस्त वनस्पति स्वयं प्रकर्षता से प्रफुल्लित हो उठी, और असुर कुमारों सहित देवों ने वहाँ सुरा के समान भास्वर सुवर्ण की वृष्टि की। इस प्रकार निरंतर मंगल मनाते हुए दसवें दिन स्वप्न में जंबूफलों के दर्शन और उसके फल के कथनानुसार श्रवणसुखद व हृदय को प्यारा जंबूस्वामी नाम रखा गया ॥8॥

प्रतिदिन बढ़ती हुई देह-ऋद्धि अर्थात् दैहिकसौंदर्य के साथ बालक द्वितीया के चंद्रमा के समान इस तरह बढ़ने लगा, जैसे जाते-जाते महानदी का

विस्तार, दिन दिन फूलता हुआ चक्रवर्ती का कोष, अथवा सुनते-सुनते पिंगल-ग्रंथ का विस्तार, विद्वानों के द्वारा व्याख्या किया जाता हुआ व्याकरण, और बारहविध तप से मुनि का चारित्र बढ़ता है आठ वर्ष की आयु होने पर कुमार ने सकल विद्याओं का पार पा लिया। गुरु के पढ़ाने के निमित्त से उसने मंत्रार्थों अर्थात् सूत्रों के मंतव्यों को और शास्त्रों को पहले से ही पढ़े हुए के समान जान लिया। त्रिवर्ग फल अर्थात् धर्म, अर्थ व काम का संपादन करने वाली और (चित्त में) रस अर्थात् आनंद उत्पन्न करने वाली निःशेष कलाओं का अभ्यास कर लिया। जैसे-जैसे वह तरुणावस्था में प्रवेश करने लगा। वैसे-वैसे रतिपति (कामदव) उससे रूपभिक्षा मांगने लगा-इस कुमार से सचमुच मैं भूषित हो गया, क्योंकि श्रृंगार से ही अपनी सराहना होती है। बहुत काल से स्थिर सोयी हुई उस कामदेव की कीर्ति ने त्रिभुवन में भ्रमण के लिए गमन की तैयारी की। परंपरा से ही एक से दूसरे मनुष्य में संक्रमण करने के चंचल स्वभाव वाली कमला (लक्ष्मी) ने जंबूस्वामी रूपी कमल में स्थायी विश्राम स्थान बना लिया। आज्ञाकारी राजकुमार से घिरा हुआ वह जंबूकुमार राजलीलाको धारण करता हुआ व भोगों को भोगता हुआ, परम विनोदपूर्वक नाना प्रकार की क्रीड़ाऐं करने लगा ॥9॥

ऐसा कोई चौक नहीं था, न घर और न राजकुल, न हाट न उद्यान और न देवकुल जहाँ जंबूस्वामी का वर्णन नहीं किया जाता, तथा उसका नाम ले-लेकर गाया, नाचा व (स्तुति पाठ) पढ़ा नहीं जाता। उसके धवल यश ने भुवन को इस प्रकार धवलीकृत कर दिया, मानो पूर्णचंद्रमा की ज्योत्स्ना रूपी रस से लीप दिया गया हो। ऐसा कौन-सा हाथी था जो (उसके धवलयश से अभिभूत होकर) ऐरावत न हो गया हो, ऐसी कौन-सी नदी थी जो सुरसरि गंगा न हो गयी हो ऐसा कौन सा मणि था जो मुक्ताफल न हो गया हो और ऐसा कोई पर्वत न था जो तुहिनाचल अर्थात् हिमालय न हो गया हो, ऐसा कोई पक्षी कहाँ था जो हंस न हो गया हो, और ऐसा कौन सा समुद्र था जो क्षीरोदधि न बन गया हो, जो शेष (नाग) न बन गया हो, ऐसा विषधर कौन रह गया था; और ऐसा पादप कौनसा था जो लोध्र का महावृक्ष नहीं बन गया था। उसके

दर्शन से नगर की नारियाँ मकरध्वज के इर प्रहार की वेदना से क्षुब्ध हो उठीं। कोई विरह से कांपने लगी, व शून्य भाव से आलाप करने लगी कि मेरा हृदय रूपी धन तो इस कुमार के द्वारा ले लिया गया, फिर भी जो मुझे दु:ख का सहन (वेदन) कराता है, उससे मुझे विस्मय होता है, कि कहीं कोई दूसरा भी मन (हृदय) है क्या (जो इस कुमार के साथ नहीं गया) ? ॥10॥

किसी कामिनी का विरहानल प्रदीप्त हो उठा, और वह अश्रुंजल के पूर के द्वारा कपोलों पर बिखर गया। कोई शून्य बनाती हुई हाथ को घुमाने लगी जिससे उसका दाँत का बना चूड़ा चूर-चूर हो गया अथवा कोई इस तरह से हाथ घुमाने लगी जिससे उसका हाथी दांत का बना चूड़ा हाथ को शून्य करके (अर्थात् हाथ से गिरकर) चूर-चूर हो गया। किसी ने लालचंदन का लेप लगाया जो उसके शरीर में लगते ही (विरहताप के कारण) छमछम करके चटक गया। कोई रक्तचंदन से सींची जाने पर भी सूखने लगी, और ऐसी लगी मानों कामदेव की लोहू से लिप्त बरछी ही हो। कोई लीला पूर्वक कमलपुंज को बिखेरने लगी, और इस प्रकार कामोन्मत्त हस्तिनी के समान क्रीड़ा दिखलाने लगी। बेचारा क्षुद्र हृदय तो विरह से क्षय ही हो जाता यदि विरहानल के ताप को बाहर निकालने के लिए नि:श्वास रूपी रहट यंत्र न होता। स्तुतिमुखर बंदीसमूह से उस श्रेष्ठकुमार को रास्ते में जाते हुए जानकर कोई जो कंचुक को बाहुओं में पहन चुकी थी, वह उसे कंठ में नहीं पहन पायी। कोई उतावलेपन के कारण गले में हार नहीं डाल सकी और अपने एक विशाल नेत्र को भी अधूरा ही अंजन लगा पायी। एक वलय को हाथों में पहनती हुई, केशपास को लहराती हुई, तथा (कामोत्तेजना से) कांपती हुई, मंडनकर्म को पूर्ण किये बिना ही कामोन्माद से पीड़ित होकर स्फटिकमय तोरण स्तम्भ से जा लगी। कोई बाला जिसके स्तन प्रकट हो रहे थे और जिसकी जंघाओं का अन्तराल मदजल (रजस्राव) से भर रहा था, वह कुमार को कहने लगी- जरा तब तक ठहर जा, जब तक मैं तेरे रूप की अनुकृति से अनंग को लिख लूं (चित्रित करलूं)। उस कुलशील से संपूर्ण कुमार की सौंदर्य लक्ष्मी का कुंदपुष्प के समान धवलयश आकाश में चढ़ गया। केवली या तीर्थंकर के

अतिरिक्त लोगों में अन्य किसी सामान्य व्यक्ति को ऐसा सौंदर्य प्राप्त नहीं होता ॥11॥

उसी नगरी में जिनभगवान् के चरण कमलों का भक्त समुद्रदत्त नाम का श्रेष्ठी रहता था। उसकी पद्म के समान गौरवर्ण पद्मावती नामकी प्रियतमा थी, उसे पद्मश्री नामकी श्रेष्ठ कन्या हुई। दूसरा कुबेरदत्त नामका सेठ था, उसकी कनक (सुवर्ण) माला के समान सुंदर कनकमाला नामकी कांता थी, उसे कनकश्री नामकी दुहिता हुई, जो विकसित शतपत्र व शशांक के समान मुखवाली थी। तीसरा वैश्रवण (कुबेर के) समान युक्तिवाला (अर्थात् धनके संवर्द्धन, संरक्षण एवं संविभाजन में कुशल) वैश्रवण नामका श्रेष्ठी था, जिसकी विनयमाला नामक भार्या, से विनयश्री नामकी पुत्री हुई। चौथा धनदत्त था, उसकी कुवलय अर्थात नीलकमल के समान नेत्रों वाली विनयमती नामकी भार्या से रूपश्री नामक कन्या हुई। ये चारों कुमारियाँ मानों मदन के द्वारा (लोगों पर) घुमायी हुई बरछियां ही थीं। जब ये गर्भ में ही थीं, तभी इनके पिताओं के द्वारा ये कुमार के लिए दे दी गयीं और इन्हें स्वीकार कर लिया गया। यह जानकर कि अशेष शास्त्रसंपत का पारगामी व लोक में श्रेष्ठ कुमार इन लोगों का पति होगा, इस हेतु से इन सबको नाना विद्याएँ सिखायी गयीं। इन कन्याओं ने तीनों भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश-टि0) को जाना, लक्षणशास्त्र (व्याकरण) को जाना उसके लक्ष्य अर्थात् साहित्य को भी जान लिया। दर्शनशास्त्र व न्याय शास्त्र के साथ तर्कशास्त्र को भी सुना। छंद, अलंकार व निघुंट शास्त्र को भी जाना, और धर्म अर्थ व काम के प्रशस्त साधनों को भी जान लिया। विविध प्रकार का गाना व नाचना सीखा, और अनेक प्रकार वीणादि वाद्य को भी। और भी उन्होंने जो जो कुछ सीखा, उस सबको कौन लक्ष्य कर सकता है (कौन कह सकता है)।

विधाता ने एक स्त्री रत्न चतुष्क गढ़कर छोड़ दिया, और धनुष व बाण को अपने हाथ में धारण किये हुए मदन को भी निर्मित करके उसके अंगरक्षकरूप से उसी में जड़ दिया, जो उसकी ओर देखने वाले को निश्चित बींध डालता था ॥12॥

उनका नवीन यौवन उन्मीलित होने लगा, मानों मदनके बाहु मृगया के लिए क्रीड़ा करने लगे। उनका घना चिकुरभारं ऐसा लहराता था, मानो मारने (कामीजनरूपी) पशुओं को फंसाने वाला फंदा ही सजाया हो। उनकी घुँघराली अलकें इस प्रकार लोट-पोट होती थीं, मानो अनंग की अंगुलियों से उत्पन्न होने वाली स्वर-लहरी हो। उनका ललाट अर्द्धचंद्र के समान संकीर्ण था, और मध्यभाग (कटि) ऐसा था, जो मुट्ठि में आ सके, जैसीकि धनुष के मध्य में मूठ होती है। उनका भ्रूयुगल ऐसा बाँका व उज्ज्वल था, मानों रतिनाथ ने चाप खींचा हो। उनके सरल तथा तीक्ष्ण कटाक्ष युक्त नेत्र जनसमूह रूपी वन्य पशुओं को बींधते हुए विस्तीर्ण होते थे। उनकी सुंदर नासिका सारे लोक को लुभाती थी, और अधरों की मुद्रा (रचना) करमुद्रिका के समान (वर्तुलाकार व अत्यन्त छोटी और पतली) शोभायमान थी। उनकी कोमलध्वनि वीणा के समान ऐसी झंकृत होती थी, मानों मकरध्वज धनुष की डोरी की टंकार कर रहा हो। मुख तक फैला हुआ उनका स्वच्छ-सुन्दर कपोल-युगल ऐसा था, मानो दोनों ओर एक-एक चंद्रखंड ही निर्मित कर दिया गया हो। रेखाओं से युक्त उनका कोमल कंठ ऐसा शोभायमान था, जो कंदर्प के (त्रिभुवन) विजयसूचक शंख जैसा जान पड़ता था। उनका बाहुयुगल मुनियों के मन को भी पीड़ा-देता था, और ऐसा लगता था मानो मदन की मालती माला ही लटकी हो। उनके खूब ऊपर उठे हुए स्थूल स्तन ऐसे थे, मानो मदन राजा के स्नान घट ही हों। उनका नाभिमंडल ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेव ने विनोद पूर्वक गुलिया धनुष (गुलेल) बनाया हो, जिसमें उनका नाभिमंडल तो गुलिया (गुटिका रखने का स्थान) था और बलित्रयरूपी धनुष जो उसके ऊपर चढ़ी हुई बिलकुल काली, दीर्घ एवं सुंदर रोमराजिरूपी प्रत्यंचा से बँधा था। उनका कटितल (नितम्ब प्रदेश) लोगों के मनरूपी अश्वसमूह को भ्रमण कराने वाले रतिकांत (कांमदेव) के अश्व क्रीड़ा स्थल के समान (अतिविस्तीर्ण) था। मानों वे रम्भा के गर्भ से उत्पन्न रति के राम-(अर्थात् मन्मथ) के भवन के तोरण स्तम्भ ही थीं। उनके कूर्माकार चरणयुगल ईशत् विकसित् कमलपत्र के समान थे। उनके उस संपूर्ण लावण्य का जो वर्णन कर

सके वह कौन कवि है? यदि सारे देश में कहीं उज्ज्वल व सुंदर वर्ण दिखाई नहीं देता, तो (निश्चय से) उसने वहां उन कन्याओं को अधिष्ठित कर लिया है। ॥13॥

रति के वियोग से संतप्त (अतएव अति श्वेतवर्ण) मदन की कुसुमों से व्याप्त शैय्या के समान उन कन्याओं के अधर विद्रुम और हीरक की शोभा से विलक्षण थे, अर्थात् विद्रुमवर्ण के उनके अधरोष्ठ हीरकके समान धवल दंतपक्ति से दंतुरित (स्फुरायमान) थे। 'पूर्णिमा के दिन भी मैं इनके मुख के समान होऊंगा या नहीं होऊंगा, इस शंका से ही मानों स्थिर (पूर्ण) मंडल की अभिलाषा करने वाला चंद्रमा मास भर चांद्रायणव्रत करता है। उनकी चरणच्छवि की तुल्यता चाहने वाले कमलों के-द्वारा अपने को गले तक जल में डुबो कर सूर्य की किरणों को सहते हुए मानों तप संचय किया जाता है। उनके रूप को देखकर कामबाणों से विद्ध होने से (उस पर क्रुद्ध हुए) महादेव के द्वारा भस्म किया जाता हुआ कामदेव मानों उनके, नाभि के नीचे की गहरी रेखारूपी खाई से युक्त त्रिवलीरूपी प्राकार से घिरे हुए तथा रोमराजि के कारण धूम्रवर्ण के, नाभि दुर्ग में विलीन हो गया है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि एक विधि (ब्रह्मा) सारे लोक सामान्य को गढ़ता है, पर जिसने इनको गढ़ा है, वह तो कोई दूसरा ही प्रजापति है।

(उन कन्याओं के) उस लावण्य और उस यौवन को देखकर घर में कुबेर की धनसंपत्ति का भी उपहास करने वाले सागरदत्त प्रमुख न्याय नीतिवान् वणिकपुत्रों ने अरहदास को कहा-मित्र! कुमारावस्था में परस्पर प्रीतिवंत हम पाँचों ने क्रीड़ा करते हुए ये पैज (प्रतिज्ञा) की थी, यदि एक को भाग्यवान पुत्र हो, व इतर चारों को कन्यायें हो जायें तो कन्याओं के पिताओं के द्वारा वे कन्याएं उस (पुत्र के पिता) को दे दी जानी चाहिए, व उसके द्वारा उन कन्याओं का अपने पुत्र से परिणय करा दिया जाना चाहिए। पुण्यवश तुझे पुत्र हुआ है, जिसकी विख्यातकीर्ति तीनों भुवनों में भ्रमण करती है; और इधर हम लागों को मृणाल के समान कोमल करों वाली, लक्षण संपन्न चार कन्यायें हुई हैं। तो अब पहले कहे हुए का पालन किया जाये, और कुमार का

पाणिग्रहण कर लिया जाये। अरहदास कहा-'मैं स्वयं तो कुछ निश्चय करता नहीं, आज या कल आप लोगों की ही खोज करता । तो लीजिये, अभी स्वयं आप लोगों ने प्रकटरूप से जैसा कहा, तदनुसार परिणय निश्चित कर दीजिये। धनुराशि में शुक्लपक्ष की अक्षय तृतीया के दिन विवाह लग्न स्थापित किया गया। (तदनंतर) वे लोग जग (समस्त पौरजन) की आशाओं को पूर्ण करने वाले अपने-अपने घरों को गये। उन पांचों का ही मान पर्वत बढ़ गया, और तत्क्षण उन सबके घरों में लोगों के आवागमन इत्यादि से संयुक्त विवाहश्री अवतीर्ण हो गयी ॥14॥

पाँचों ही घरों में पांच परमेष्ठियों के (टि0) पाँच प्रकार के धवल व श्रेष्ठ मंगल गाये जाने लगे। पांचों ही घरों में पांच अंगों से युक्त बधाई के तूरों का वाद्य सुनाई देने लगा। पाँचों ही घरों में पंचमराग की धुन आलाप करता हुआ, स्वरभेदों से युक्त मधुर वीणावादन होने लगा। पाँचों ही घरों में धनुष को लिए रतिरस का निधान पंचवाण अर्थात् कामदेव विचरण करने लगा। पाँचों ही घरों में उज्ज्वल वर्ण के रत्नों की रंगावली (रंगोली) दी जाने लगी तथा पाँचों ही घरों में लोगों के मन को आकृष्ट करने वाले सुंदर पल्लवों के तोरण बांधे जाने लगे। इस प्रकार जब वहाँ विवाह सामग्री हो रही थी इतने में विलास करता हुआ वसंत आ पहुँचा। विद्याधर मानिनियों का मानमर्दन करने वाला सुहावना मलयपवन चलने लगा। केरलियों की कुटिल केशरचना को सरल बनाता हुआ, विरहिणी तैलंगियों को निःश्वास उत्पन्न करता हुआ, सह्याद्रि के सूखे बांसों को रुणरुणाता हुआ, कर्णाटियों के तालपत्र निर्मित कर्णावतंस को कणकणाता हुआ, कुंतलियों के कुतलाभार को स्खलित करता (बिखराता) हुआ, मराठिनियों के स्थूल स्तनवृत्त का मर्दन करने वाला, ताप्तीतट की तरुणियों के विकट अर्थात् विस्तीर्ण नितम्बों को चूमने वाला, और रतिशील आन्ध्र युवतियों की कामपीड़ा को उद्दीप्त करने वाला, हवा के झोंको से परिधान के उड़ने से मालविनियों के अतिसुदंर ऊरुभाग को ईषत् प्रकट करने वाला, बौर लगे हुए सहकार वृक्षों को कषायला (रस युक्त) बनाता हुआ, तथा विचकिल्ल के फूलों को पाटल पुष्पों से मिलाता हुआ बंसत

आ गया। फूले हुए पलाश की लाल लाल बोंडियाँ ऐसी खिलने लगीं मानों कातर विरहिणियों के प्राणों को निकालता हुआ काम के हाथ का रुधिर लिप्त, बांका अंकुश ही हो ॥15॥

उस समय उद्यान क्रीड़ा की इच्छा से नागरजन राजमार्ग से चल पड़े। उस नदंनवन में मंदार की मंद मकरंद फैल रही थी; और वह कुंद करवंद, (करौंदा?) मुचकुंद तथा चंदन वृक्षों से सघन था। वहाँ तरल पत्तोंवाले ताल, चंचल लवली और सुंन्दर कदली तथा द्राक्षा, पद्माक्ष एवं रुद्राक्ष के वृक्ष थे। बेल, विचिकिल्ल, चिरिहिल्ल, तथा सुंदर सल्लकी और आम, जंबीर (नींबू), जंबू, तथा उत्तम कंदब थे। कोमल कनैर, करमर, करीर (करील?), राजन (सं0 राजादनी), नाग, नारंगी, व न्यग्रोध के वृक्षों से अंबर नीला (हरित) हो रहा था। कुसुमरज के प्रकर (समूह) से वहाँ का भूमिभाग पिंगलवर्ण हो गया था। शुकों के तीखे नख व चंचुओं से वहाँ के फल खंडित थे। घूमते हुए भ्रमरकुलों से पंकज सरोवर आच्छादित था, और मत्त कलकंठियों के मधुर कंठ से स्वर छूट रहा था। रतिवति की आज्ञा से वृक्ष-वृक्ष में कल्प वृक्ष की शोभा से भास्वर माधवश्री (बंसत शोभा) अवतीर्ण हुई। प्रत्येक वृक्ष रति और काम का उपहास करने वाले (सुंदर) मिथुनों के सम+आवास अर्थात् सहवास से समुद्रभासित हो गया। जंबूस्वामी भी अन्य कुमारों के साथ लीला पूर्वक कामिनियों के बीच कामदेव के समान क्रीड़ा करने लगे। डोले के समान लटककर कंठ से लगी हुई स्तनों व रमणों (के भार) से कदर्थित कोई सुंदरी बल्लभ का मुख चुम्बन करते हुए सुरत क्रीड़ा का अनुहरण करने लगी ॥16॥

कोई कामिनी अपने कांत को इस प्रकार मनाने लगी, और परिहास पूर्वक ऐसे मधुर बचन बोली-हे वल्लभ मैंने जाना नहीं था कि तुम कुरत (श्लेष, कुरुवक वृक्ष) हो जो कि मुझसे आलिंगित होने पर भी प्रसन्न नहीं हुए (विरोधाभास), (विरोध परिहार) अथवा तुम वह (कुरुवतक वृक्ष) भी नहीं हो, क्योंकि तुम तो वदन मदिरा के प्रति भी निरपेक्ष हो (उसे केवल देखते ही हो, आलिंगन चुंबन द्वारा पीते नहीं) अतः तुम केशर (तिलक) वृक्ष (के समान) हो (जो सुंदरी नवयुवती के कटाक्ष मात्र से ही प्रफुल्लित हो उठता

है, उसके आलिंगन चुंबन की अपेक्षा नहीं रखता)। अब मैंने सत्यतः तुम्हें जान लिया कि तुम तो ऐसे अशोकवृक्ष (के समान) हो जो मूर्ख पादप्रहार को प्राप्त करके शांत (प्रसन्न प्रफुल्लित) होता है। कोई मुग्धा अपने (प्रणय) कार्य के लोभी धूर्त्त से प्रणयक्रुद्ध होकर मुँह फेर लेती है, (तब धूर्त कहता है) तुम्हारे मुख से शतपत्र (कमल) की भ्रांति करके झपटती हुई भ्रमर पंक्ति को तो देखो। ऐसा कहने से भग्न मान होकर वह तुरंत दयिता (प्रेमी) के कंठ से लग जाती है। कोई यह कहता है-मुग्धे! तेरी आंखें ऐसी सुंदर हैं कि नीलोत्पलकी शंका करके भ्रमर झपट रहे हैं, इस बहाने से नेत्रों को झांपकर वह नववधू का मुख चूम लेता है। कोई बात कहता हुआ कि हे बाला, अपने तिलक से तुझे तिलक लगाऊँगा, अपना मस्तक प्रिया के मस्तक पर रखकर, उसे छलकर कपोलों पर नखचिन्ह बनाता हुआ कांता के अधरों को दांतों से काट लेता है। कोई कामिनी आपानक (मधुशाला) में रखे हुए मधुघट में प्रतिबिम्बित अपने रूप को देखकर कहती है, प्रिय देखो! देखो! भार्या! क्या कहती हो? (ऐसा पूछने पर) वह बतलाती है-मद्य में तर्पण देवता (?) उतर आयी है। कोई प्रिय से काटे हुए अधरयुक्त मुख को धारण कर रही है, जिसका रोष क्षय हो रहा है, और मदन बढ़ रहा है। (हाथों में से) चूती हुई अथवा पी जाती हुई मदिरा से युक्त हाथ ऐसे शोभयमान हो रहे हैं। मानो (मदिरा) पान करने के स्फटिकमय चशक (प्याले) ही हों। किसी ने कहा-. हे दीर्घनयना तूने (निष्कलंक) मुख पर कस्तूरी का तिलक लगाकर उसे चंद्रमा के समान (सकलंक क्यों) कर दिया? किसी स्त्री के प्रिय ने कहा- लो यह सारा (प्रपंच) महिलाकृत कूट मंत्र है उस उद्यान में (कामिनियों के) काम को बढ़ाते हुए जंबूकुमार किसी कामिनी को कहने लगे-हंसों ने तुझ से गमन का अभ्यास किया, कलकंठी ने कोमल आलाप करना जाना, कमलों ने चरणों से नाचना सीखा, तरुपल्लवों ने तुम्हारी हथेलियों का विलास सीखा तथा बेलों ने तुम्हारी भौंहों से बांकापन सीखा। इस प्रकार ये सब तुम्हारे शिष्य भाव को प्राप्त हुए हैं।

उस वन को दिखलाते हुए अपने प्रियका मनोरंजन करती हुई कोई कामिनी कुमार के मधुर बोल को सुन लेती है, और अनेक प्रकार की वक्रोक्तियों द्वारा विविध (श्रृंगारादि) भावों को प्रगट करती हुई इस प्रकार छलना करती है ॥17॥

स्वामी ने कहा- मुग्धे, नाचते हुए मयूरों को देखो! सुंदरी ने (श्लेषार्थ मोरा-मेरा ग्रहण करके वक्रोक्ति की-तोरा अर्थात् तेरे नाचने में कोई दोष नहीं है। स्वामी ने कहा-सरोवर में कारंड पक्षियों की पंक्ति दिखाई दे रही है, सुंदरी ने वक्रोक्ति की-अरे क्या (रंडा-विधवा) विधवाओं की पंक्ति है, जो वह निश्चय से तुम्हारी शत्रु गृहिणियों की है। स्वामी ने कहा-कोकिला का कोमल स्वर प्रवृत्त हो रहा है, सुंदरी ने छलोक्ति की- अरे यह पूछते हो कि वह कोकिला के स्वर के समान कोमल कौन सा शर है जो मार डालता है? वही जिसको मदन धुनष की टंकारपूर्वक चलाकर मारता है। स्वामी ने कहा-अरे इस प्रियालवृक्षों के वन (उद्यान) को जानो (देखो)! सुंदरी ने वक्रोक्ति की-अरे प्रियाओं का आलाप दुर्भगजनों के लिए दुर्लभ है। स्वामी ने कहा-चतुर हरिणी हरिण के पास चली गयी; सुंदरी ने छलोक्ति की- दक्ष सांरगी (वाद्य) सांरग (वाद्य) के स्वर में मिल गयी तो फिर नाचो और पटह बजाओ तो जानें। स्वामी ने कहा-प्रिये इस विरेणु अर्थात् रजरहित निर्मल इंद्रगोप (खद्योत) को देखो, तो सुंदरी ने व्यंग्योक्तिकी-यदि इंद्रगोपदविरेणु, अर्थात यदि स्पष्टत: इंद्र की गाय के चरणों की धूल देख रहे हो तो फिर वह कामधेनु है,(इससे) दूध मांगो। स्वामी ने कहा-जल में कंक (बक) पक्षी हंस के समान मंदगति से चल रहा है, सुंदरी ने व्यंग्य किया-तू ही बड़ा जल (क्रीड़ा) में मंद बक है। स्वामी ने कहा- सुंदरी यह शुक ऐसा विलाप कर रहा है, इसे क्या पीड़ा है? सुंदरी ने वक्रोक्ति की-हे नाथ यदि सुत (पुत्र) रो रहा है, तो क्या बात है, उसे धैर्य दीजिये,यह कोई पराया कार्य नहीं है। स्वामी ने कहा-माघ मास में(कमल) सरोवर शिशिर से दग्ध हो गया, ऐसा जानों, तो सुंदरी ने व्यंग्य किया-यदि कोई माहेश्वर अर्थात् महेश्वर का भक्त तुषारपात से दग्ध हो गया (अर्थात् मर गया), तो वह त्रिदंडी तो निश्चय मरेगा, जिसका नित्य

(त्रिसन्ध्या)स्नान होता है। स्वामी ने कहा-तापसों के लिए जल ही शुद्धि का कारण होता है, तो सुंदरी ने फिर व्यंग्य किया-कांता के वशवर्ती बेचारे रागीजनों की जलस्नान मात्र से क्या शुद्धि? स्वामी ने कहा-तुम्हारी पतली देह कैसी बांकी है? तो सुंदरी ने छलोक्ति से कहा-अरे नाथ वह मैं नहीं हूँ, बांकी तो वह चंद्रकला है। स्वामी ने कहा-हे मुग्धे अताम्र अधरों को धारण करने से केवल गौरवर्ण नायिका ही सुकांता, अर्थात् सुष्ठुरमणीय नहीं होती, बल्कि उससे साँवली सुंदरी अधिक सुरमणीय होती है, तो सुदंरी ने व्यंग्य किया-अरे! तंबा अर्थात् गो, के साथ हर (महोदव) ने रमण नहीं किया, तंबा का रमण किया वृषभ अर्थात महादेवी के नांदी ने, और महादेव ने रमण किया गौरी (पार्वती) से, इसमें कोई भ्रांति नहीं। उस श्रृंगार रस का यदि (स्वयं) मदन ही वर्णन कर सके तो कर सके, अथवा वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकता; फिर हम जैसा मंदबुद्धि कवि तो दूर ही रहे, क्योंकि वह श्रृंगार (काम भोगादि) की विधियों को क्या जाने? ॥18॥

इस तरह वहाँ उस वन में कामदेव को मानने वाले अर्थात् कामशास्त्र के अनुसार संभोग क्रीड़ा करने वाले मिथुनों को सुरत खेद (थकान) उत्पन्न हुआ और प्रस्वेद से सिक्त होने पर उसे वस्त्र से पोछा। बंसतोत्सव का दिन व्यतीत होने पर जबकि पर्वत प्रखर किरणोंवाले सूर्य से तप्त हो गया था, सभी जलक्रीड़ा के लिए सरोवर पर गये। वस्त्रों सहित भूषणों को प्रियाओं के द्वारा तट पर छोड़े जाते हुए देखकर उनके प्रियजनों ने सोचा-अरे! क्षणभर तब तक (प्रिया) तट पर खड़ी रहे, जब तक कि उसके विस्तीर्ण रमणों को अच्छी तरह देखा हुआ कर लूँ। तरुणियाँ जल में प्रवेश करने लगीं, तो जलतरंगें उनके नितंबो को पार करके, स्तन शिखरों पर आकर (उन्हें पार न कर पाने से) स्खलित हुई। कोई जल में अपने कांत (की छवि) को झलकते हुए देखकर, नेत्रो पर हाथ रखकर अभिषेक करने लगी। कोई चंचल रमणों वाली प्रिया, प्रिय के सामने इस प्रकार तैरने लगी, मानो विपरीत सुरत का स्मरण दिला रही हो। एक भ्रमर न तो किसी तैरती हुई सुंदरी के मुख को ही पहचान सका, और न कमल को (अर्थात् तैरती हुई सुंदरी के मुख व कमलों में कोई विवेक नहीं

कर सका)। कोई शिथिलवसना गंभीर जल में तलस्पर्शी गति से शरीर में हलकापन आने से, अपने कंपनशील नितम्बप्रदेश को स्थिर करती हुई, अपने उरस्थल में छिपे हुए (स्तनों रूपी) धन से तरंगों को प्रेरित करती हुई, केवल एक हाथ से तैरती हुई, दूसरे से गिरते हुए कटिवस्त्र को संभाल रही थी। किसी का भूषा (वस्त्राभूषण विलेपनादि) रहित शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानो तारुण्यरूपी वृक्ष का नवीन अंकुर ही उदित हुआ हो। उद्यान में रतिक्रीड़ा के आयास से थकी हुई कोई कामिनी प्रिय के कंधे से लगकर जल में रमण कर रही थी तथा नखक्षत से अरुण हुआ उसका वर्तुल-स्तन ऐसा भासित हो रहा था मानो मदन हस्ति के कुंभस्थल पर अंकुश मारा गया हो। कोई ईषत्खिसके हुए वस्त्र से (दीखने वाले) गुह्यांग को ऐसा धारण कर रही थी, मानो मदन के आवास का तबंग (छज्जा?) शोभायमान हो रहा हो। किसी की त्रिवली पर रोमावलि ऐसी बसती थी, मानो तरुणों को डँसने वाली कालीनागिनी ही हो। कोई प्रिय, जल की कल्लोलों से जिसके वस्त्र इधर-उधर कर दिये गये थे, ऐसी अपनी धन्या के रमणभाग को दृष्टि से माप रहा था। किसी विट के द्वारा दूर से ही डुबकी लगाकर क्रीड़ा पूर्वक पैर पकड़कर डुबायी जाती हुई दासी पुकार मचाने लगी, तब पास ही खड़ी हुई कुट्टनी जोर से चिल्ला पड़ी (जिससे उसकी पुकार किसी को सुनाई न दे)। कर और चरणों के प्रहारों, स्तनों के तटों, तथा नखों की चपेटी से जर्जरित वह सरोवर का जल युवतियों के द्वारा ऐसा माना गया, मानो उसने किसी मनुष्य का अनुसरण किया हो ॥19॥

मिथुन कमल सरोवर से (जल) क्रीड़ा करके निकल पड़े। पुनः-पुनः यथेच्छ क्रीड़ा की गयी, फिर वस्त्र निचोड़े गये, परिधान पहने गये और विलेपन लगाये गये। फिर पालकियाँ सजाई गयीं और चलने के बाजे बजाये गये। वाहनों पर पलान लगाये गये और सारा लशकर राजा के पास जुट गया। फिर शीघ्र ही पट्टबद्ध मंडलाधीश नंदनवन से पुरी की ओर प्रवृत्त हुआ। उसी समय महाराज श्रेणिक का, शत्रु गजों को उठाकर फेंक देने वाला 'विषमसंग्रामसूर' नामक पट्ट हाथी अपने कुंभस्थल से चंद्र और सूर्य को

उचाटता हुआ, अपने दांतों के अग्रभाग (की हूल) से दिशा गजों को आहत करता हुआ, मेंठ को मार कर अपने कानों के झपाटे से षट्पदों (भ्रमरों) को झड़पता हुआ नगरी के द्वार पर प्रगट हुआ। सूँड ऊँचा करके जल की फुहारें छोड़ते हुए उसने अपने पद्भार से (पृथ्वी को अपने ऊपर धारण करने वाले) कूर्म की पीठ को कड़कड़ा दिया। दुर्द्धर्ष शत्रुओं के बल को हरण करने वाला, नये मेघ के समान अपने गर्जनरवसे कंदराओं को भरता हुआ व लोगों को मारने में प्रवृत्त वह हाथी वैवस्वत (यम) के समान मृत्युलीला करता हुआ वहाँ आ गया ॥20॥

कहीं उस हाथी ने विशाल साल और सल्लकी व तमाल वृक्षों की पंक्तियाँ, उत्तुंग ताल, परस्पर गूँथ कर जाल के समान बनी हुई नागलता, मल्लि, निंब, जंबूवृक्षों का कुंज, ऊंबर, आम्र व सुंदर कदंब, पके हुए पिंगलवर्ण मातुलिंग, दाड़िम की पंक्तियाँ, हरे चंदनवृक्ष, विशाल कुंद, मंदमार, सिंदुवार, देवदारू, तथा सुंदर चिरौंजी के वृक्ष चूर-चूर कर डाले। कहीं बड़ी दीर्घिकाओं में घुसकर, ईषत् उछलते हुए मच्छों की पूछों से छिटकते हुए जल से क्रीड़ा करते हुए, संचरणशील चंचरीकों से चुंबित व अपने ही शुंडादंड से तोड़े हुए, लता जाल से संयुक्त, व भंजन करके भूमिभाग पर डाले हुए बांके पंकजों से छोटी नदी (अथवा नाले) के कर्दमयुक्त तल को पूर दिया। (ऐसी अवस्था में) कहीं मार्ग में पड़ने वाले व जिनके सवार भाग गये थे और जो चर्मयष्टि अर्थात् चाबुक के आघात से चक्कर खा रहे थे, ऐसे घोड़ों के समूहों के निकलने से उनके तीक्ष्ण खुरों से खुदे हुए पृथ्वी मंडल से उठने वाले धूल से आँखें अवरुद्ध हो जाने के कारण थर-थर काँपती हुई कामिनी के हाथ को हाथ से पकड़ कर किसी गर्वीले कामुकने झूठ बोलने वाली कुट्टनी को भी झुठला दिया। कहीं बड़े-बड़े हथियारों का संचरण देख धूर्त्त नष्ट हुआ, और तीक्ष्ण खुरों से पृथ्वी खुदी। कहीं भाले की नोक के आघात से पीड़ित देह हथिनी की चीत्कार से त्रस्त होकर चंचलता पूर्वक जाती हुई व (धूर्त्त के) प्रत्युत्तर को न पा सकने वाली प्रगल्भ दासी जिसके वस्त्र (भाग-दौड़ में) फट गये थे, धक्का दिये जाने से (गिरकर) राजमार्ग से उठने में भी समर्थ न हो सकी।

और भी-जब झट-पट यान से यान भिड़ गया, व हाथी से दूसरा मदमत्त हाथी, मार्ग में तरंग से ऊँचा (बलिष्ठ) तुरंग, वेश्याओं में आसक्त जार से जार, सेवक से स्वामी, रथ से रथ और भयपूर्वक क्रंदन करती हुई प्रिया अपने प्रियतम से भिड़ गयी। वितान से वितान, छत्र से छत्र, बलवान् से दुर्बल, व पदाति से पदाति भिड़ गये; तथा भागते हुओं के दंड से दंड, और ध्वज से ध्वजाग्र खंड-खंड कर दिये गये। राजा समेत पौरजन सारे साधनों व सैन्य सहित त्रस्त होकर दिशाओं में भाग गये। परंतु एक अकेला जंबूस्वामी हाँका मारकर (अर्थात् उस दुष्ट हाथी को आह्वान करके) अक्षुब्ध (शांत) भाव से वहाँ खड़ा रहा ॥21॥

तब वृक्षों को तोड़ने वाले, लोगों को दुःख देने वाले, जल को कीचड़कर देने वाले, वीरों को दूर हटा देने वाले, संग्राम में भयंकर मदजल से युक्त होने से भ्रमरों से गुंजायमान, तथा भुजंग (शेषनाग?) को भी चूर-चूर कर देने वाले उस हाथी ने बड़ा भारी निनाद छोड़कर, जिसका वार (प्रहार) अत्यन्त दुर्निवार था, ऐसे जंबूस्वामी पर अपने बलिष्ठ सूंड से कषाय सहित अर्थात् क्रोधपूर्वक, आघात किया। यह देखकर उस जिनमती के पुत्र ने भी, जो विशुद्ध विक्रमी एवं रणरंग का लोभी था, उस हाथी से रुष्ट होकर, अधरोष्ठ काटकर, आरक्त नेत्र करके, भौंहें टेढ़ी करके मस्तक पर सलवटें डालकर, प्रलयकाल के समान् बनकर उसे तृण के समान मानते हुए, नियंत्रण करने के प्रयास में हाथों से ही चारों ओर से लपेटकर उसके सूंड को पकड़ लिया, व जैसे ही खींचा, तो हाथी पीछे हटने लगा। परंतु उसका सारा शरीर निष्क्रिय हो चुका था, और वह तिलभर भी चल नहीं सका। उसका काँपता हुआ कंधा कुंचित हो गया। व शिराबंध विघटित हो गया (अर्थात् शरीर की नस नस-टूटने लगी)। मुख से उसने बड़ा करुण निनाद किया, उसके नेत्र डरे-डरे हो गये व गंडस्थल मदयुक्त हो गया। बढ़ते हुए भय से वह अत्यन्त विकल हो गया। वह अपने शरीर को गिराता हुआ सा चीत्कार छोड़ने लगा, गलगलाने लगा, रसमसाने लगा, पीछे को चलने लगा, कसमसाने लगा,

निःश्वास छोड़ने व गड़गड़ाने लगा, और पृथ्वीतल पर गिर पड़ा। तब जंबूस्वामी ने भी शांत होकर उसे छोड़ दिया। फिर वह हाथी वशीवर्ती होकर खड़ा हो गया। उधर राजा सहित जो जनसमूह भाग गया था, वह वापिस एकत्र हो गया। (तब) मगधराज जंबूस्वामी की इस प्रकार स्तुति करने लगे–तूने जो हाथी को वश में कर लिया, वह अन्य किसको शोभा देता है अर्थात् अन्य कौन कर सकता है? मां से उत्पन्न तू ही एक परम धन्य है, जिसका वीर रसात्मक यश (अर्थात् वीरता का यश) (लोक में) सर्वथा असदृश (अद्वितीय) है ॥22॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर–कवि द्वारा विरचित चरित्र "जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार वीर–रसात्मक महाकाव्य में जंबूस्वामी–उत्पत्ति तथा कुमार की (हस्ति) विजय नामक यह चतुर्थ संधि समाप्त।

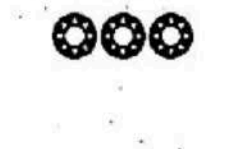

संधि-5

स्वयंभूदेव के होने पर एक ही कवि था, पुष्पदंत के होने पर दो हो गये और देवदत्त के होने पर तीन। यहाँ बहुत दिनों से यह काव्य घर घर में से दूर चला गया था, अब कविवल्लभ वीर के होने पर पुनः लौट आया।

राजा ने अपनी नूतन (तरुण) हस्तिनी की चाल को रोककर, रत्नों से अर्चा करके बालक जंबूस्वामी को अर्द्धासन पर बैठाया, और फिर (नागरिकों के) उत्साह रूपी लक्ष्मी से आकुल अर्थात् उत्साह से परिपूर्ण नगर में तदनंतर अपने राजकुल (राजप्रासाद) में प्रवेश कराया। तब राजा ने सभा लगायी और वे दोनों सिंहासन पर बैठे। एक पार्श्व में कामिनियों की पंक्ति खड़ी हुई, फिर रत्नों की दीप्ति से प्रज्वलित मणिमुकुटों को सिर पर धारण करने वाले मांडलीकों की मंडली बैठी और फिर बड़े बड़े सामंत व आमात्य बैठे, तथा फिर अन्न श्रेणियों (व्यापारी, स्वर्णकार, चित्रकार आदि लोगों के संघ) के मुखिया बैठे, फिर भटों के समूह और फिर मनोविनोद करने वाले लोग तथा अंत में नाना प्रकार के चतुर लोग बैठे।

राजा का वह सभामंडप कैसा था? वहाँ कसोटी पर कसे हुए खरे सोने से गढ़े हुए, माणिक्यों से जड़े हुए एवं चार दंडिकाओं से युक्त रत्नमयी वितान के नीचे रखा हुआ सिंहासन शोभायमान था। और वह सिंहासन उसके ऊपर बैठे हुए महाराजाधिराज के पैर रखने के स्फटिकमय फलक (पादपीठ) में चंचल चमरों को धारण करने वाली विलासिनियों की मुख कांति से विजित होकर मानों दासभाव को प्राप्त हुए नक्षत्रों के स्वामी (चंद्रमा) के समान नरेंद्र के चरणकमलों के प्रतिबिंब से युक्त था। और वह सभामंडप नरेंद्र के चरणकमलों को प्रणाम करने के लिए एकत्र हुए भूपालों के मुकुटमणियों से संक्रांत होते हुए नखसमूह के प्रतिबिंबों के छल से, उसके तीव्रप्रताप को सहन न करने वाले राजाओं के उत्तमांग (मस्तक) पर सैकड़ों मौक्तिकों के समान प्रगट होकर मानो राजा के शासन को भलीभाँति समझा रहा था। और वह सभामंडप राजाज्ञा की प्रतीक्षा करने वाले, सकलदेश भाषाओं से युक्त

शास्त्रार्थ के समान विचित्र कणकणध्वनि करते हुए, कंकण को धारण किये हुए, दाहिने हाथ में स्वर्ण दंड को लिये हुए द्वार पर अधिष्ठित महा-प्रतिहार से युक्त था। और वह सभामंडप उस महाप्रतिहार के द्वारा नाम-प्रस्ताव (अभ्यागत परिचय) के अनंतर राजा के सामने एकत्र हुए सभासदों को दूर करने के लिए आकुल उसके प्रशस्त हाथों में स्थित घूमते हुए प्रचंड शब्द से आशंकित, चंचलतर घूमती हुई दृष्टियों वाले, व अपने अपने स्थानों पर बैठते हुए सामंत वृंद से युक्त था। और वह सभामंडप सामंत चक्र, सेनापति, पदाति प्रमुख साधन संपत्ति से वशीकृत मंडलपतियों द्वारा प्रेषित दूर मंडलों से आने वाले राजकीय नाइयों द्वारा उपस्थित किये जाते हुए भेंटों से गिरते हुए मुक्ताफलों व मणिरत्नों से व्याप्त भूमिभाग वाला हो रहा था। और वह सभामंडप उस भूमिभाग के संमार्जन से कुंकुम, कर्पूर व कस्तूरी की आमोद से व कुसुमों की विकीर्ण मकरंद से आकृष्ट हुए गुम गुम गुंजार करते हुए मत्त भौंरों के झंकार शब्द का अनुकरण करने वाले वीणाविलास से युक्त था। और वह सभामंडप वीणाविलास सहित गाये जाते हुए गीतों, बजते हुए बाजों के समुदाय से रचित प्रेक्षणक (दृश्य नाटक व नृत्य आदि) में नाचती हुई विलासिनी के द्वारा दिखाये जाते हुए महाकवि-निबद्ध (रचित) नाटक के कोलाहल से पूर्ण था। और वह सभा मंडप गाने वाली कामिनियों के झुनझुनाते हुए चरणनूपुरों से, पाठ करते हुए मंगलपाठकों से, मधुराक्षरों से गाये जाते हुए गायनों से एवं अपने-अपने अवसर पर प्रवेश करते समय जय-जयकार करने में मुखर योद्धाओं के स्वर से सुख से पूर्ण हो गये हैं (भर गये हैं) कान जिनके, ऐसे जन समूह से युक्त था। इस प्रकार जब वह राजा सुवर्ण के समान वर्णवाले एवं सुहज्जन रूपी पंकजों के लिए सूर्य के समान जंबूकुमार के साथ विविध प्रकार के विनोद व प्रदर्शन किये जाते हुए गंध,वर्ण व शब्दादि विषयों के साथ सभामंडप में बैठा था- ॥1॥

तभी राजा के पास के लोगों-द्वारा अतिविस्मित मन से, एक दूसरे को आकाश से उतरता हुआ एक दिव्य विमान दिखाया गया जो चारों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था, कण कण करती हुई किंकणियों से मुखर था; एवं

फहराती हुई ध्वजमालाओं से सुंदर, मारुत से भी अधिक वेगवाला तथा लक्षणों से युक्त था। ऐसा वह विमान (शीघ्र ही) राजसभा में प्राप्त हुआ। उसमें से कांतिमान आभरणों से सुशोभित एक विद्याधर निकला। जय जयकार करके, नृपति को शिर नवाकर स्थिर होकर वह बोलने लगा–यहीं (इसी भरतक्षेत्र में) खेचरों से अलंकृत सहसश्रृंग नाम का एक पर्वत है। मैं गगनगति नामका विद्याधर वहाँ प्रीतिपूर्वक रहता हूँ। आज के दिन जो मेरे लक्ष्य में आया, तथा आलोकिनी विद्या से मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ, उसका, यद्यपि मैं बहुत उतावला हूँ, और बीच यात्रा में ही खड़ा हूँ, (तथापि) कारण सहित कहता हूँ। दक्षिणापथ में मलयाचल में नेत्रों के लिए आनंदप्रद केरलपुरी नामकी नगरी है। वहाँ मृगांक नामका राजा न्यायपूर्वक रहता है। उसने मेरी मालतीलता नामक बहन से परिणय किया। उसको विलासमती नामकी पुत्री हुई, जिसके श्रृंगार का कारीगर स्वयं अनंग ही है। उसका सहचारी हंस समूह (उसका अनुकरण करने के कारण) गमन क्रिया में कुशल हो गया है, और परिवार–जन अर्थात् सेवकों के लिए वह वैभव का कारण है; तथा जिसकी शारीरिक कांति स्वयं ऐसी है कि चंदनविलेपनादि प्रसाधनों का प्रयोग केवल उन प्रसाधनों का आदर करने के लिए ही किया जाता है। (उसके शारीरिक सौंदर्य की वृद्धि के लिए नहीं)। उसके भाल पर खुली हुई अलकावली ऐसी लगती है, मानो नीलकमल रचित अंलकार वहाँ क्रीड़ा करने आया हो, और जो अपने रक्तिम अधरों के गहरे रंग के प्रतिविंब को न समझ सकने के कारण अपने स्वच्छ दाँतों को बार–बार छीलती है। उसके नेत्र कानों के सिरे तक पहुँचे हुए है, तथा धवल पुष्पमाला (टि0 मुकुट) उसके शिर पर भार मात्र है। बोलते समय उसकी कोमल वाणी वीणावादन को भी उत्कृष्टता से मात करने वाली है। उसका मुख ऐसा निरुपम व मनोहारी है कि चंद्रमा उसके समक्ष श्मशान पर पड़ी हुई उल्टी खोपडी अथवा उंल्टे ठीकरे के समान प्रतीत होता है। तो, हे प्रजापालक धरा के समान धीर नरेश्वर! महर्षि के ज्ञानोपदेश व आदेशानुसार मृगांक के द्वारा वह कन्या रत्न आपको परिणय के लिए दिया जाना है। ॥2॥

हंसद्वीप में अतुल्य साहसवाला व संग्राम में अपराजेय, रत्नशेखर नामक खेचर राज्य करता है वह अपने हाथी, घोड़े, रथ और सुभटसमूह के अप्रमाण बल का अत्यंत अभिमानी है। उसने साम, भेद व दाम से उस कुमारी को मांगा, और तत्पश्चात् दंडक्रिया (युद्ध) प्रारंभ कर दी, जिससे मृत्यु ही प्रवृत्त होती है। जब मांगने पर भी उसे कन्या नहीं दी गयी तो उसने केरलपुरी को घेर लिया। चारों पार्श्वों में रौद्र सेना इस प्रकार फैल गयी मानो समुद्र मर्यादा मुक्त हो गया हो। मृगांक के जिनमंदिरों व श्रमणों के संघट्टन अर्थात् बाहुल्य से युक्त नगर लूट लिये गये, समस्त प्रदेश बरबाद कर दिये गये, एवं बहुत धनवान लोगों को निर्वासित कर दिया गया। सुख के धाम गाँव भी लूट लिये गये, रमणीक आरामों का विनाश कर दिया गया, पके हुए धान्य को भर कर ले जाया गया, एवं हरें भरे खेतों को चरा दिया। अधिकांश बाड़ों (सीमीबंधो) को खोद डाला गया, तथा विस्तीर्ण घोंसलों में रहने वाले पक्षियो को भी भयभीत कर दिया गया। वृक्षस्थित तटोंवाले जलाशयों को फोड़ डाला गया, एवं अनेक भटसमूहों से युक्त दुर्गों को ध्वसं कर दिया गया। अतः कल के दिन रथ, हाथी, व अन्य वाहन आदि परिमित साधन वाला मृगांक राजा अपनी निर्मल क्षत्रियकुल परंपरा व पौरुष का लोकनिंदा से रक्षण करने के लिए रण में जूझेगा और क्षय को प्राप्त होगा ॥3॥

'यद्यपि शत्रुबल प्रलय करने वाले यमराज के समान है, यद्यपि वह अप्रमाण साधन वाला है, और यद्यपि सबको संग्राम में मर जाना है, फिर भी धीरता को छोडकर लोकनिंद्य कार्य कैसे किया जाये? सुभटत्व और अग्नि अपने आप में थोड़े होते हुए भी बहुत हैं। शत्रुसंकट में भी जिसका मानुष्य (पौरुष) स्थिर रहे, मैं उसकी बलि जाती हूँ', (आलोकिनी) विद्या के इन वचनों से बिंधकर मैं झटपट वहाँ से चल पड़ा। गगनांगन में जाते हुए घने लोगों से युक्त तुम्हारी सभा को देखकर मेरे मन में इस वृत्तांत का स्मरण आ गया और प्रासंगिक बातों को संक्षेप में मैंने देव को (आपको) निवेदन कर दिया। विस्तार से कहने का समय नहीं है। मैं जाता हूँ, और शत्रुरूपी पर्वत के विनाश के लिए वज्र बनूंगा। ऐसा कहकर जब उसने विमान को ऊपर उठाया तो

जंबूकुमार ने उसे (यह कहते हुए) वापिस लौटाया कि मित्र जरा ठहरो जब तक राजा अपने सामंतों के साथ करणीय साहाय्य का विचार कर लें। इस पर हँसता हुआ खेचर बोला–चाँद की किरणों को कौन छू सकता है? तुम्हारी इस बात से यह लोकाख्यान (लोकोक्ति) ही प्रकट होता है– सौ योजन पर वैद्य और शिर पर सांप (सीसे सप्पो, बिंझे वेज्जो)। वह वहाँ स्थित है, जहाँ उस शत्रु का गढ़ है और यहाँ से डेढसौ योजन दूर हैं । तुम लोग भूगोचरी हो, तुमसे क्या कहा जाये? आज ही तुम लोग कहाँ तक जा सकते हो? तब कुमार फिर बोला–यह सब कुछ मत कहो तुम मुझ अकेले ही व्यक्ति को वहां ले चलों, जिससे यह युद्ध समाप्त किया जा सके, सहायक सैन्य भेजा हुआ समझा जा सके, तू उस दुष्ट को मारकर मृगांक राजा सहित निश्चल रूप से राजलक्ष्मी का भोग कर सके, और राजा श्रेणिक विलासशील, सुलक्षणा व हंसगामिनी विलासमती का परिणय कर ले। यह सुनकर विद्याधर मन में काँप गया–जो शत्रु यमराज के समान है, वह मेरे द्वारा अकेले ले जाये गये तुझ बालक के द्वारा कैसे साधा जायेगा ॥4॥

सूर्य की गति को कौन अवरुद्ध कर सकता है? यमराज के भैंसे के सींगों को कौन उखाड़ सकता है? गरुड़ के मुख कुहर में कौन प्रवेश कर सकता है? क्रूर ग्रह का कौन निग्रह कर सकता है? और जलते हुए अग्नि में कौन प्रवेश कर सकता है? शेष–महाफणि (शेष नाग) के फण पर स्थित मणि को बलात् अपहरण कौन कर सकता है और कल्पांत अर्थात् प्रलयकाल के समय ऊपर उठती हुई भंयकर लहरों से युक्त जल वाले जलनिधि को भुजाओं से कौन पार कर सकता है? इस पर हँसते हुए राजा ने (अपनी प्रभा से) सभा को भास्वर करने वाले उस खेचर से कहा–यह सब बोलने से क्या? यह अकेला ही बालक समर्थ यम के लिए भी यम होने में समर्थ है। सूर्य के लिए भी (सूर्य के तेज को अपने तेज से पराभूत करने वाला) सूर्य है, और आकाश में क्रूर राहू के लिए भी क्रूर है! यह स्वर्गस्थ शक्र का भी शक्र, और पक्षिराज (गरुड़) के समूह के लिए भी (सुदर्शन) चक्र के समान है यह शेष के शिर पर हाथ से लाइन करने वाला है, और उसके फणामंडल से मणि से

छुड़ा लेने वाला है। इसके प्रताप से दग्ध होकर अग्नि भी शीतल होकर भस्मराशि मात्र रह जाता है, और इस बालक के खड्ग ग्रहण करने पर शत्रु अपना समय पूरा होने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त होता है । राजा की इस वाणी को सुनकर खेचर कुमार को दिव्ययान में चढ़ाने लगा, तो बालक राजा के पैरों में पड़कर, राजा द्वारा आशीर्वाद देने के साथ ही विमान में चढ़ गया। क्षणार्द्ध में ही सभा के लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक विमान को वेग से व्योमभाग (नभोमार्ग) में भागते हुए देखा। उसी समय विशाल भुजाओं वाले उस राजा ने उतावले चित्त से उस सभा को विसर्जित कर दिया और दक्षिण देश में केरल नगरी प्रदेश की ओर प्रयाण करनेकी तैयारी की ॥5॥

(6)

तब नरपति वीर भाव से सेना, सामंत सेनापतियों, निज सेनापतियों, राष्ट्रपालों के दल, घने भटसमूह, तथा आदेश किये हुए प्रतीहारों से कार्यरत हो गया। रथ जोते जाने लगे, गजों को हौदा लगाकर सजाया जाने लगा, एवं अश्व समूह पर पलान लगाया जाने लगा। ऊँटों, बैलों व कहारों द्वारा ले जाने योग्य वस्तुएँ ले जायी जाने लगीं। तब महाराजा के द्वार पर ललित स्वरवाला, समस्त दरि विवर प्रदेशों को भरने वाला तूर बजाया गया। पटु पटह बजाये गये, व दडिडंबर उससे प्रतिध्वनित हो उठा। करड की तड़ तड़ से आकाश विद्युत् पतन के समान हिलने लगा। श्रेष्ठ मर्दल धुम्धुमुक-धुम्धुमुक करने लगा, और विशाल कंसाल सुललित स्वर से सलसलाने लगा। डक्का डमडक्क व डमरू डमडका स्वर करने लगा। और घंटों व जयघंटों की टंकार से भट उत्तेजित हो उठे। ढक्का झं झं व हुडुक्का नामक बाजों का समूह नाद करने लगा, और आघात करने से रुंज नामक वाद्य गुंजन करने लगा। थगगदुग, थगगदुग आदि थग दुग ध्वनियों का साज सजाया गया और किरिरि-किरि तट्टकिरि करते हुए किरिरि नामक वाद्य बजाया गया। तक्खा नामक वाद्य तखिखि-तक्खि इत्यादि ध्वनियाँ करने लगे और खुद नामक वाद्य तदिदि खुदि खुंद खुंद आदि उच्च स्वर करते हुए बजे। थरिरि कट तट्ट कट करते हुए थरिरि नाचने लगा, और तटखुंद नामक वाद्य किरिरि-किरिरि करते हुए

ताड़न करके बजाया गया। हल के हाथों से सुप्रशस्त एंव मनोहारी मंगलकारक नंदिघोष का विस्तार किया गया; इस प्रकार तूरों के शब्द से बड़ा भारी कलकल करते हुए चतुरंग सैन्य राजाधिराज के साथ चल पड़ा। उठे हुए चंचल धूलिरूपी जलसे आकाश का उल्लंघन करता हुआ उस नरपति का सैन्य ऐसा चल पड़ा मानों नृपके मन में रतनों व रमा (लक्ष्मी) से युक्त तथा हस्तिरूपी मगरों से आकुल समुद्र ही उछल पड़ा हो ॥6 ॥

मदसहित गजसमूह के कुंभस्थलों से पवन से आहत होकर उड़ते हुए सिंदूर के पूर से सूर्य मध्याह्न काल में ही ऐसा लाल-लाल किरणों वाला दिखने लगा, जैसा कि संध्यांत में अस्तगत होता हुआ चक्रवाक् मिथुनों को विरह उत्पन्न करता है, तथा घोड़ों के खुरों से खोदे हुए आकाश को उड़ने वाले धूलिकणों से ऐसा लगने लगा मानों भटों के शस्त्रप्रहार से अपने किरणों रूपी हाथ काटे जाने से संक्लेश पा रहा हो। शत्रुसैन्य को जीतने वाला स्कंधावार उड़ते हुए रेणु के प्रसार से मैला हो रहा था, तथा रथों, हाथियों, घोड़ों व भटों से संकुल एवं उठाये हुए सैकड़ों मयूर ध्वजों से मानो जड़ा हुआ था। वहाँ गजों के गंडस्थलों से मलित मद से कीचड़ हो रहा था और घोड़ों के फेन से मार्ग दुर्गम हो रहा था। फहराती हुई ध्वजा पताकाओं से देव भी डर रहे थे। तने हुए छत्रपटों से वह (स्कंधावार) पांडुरवर्ण हो रहा था, व बांस में लगी हुई कपड़े की छोटी छोटी झंडियों से वह करील के वृक्षों को कंपायमान कर रहा था, और मांडलीकों के मुकुटमणि समूह से महान गौरव संपन्न था। सामंत कुमारों के कशों (चाबुकों) से आहत होते हुए अश्वों और खेलती हुई पदाति सेना से उस प्रदेश को थरथराते हुए उस सेना ने एक जलवाहिनी का अवगाहन करके उसके जल को पार किया। उस प्रदेश के लोग अपने सिर पर जटाजूट बांधे और गोलाई से शिरोवस्त्र लपेटे हुए थे, वहाँ की कामिनियाँ कटिवस्त्र में कछौटा लगाये हुए थीं, एवं लोगों के पदचाप से उस नदी का तटवर्ती प्रदेश कीचड़मय हो रहा था। कहीं रथ के चक्के से छोड़ी हुई चीत्कार से त्रस्त होकर काठी (गोण) को गिराकर बैल भाग गया, दूसरे वश में किये हुए (अभ्यस्त) बैल पर गोस्वामी ने पुनः बोझ लादा। रसोई पकाने वाली अर्थात् दूसरों का खाना

बनाकर गुजारा करनेवाली एक विबंधनी अर्थात् असहायस्त्री ने (तेज हांकने के लिए) बैल पीटते हुए पदाति (भृत्यसैनिक) को (यह कहकर) रोका—अरे! अपने इस फलक के समान चेष्टा करने वाले (अर्थात् भड़कीले) बैल को झटपट दूर हटाओ, वरना यह ढीठ, बालक को भी कुम्हड़े के समान दे पटकेगा। कंसेरों के बोझ गिर जाने से उनके बहुत घने (अधिक) भाजन रण- रण करके फूट गये। रोकते-रोकते भी एक तेली का शकट दुष्ट नदी में चला गया, और तडाक् से टूट गया। (हो=) अरे लोगों! मेरा बैल कहीं भुला गया, हाय मैं लुट गया, इस प्रकार एक किरात चीख-चीखकर पुकार मचाने लगा। एक कल्लाल का मद्यपात्र फोड़ डाला गया, इस पर एक भाट (भट्ट) सुरा को बूंद बूंद करके छांटने अर्थात् एकत्र करने लगा। संकुचित नाक को हाथ से पकड़ता हुआ, सिर धुनकर एवं नाक से हुंकार करता हुआ (रात में) जागने वाला एक प्रतिहार बोला-दुष्ट बैल के द्वारा (तेलवाहक बैलों की) जोड़ी को लात मार देने से तेल नष्ट हो गया। एक महावत एक कुट्टनी से बोला, हट जाओ, मार्गावरोध मत करो! (किसी ने कहा) अरे राजकुल के हाथी को बांधकर और घोड़े को पीटकर अब तुम्हारी क्या कुशल है? रात (को रात) व दिन (को दिन) नहीं गिनते हुए, राजा कहीं भी विराम नहीं लेता था, और इसका कारण भी बहुत बड़ा था कि दुर्द्धर वैरी से महान युद्ध होना था, अपनी (होने वाली) महिला का पराभव हो रहा था, और बालक अकेला ही (लड़ने) चला गया था ॥7॥

इस प्रकार नृपति स्कंधावार सीधे बांसों की मेखलाओं से भरे हुए एवं दुर्गम शिखरों वाले विंध्य पर्वत में प्रविष्ट हुआ, जो पूर्व और अपर (पश्चिम) उदधिको धारण करके धराके प्रमाणदंड के समान स्थित था। इसके उपरांत पहाड़ी झरनों, विषम कंदराओं और सुदंर वृक्षों के उत्तम कुंजों तथा अपने शोर से बहरा कर देने वाले वनचरों के भ्रमण से युक्त विंध्य महाअटवी दिखाई दी। कहीं अहिमार, कठोर खदिर (खैर), भाव, धम्मण और घने कंटीली बेरी के वृक्ष थे। कहीं बांस, झंसी (झाड़?) तिरिंगिच्छ और अंजण तथा रोहिणी (गुल्म विशेष) व रावण (औषधि विशेष) आदि के

बडे-बडे वन थे। कहीं बेल, चिरिहल्ल, अंकोल्ल, धातकी और मल्लि तथा भल्लातकी के वृक्ष थे। कहीं पर मुख्यता घोंटी, टिंबर, निघन फणस व हिंगुणी के बड़े-बड़े वृक्ष थे। कही सिरीष, सेवणि, शेफालिका, सिंसम (शीशम शिंशपा), सर्ज, गुंजा और शमी (छोंकार) के वृक्ष थे कहीं कटभू (कटहल?), किरिमाल, शिफाकंद (मैनफल) और कर्णिकार (कनैर) व कुटज और गणिकार के तरु थे। कहीं ककुभ (चंपा?) वट, ढउह (ढौह?) करील, करवंदी (करौंदा) मार व महुआ और सिंदी के वृक्ष थे। कहीं निंब, कोशाम्र, जंबूकिनी (वेतस बेंत), नीबू व उंबर (उदुंबर) के सुंदर वृक्ष मानो स्वर्ग को छू रहे थे। कहीं पर्वत मेखला पर हाथी व क्रुद्ध सिंह गर्जन कर रहे थे। कहीं दंड (शस्त्र) से आहत व्याघ्रों (की चिंघाड़) से वह अटवी गुंजरित हो रही थी, और कहीं नील गाय विदीर्ण कर डाली गयी थी। कहीं घुरघुराते हुए बनैले सुअरों के दाढ़ों से उखाड़े हुए कंद सूख रहे थे। कहीं हुंकार करते हुए बलवान महिषों के सींगों से आहत हुए वृक्ष गिर गये थे। कहीं दीर्घ-स्वर से बुक्कार छोड़ते हुए वानर दौड रहे थे। कहीं घूग्घू-घूग्घू करते हुए सैकड़ों घूयडों के स्वर से रुष्ट हुए वायस कांव-कांव कर रहे थे। कहीं श्रृगालियों के फेत्कार से आह्वान किये गये जंबूक पकड़े जा रहे थे। कहीं खल-खल करके झरते हुए जल के छोटे-छोटे प्रवाह थे, और कहीं काले शरीर वाले म्लेच्छ थे। कहीं पृथ्वी पर गिरे हुए पत्तों से ढके हुए सर्प पड़े थे, और कहीं नागों के छोड़े हुए फुत्कारों से विष के समान श्याम वर्ण के दावानल जल रहे थे।

और भी-वहाँ चोरों के निवास के योग्य ऐसे घने अरण्य दिखाई देते थे जिनमें विषम कांटेदार वृक्ष और झाड़ियों के जंगल थे। वहाँ पारधियों के घरों के द्वार बिल्कुल एकसमान रूप से बने थे, और उन पर पशुओं को पकड़ने के जाल, मछली फंसाने के कांटे व जाल लटके हुए थे।उन सबके अपने-अपने घरों में मृगों का मांस सूख रहा था, तथा काटे हुए चीतों के शव पड़े हुए थे। और भी वहाँ मुंडे हुए शिर व भयानक शरीर तथा लोमरहित कूर्चा किंतु बड़ी भारी दाढ़ी वाले भील थे, तथा मंडली में बैठे हुए भीलों-द्वारा वहाँ जंघाबल (दौड़ने व युद्ध करने की शक्ति) की श्लाघा (सराहना) की जाती

थी। कहीं कोई छोटा गांव हलभूमि (कृषि क्षेत्र) की लीला धारण कर रहा था, और पंकते हुए गेहुओं से नीला (हरा) हो रहा था।

और फिर वह विंध्याटवी कैसी थी?- वह (महा) भारत रणभूमि के समान भंयकर थी, भारत रणभूमि चीत्कार करते हुए रथों से भयानक थी, अटवी शरभों (अष्टापदों) से; भारत युद्ध में कृष्ण, अर्जुन, नकुल और शिंखडी थे, अटवी में सिंह, अर्जुन वृक्ष, नेवले और मयूर थें, भारत रणभूमि गुरु (द्रोणाचार्य), अश्वत्थामा और कलिंगराज के संचरण (परिभ्रमण) से युक्त थी, अटवी बड़े-बड़े पीपल के वृक्षों, हरी-हरी लताओं एवं चार (चिरौंजी) वृक्षों से (भारत) रणभूमि गजों के गर्जन, तथा बाणधारी राजाओं से समृद्ध थी, और अटवी गजों के गर्जन, सरोवर तथा महिषों से। और भी वह अटवी लंकानगरी के समान थी, लंकानगरी रावण से सनाथ थी, और चंद्रनखा के आचरण के कारण वहाँ कलह हुआ था, और वह विंध्याटवी रावण (फलविशेष) वृक्षों, चंदनवृक्षों चारवृक्षों एवं कलभों (बालहस्तियों) से युक्त थी। लंकानगरी पलाश (राक्षस), कांचन (सुवर्ण) और अक्ष (रावण का पुत्र) सहित होने से गर्विष्ठ थी, एवं विभीषण तथा रसिक कवियों से परिपूर्ण थी, विंध्याटवी पलाश, कंचन (मदनवृक्ष), चक्षु विभीतक (बहेड़ा) के वृक्षों से गर्विष्ठ तथा नाना पकार की विभीषिकाओं एवं वानरों व खूब रस भरे फलों से समृद्ध थी। वह अटवी कात्यायनी (चामुंडा) के समान थी, कात्यायनी कृष्ण शरीरवाली है, तथा शार्दूल (शरभ) पर विहार करती हुए फेत्कार छोडती रहती है, विंध्याटवी काले कौओं शरभों के विहार व नाना वन्यपशुओं के नाद से युक्त थी। वह अटवी महादेव के समान थी, महोदव ने गौरी के अभिप्राय (छंद) से नाना प्रकार का रौद्र नृत्य किया; तथा वे गिरिसुता (पार्वती), जटाओं एवं कपाल पर खंडचंद्र (चद्रंकला) से युक्त हैं, और विंध्याटवी दारुवनों से आच्छादित थी, एवं पर्वतों, शुकों, नाना प्रकार की मूलों, विशेष अंकुरों एवं खंडकंदों (कंदविशेष) से युक्त थी। वन को लांघकर, राजा आगे बढ़ गया, व कहीं भी रुका नहीं। इस प्रकार मगधाधिप

ने बड़े आरंभ (कार्य) के उत्साह से उस विंध्या प्रदेश में प्रवेश किया जहां छैले लोग (विदग्ध-जन, ज्ञानी पुरुष) रहते थे ॥8॥

जहाँ ग्राम नगरों जैसे थे, और ग्रामीण नागरिकों जैसे, तथा नागरिक बहुविध भोगों से युक्त थे। भोगों से युक्त होकर भी वे धर्मानुगत (धर्मपालक) थे, और धर्मानुगत होकर जिनधर्म से योजित (युक्त) थे। जहाँ के गोपाल (ग्वाले) गोपालों (भूमि अथवा प्रजापालक राजा) के समान रमण करते थे, राजा लोग महिषी (महादेवी) के प्रति स्नेहासक्त होते हैं, लक्ष्मी के निधान होते हैं, तथा हस्तिशालाओं के स्वामी होते हैं, और गोधन (पशुधन, पृथ्वीधन व जनधन) का रक्षण करते हुए आनंद मनाते हैं, उसी प्रकार वहाँ के ग्वाले महिषियों से स्नेह करते थे और कमल सरोवरों रूपी गजशाला (गवयशाला-गोशाला) से युक्त थे। (क्योंकि उनकी भैंसें तालाबों में ही प्रसन्न रहती हैं), तथा अपने गोधन (पशुधन) की रक्षा करते हुए रमण करते थे। जहाँ श्रेष्ठ शालि (धान) के खेत फूले हुए थे, जो पास के वृक्षों से गिरे हुए मधु (मधूक-महुआ) के फूलों की गंध से सुगंधित थे। जहां के सरोवर कभी सूखते नहीं थे, और जो मंदमकरंद से युक्त विकसित होते हुए नीलकमल के समूहों से पूर्ण थे। जहाँ शुकों से समाधिष्ठित भ्रमर पंक्ति मरकत व प्रवाल (मूंगा) मणियों से जड़ी हुई नीलमणि के समान शोभायमान होती थी। जहाँ खेतों में कृषक वधुओं के छोक्कार रव (पक्षियों को डराने के लिए की जाने वाली ध्वनि) से बिंधकर, पथिक, शुक और मृग एक पग भी आगे नहीं बढ़ते थे। जहाँ स्थूल स्तनों के भार (उभार) से संरुद्ध-भृकुटि (दृष्टिपथ) वाली प्रपालिका (प्याऊ वाली) पथिकों के जलपात्रों को भरती थी। जहाँ अपने कटितल की विशालता से क्लान्त हुई नीले वस्त्रोंवाली गोपी द्वारा गीत गाये जाते थे। जहाँ के लोगों का वंश अर्थात् पहनावा देवताओं का भी उपहास करने वाला था, वहाँ नर्मपुर नामका पट्टण था, जो बहुत देशों की मिली जुली जनमंडली से अवरुद्ध (भरा हुआ) था, तथा मनोहर वस्त्रों को पहने हुए क्रीड़ाशील शिशुओं से सुशोभित था। जहाँ की सदैव अभिनव स्नेह को प्रगट करने वाले प्रियतम की लाड़ली (प्यारी) कुलबालिकाऐं गिरितनया (पार्वती)

के सौभाग्य को भी जीतती थीं, व जहाँ के बहुत बुद्धिमान तथा मनः शुद्धिपूर्वक धर्म, अर्थ व काम की सेवा करने वाले पुरवासी लोगों के द्वारा निष्ठुर छलयुक्त, हृदय से कुटिलभाव पूर्ण तथा आद्यंत खारे (अर्थात् दुःखद) और पराधीन व मूल्य देकर प्राप्त होने वाले वेश्यारत (वेश्यारमण) को कठोर, वक्र व गांठों से भरे हुए तथा खारे व दूसरों के आधीन इक्षु के समान त्याग कर, आद्यंत सुकोमल (स्नेहयुक्त) तथा बहुत रसवाले (अर्थात् अत्यंत सुखद)कांता (स्वपत्नी)रतका सेवन किया जाता था ॥9॥

सुभट, स्यंदन तुरंग व श्रेष्ठ हाथियों से धरा सहित धराधर (पर्वत) को कंपायमान करते हुए गहरी नदी के जल को अवगाहन कर, उस नगर को बायें करके जिस राजा का उज्ज्वल यश प्राप्त सैन्यशिविर चला जा रहा था, उस राजा ने सूर्य की किरणों से तप्त, वनगजों के समूह को बहुत प्रिय, और जंबूफलों के (गिरते हुए) गुच्छों से हिलते हुए जल वाली रेवा नदी को देखा। मज्जन करते हुए मदगजों से युक्त वह नदी मानो तरलमद अर्थात् सुरारूपी तंरगोंवाली तरंगिणी थी। अपने निर्मल जल से वह वृक्षों और बाटों (पगडंडियों) का उल्लंघन करने वाले एवं बड़े बड़े खदान खोद देने वाले प्रवाह से युक्त थी। वह रेतीले तट प्रदेश रूपी कच्छा (कटिवस्त्र) पहने हुए थी, तथा महुए के गिरे हुए कुसुमों के लिए लपकती हुई मछलियों से युक्त थी। उसमें गिरे हुए सैकड़ों अंकोल्ल पुष्प मानों सैकड़ों स्त्रीभ्रमर थे, जिनकी गंध से अत्यंत आसक्त हुए भौंरे उन पर मधुर गुंजार कर रहे थे। क्रीड़ा करती हुई शबर सुंदरियों से वह ईषत् मर्दित हो रही थी और उनके कठोर व स्थूल स्तनों से उसकी लहरें टूक टूक हो रही थीं। उस महाजल वाहिनी को उतर कर नृपसेना ने कुरलपर्वत को देखा, जो (अपने उन्नत शिखरों से) चमकते हुए जिनभवनोंसे रमणीक था, और वंदन-भक्ति से एकत्र हुए देवों से आच्छादित था, (अथवा जहाँ वंदना की भक्ति से देवकन्याऐं एकत्र थीं)। राजा के आगमन को जान, मानों हर्षित होकर वह फूले हुए कदंब द्रुमों से रोमांचित हो गया; नाचते हुए मयूरों से वह मानो नाचने लगा, और देवदुंदुभियों के तूर से मानों (हर्ष पूर्वक) गर्जन करने लगा, फलों (के भार) सें झुकाये हुए डालों से मानो प्रणाम करने

लगा, और कुरंग शिशुओं के उछल-कूद करने के रूप में, मानों उसने नृपति को (अर्घ) अर्पण किया, देवों-द्वारा अभिषेक करायी जाती हुई जिनप्रतिमाओं के रूप में मानों उसने नृपति का ही अभिषेक कराया, और कोकिल समूह के आलाप से मानों आनंद से कुल-कुला उठा। उस पर्वत को देखकर, जिनचरणों को नमन करके, और फिर नदी के और थोड़े से मोड़ों को लांघकर नृप ने पड़ाव डाला, तथा सेनापति प्रमुख लोगों से इसकी सूचना की गयी। राजा का अंतः पुरनिवास विस्तीर्ण किया गया, व उसके आगे सिंहद्वार दिया गया। तत्क्षण पदातियों के संचरण को अवरुद्ध करते हुए, योक्ताओं (रथवानों) ने रथों के जोत उतार दिये। मत्तमातंगों को बाँधने में सचेष्ट महावतों ने सरलवृक्षों को ले लिया। गले में बेलें डालकर बांधी हुई गधियों के संगम के लिए घुड़सालों में घोड़ों का संचार कराया गया। कपड़े के तंबुओं का आश्रय लेकर राजा का सारा परिग्रह (सैन्य) अपने-अपने स्थानों पर स्थित हो गया। वहाँ रेवा नदी के किनारे, वृक्षों के साये में, कुरल गिरिराज के निकट श्रेणिक राजा का सैन्य भूमिको समान करके विस्तार से बस गया ॥10॥

सिंहद्वार के आगे सेना के लिए पण्यशालाओं (दुकानों) से युक्त एवं विलासपूर्ण कामिनियों से ललित आवास बनाया गया, फिर कोटपालों के द्वारा विविध प्रकार के क्रेय (खरीद-योग्य)पदार्थों से भरा हुआ हाटमार्ग (बाज़ार) बनाया गया। नटों, विटों व डोमों ने रसोईयों में प्रवेश कर उन्हें बिटाल दिया (अशुद्ध कर दिया), और भ्रष्ट ब्राह्मण गधों के द्वारा चबाये गये दर्भ से संध्यावदंन करने लगा। गले में पुष्पों की माला डाले (मस्तकपर) चंदनका लेप किये हुए एवं पसीना चूते हुए एक भ्रष्ट (ब्राह्मण)गुणों की गणिका (अर्थात् गुणों को लूटने वाली)बाजारू कुट्टनी (के डेरे) में हर्षित होकर प्रवेश करने लगा।

इसप्रकार वहाँ मगधराज ने पड़ाव डाल लिया। उधर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँ की कथा इस प्रकार हुई। गगनगति के साथ विमान में बैठकर निमिषमात्र में वह केरल नगरी को प्राप्त हुआ। वहाँ पत्तन के बाहर संग्राम तूरों

के द्वारा किया हुआ कोलाहल दिगंतों को भर रहा था। फहराते हुए महाध्वजों तथा धवल पताकाओं से वहाँ ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था, मानों प्रलय समुद्र ही उन्मार्ग अर्थात् (अपनी मर्यादा छोडकर) आकाश में जा लगा हो। मत्तमांतग भारी गर्जन कर रहे थे, और श्रेष्ठ तुरंगमों के समूह हिंनहिना रहे थे, तथा म्यानों से निकाले हुए तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले सुभटों के द्वारा छोड़ी हुई हुंकारों से वह कृतांत को भी भयभीत कर रहा था। यह सब देखकर कुमार ने तत्क्षण ही विस्मित मन होकर कहा-कौतूहलवर्द्धक यह सब क्या दीख रहा है? तो खेचर ने कहा यही तो हमारा काँटा है, यही वह है जो उस श्रेष्ठ कुमारी को मांगता है, जो अपने बल से सूर्य को भी स्तंभित कर देता है, जो यम के समान अद्वितीय प्रताप वाला है, जिसने मृगांकराजा को संतप्त किया है, और जिसको रण में जय करने की प्रतिज्ञा करके तू इस वैरी के शिररूपी पर्वत के लिए वज्र बनकर आया है। अपनी सेना के साथ यह देवताओं के लिए भी हृदय का शूल बना हुआ है, यही (वह) विद्याधर रत्नचूल (रत्न शेखर) है। इस पर कुमार ने कहा, मैं इसका (सैन्य) प्रमाण देखना चाहता हूँ, अतः विमान को स्कंधावार के संन्मुख खींच लीजिये। तब गगन गति विद्याधर ने विमान को रोककर, पृथ्वी से मिलाया, जंबूकुमार उसमें से उतरा व मृगांक के कार्य से, शत्रु के उस फैले हुए स्कंधावार में आशंका पूर्वक प्रवेश किया ॥11॥

नभस्तल के निकट विमानसहित गगनगति चल रहा था, और पृथ्वी पर जंबूस्वामी चल रहे थे। रण की उत्कंठा से भरे हुए मन से उसके चलते हुए पृथ्वीतल हिल उठा। अनार्य जाति के उस देश के व्यवहार में कुशल वह वणिक् (पुत्र) लोगों के देखते-देखते राजकुल के द्वार पर पहुँचा हुआ दिखाई दिया। (वहाँ पहुँचकर) कुमार ने सुवर्णमयदंड हाथ में लिये हुए, और व्यवहार कुशल-प्रतिहार को कहा-अपने नरेंद्र को यह महत्वपूर्ण बात कहो कि मृगांक का भेजा हुआ दूत आया है। तब सभामंडप में जाकर दंडधर ने राजा को समस्त वार्ता निवेदित की-'हे श्रेष्ठ सुभटों के पालक परमेश्वर, मृगांक राजा का दूत द्वार पर विद्यमान है।' शीघ्र प्रवेश कराओ, ऐसा आदेश

पाकर, उसने जंबूकुमार को प्रवेश कराया। रत्नशेखर ने उसे आते हुए देखा, और सबके मन में एक चमत्कार उत्पन्न हो गया। उसके नखमणियों से प्रकाशित चरणों में जिनकी दृष्टि लगी थी, ऐसे शत्रुओं के लिए तेज से तप्त उसका शरीर अत्यंत दुष्प्रेक्ष्य था! वह पुष्टसुवर्णस्तंभ के समान जाँघों वाला था, और उसकी स्थिर (निश्चल) दृष्टि से वैरियों का संघ तिरस्कृत हो रहा था। उसके करयुगल में कमल और शंख (के चिह्न) उद्भासित हो रहे थे, और उसके नितंब तरुणसिंह के समान चक्राकार थे। वह सुदृढ़, बहुत सुंदर तथा प्रशस्त एवं दिव्यवस्त्रों को पहने हुए था, जिनके बंधन मणियों की कांति से व्याप्त हो रहे थे। उसका वस्त्रों से आच्छादित वक्षस्थल, जो संग्रामशूर हाथियों का दमन करने में दक्ष था, हार की कांति से प्रकट हो रहा था। हाथी के दीर्घ सूँड के समान उसके बाहुदंड थे, और उसके सुंदर कपोल मणिकुंडलों से मंडित थे। उसके अधर तांबे के समान लालिमा से प्रकाशित थे, और कंधे बहुत ऊंचे एवं केशबंध श्वेत कुसुमों से उद्भासित। (उसे देंखकर) रत्नशेखर सोचने लगा- 'इसका दूतपना कैसे घटित (संभव) हो सकता है? यह बालक मनुष्य नहीं, कोई अन्य ही है। दूत की इसमें कोई रेखा तक नहीं है। न तो यह नमस्कार करता है, और न स्वाभिमान के कारण (अपने आप बिना कहे) बैठता ही है। तो फिर अब इसकी बात सुन लेता हूँ, इस प्रकार मानते हुए उस मतिमान विद्याधर ने उसे आसन दिलवाया। बैठकर कुमार ने जरा भी कालक्षेप नहीं किया, और वह रत्नशेखर से अभिमान पूर्वक ऐसा कहने लगा-यदि तू समझे, तो मैं परमार्थ से तेरे हित की बात कहता हूँ कि अनाचार का प्रवर्त्तन मत कर! दर्प का लोप (त्याग) करके इस बात को समझ! युद्ध में मत जूझ; और अभी भी गये (चले) हुए (अनीति के) मार्ग से वापिस लौट जा!॥12॥

माँ बाप ने जिस कन्या को दुर्नीतिका नाश करने वाले, वैरी-वीरों की कांति को नष्ट करने वाले, शरणागतों (की रक्षा) के लिए वज्रपंजर एवं महाराजाओं के राजा अर्थात् महाराजाधिराज श्रेणिक के लिए दे दी, उसके

लिए तूने जो असद् आग्रह किया है, उसे अब भी छोड़ दे। जानते हुए भी हालाहल विष की बेल मुँह में मत डाल!

'अहो! अर्क (सूर्य), मृगांक (चंद्र) और शक्र (इंद्र) को (अपने भय से) कंपाने वाला रावण सीता के कारण मरा। मतिको नष्ट करने वाले झूठे दर्प से दर्पित दुर्योधन कैसे अनर्थ को प्राप्त हुआ। तेरा कोई दोष नहीं है, तू दैव का मारा भागा-भागा फिरता है। इस प्रकार की अनीति करने वाला महान आपत्ति को प्राप्त होता है।' जैसे जैसे जंबूकुमार ऐसा दंडगर्भित (दर्पपूर्ण व अभिमानोत्तेजक) वाक्य बोलता, वैसे वैसे खेचर अधिकाधिक रोष से काँपता। (क्रोध के आवेग से) उसका कंठ स्तब्ध हो गया, शिरा-जाल प्रदीप्त हो उठा और विशाल कपोल प्रस्वेद से सिक्त हो गये। ओठों को काटते हुए गुंजा के समान उज्ज्वल (चमकीले) लोचन, तथा फड़कते हुए नासापुट से भयानक, ऐसे अपने स्वामी को रुष्ट हुए देखकर तभी सन्नामधारी मंत्रियों ने दूत से कहा-अहो! अतिसाहसपूर्ण वाणी बोलने वाले दूत! तूने जो कहा वह निश्चय से शक्ति के अभिमान से पूर्ण एवं नाश का कारण है। क्या किसी दूसरे की जिह्वा जिससे तू प्रलयकालीन सूर्य के समान प्रचंड तेजस्वी इस राजा के आगे ऐसा बोल रहा है? इस पर कुमार ने कहा-रति के लोभी इस राजा को तुम लोगों ने संकट के महासागर में डाल दिया है। रोष से भरा होने से यह अपने हितार्थ को भी सुनता नहीं, और न कार्य-अकार्य व बलाबल को ही समझता है। रोष व द्वेष मनुष्य को नाना नाच नचाते हैं, एवं अति उच्च (महान) वंश में भी अपयश लगाते हैं। रुष्ट होने वाले की बुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो जाती है।, पीछे पसीने के जलबिंदुओं की धारा (संतति) विगलित होती है। पहले तो पाप रस विवेक को रंग देता है। (दूषित कर देता है), पीछे नेत्रों को भी नहीं छोडता (उन्हें भी क्रोध के आवेश से लाल कर देता है)। पहले तो यह (क्रोधरूपी) काला साँप मनको डंस लेता है, पीछे निःशंकरूप से अधर बिंबको भी (क्रोध के आवेश से व्यक्ति ओठों को काटने लगता है)। प्रथम तो अपकीर्तिका स्फुरण होता है, पीछे नासापुटों का फड़कना। रोष के महान् आवेग का धीरपुरुषों-द्वारा दमन किया जाता है, किंतु इतर (अधीर) व्यक्ति

स्वयं रोष से मारा जाता है। इस (क्रोध) से विजित होकर भी यह कुमति (दुर्बुद्धि खेचर) लज्जित नहीं होता, प्रत्युत कैसे महान वैर से गरजता है। (यह सुनकर) रत्नचूल कहने लगा-दूत होकर बोलना भी नहीं जानता, और हमारा अपमान करता है। बार-बार हमारी अवगणना (निंदा) करता है, और श्रेणिक राजा की प्रशंसा, तथा मेरे भय से नगर में भीतर घुसकर बैठे हुए मृगांक के विजय की स्थापना करता है। रे दूत! उससे कहो कि यदि रण में आकर भिड़े, तो तेरा यह आना-जाना छूट जाये! हम विद्याधर राजा जहाँ युद्ध में आयें हों, वहां भूगोचरी राजाओं की हमसे क्या स्पर्धा? इस पर बालक ने कहा-क्या रघुपति भूगोचरी और रावण विद्याधर नहीं थे? यदि कौवे (काक, पक्ष में काय = शरीर) का आकाश में गमन हो गया, क्या इसी से वह गुणों का पात्र बन गया? और यह वृत्तांत भी विरूप अर्थात् झूठा है कि मृगांक अशक्य (असमर्थ) है। वह क्या तेरे भय से अपनी नगरी में स्थित है? हस्तिसमूह रूपी कानन को विध्वस्त करने वाला जो सिंह गिरिकंदरा में (जाकर) रहता है, यह तो उसकी प्रकृति ही देखी जाती है। कहीं कहो! वह क्या सियालों से डरकर ऐसा करता है? ॥13॥

अपने हाथ के पंजे से आहत हाथी के कुंभस्थल से उखाड़े हुए (गज) मुक्ताओं को, जाते हुए सिंह के नखों से गिरे हुए देखकर, (उसका पीछा करके) तू उस सिंह को मारना चाहता है, तो तू अवश्य ही उस यमराज का बंधू है (अर्थात् तू बहुत शीघ्र यमपुरी जाना चाहता है)। मैं वह दूत नहीं हूँ, जो जाकर निरर्थक बात कहूँ। मैं तेरे बढ़े हुए दुर्नीतिरूपी द्रुमका फल तुझे यहीं दिखाने में समर्थ हूँ। तब पृथ्वी पर ठोकर मारते हुए, बनैले हाथी के समान हाथ (पक्ष में सूँड) उठाये हुए, नाग के फणाटोप के समान नये शान दिये हुए शस्त्र को लिये हुए, सिंहगर्जन के समान निनाद करके उठते हुए, उस संग्राम दैत्य के द्वारा अपने भृत्यों को यह आज्ञा दी जाने पर कि ले लो! ले लो (पकडो! पकड़ो!)! बल में प्रधान (श्रेष्ठ बलशाली) अष्टसहस्र दुष्ट व दर्पिष्ठ (गर्वीले) खेचर मारो मारो कहते हुए उठे। तलवारों को निकालकर और वार करने की स्थिति में आकर, भालों को झुकाते हुए और चक्रों को

घुमाते हुए, धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए एवं बाणों को निकालते हुए, ऐसे अज्ञात प्रमाण (सहस्रों) भटों ने उसे मारने का उपक्रम किया। तो यह देखकर (जंबूकुमार ने शत्रुओं के ऊपर बड़े भारी क्रोध भाव से ओष्ठ काटते हुए व ऊपर को उछलते हुए, अपने हाथों में वह कटारी धारण की जिसमें युद्धों की रेखाऐं पड़ी हुई थीं, और जो मानों भूख से दु:खी यमराजकी लपलपाती हुई जिह्वा ही थी। इस प्रकार युद्ध करते हुए मारे गये प्रेतखंडरूपी भयानक गदा से वह कुमार विद्याधरों को मारमार कर गिराने लगा। इतने में गगनगति भी विमान सहित वहाँ आ गया, और कुमार ने उसके द्वारा अर्पित किये हुए उत्तम ढाल व तलवार को ले लिया। गगनगति ने कहा–यहाँ विमान में चढ जाओ (कुमार ने कहा) नहीं, मैं नहीं चढूंगा। युद्ध के समय इसमें चढ़कर (आत्मरक्षा के लिए) डरसे कोने में जाने से क्या लाभ? भागते हुओं के पीछे त्वरापूर्वक न दौड़कर, परंतु युद्ध करते हुए, यहीं प्राप्त करके (सामना करके) इन (अनेक) विद्याधरों को मेरे खड्ग की धारा रूपी जल में डूबते हुए तथा अन्य (अनेकों) विद्याधरों (के कटे हुए शिरों) को (आकाश में) हरिण के समान उड़ते हुए देखो। इस प्रकार कहकर जंबूकुमार शत्रुसेना के एक अंगपर टूट पड़ा। फिर ऐसा कौन खेचर था, जो उसकी दृष्टि को सह सके (अर्थात् उसके आगे ठहर सके)। वह जंबूकुमार शत्रु के प्रहार से अपने को बचाता हुआ, अपना घात (प्रहार) शत्रुओं पर छोड़ता हुआ, झड़प पूर्वक शत्रुसेना को सुदृढ़ चर्मपृष्ट (ढाल से पीछे को) दबाता हुआ, अतिशय शक्तिशाली काल पृष्ठ (धनुष) के समान हाथों को मारने के लिए ऊँचा करके, हस्तिदंतवेध के समान गर्दन काटने वाली खड्गरूपी नासिका (सूंड) से अधोमुख होकर, बैठकर; तथा कूर्मासन के द्वारा (शत्रुओं के) रथ–हाथी व घोड़ों के कर–चरणों का घात करते हुए; एवं सिंहावलोकन के समान आगे के शुत्रओं पर पादाघात करके शत्रुओं का संहार; तथा मृग के समान पैरों के आगे करके शत्रु भूमि में घुसकर क्रम–क्रम से अग्रिम शत्रुओं का विनाश; फलक (शस्त्रविशेष) को वामपार्श्व में, व खड्ग को छिपाकर शत्रुको यह दिखलाते हुए कि यह

असावधान हो गया है। (ऐसा सोचकर) मारने के लिए आगे आये हुए शत्रु को मारना; और शत्रुओं के द्वारा आघात किये जाने पर बाण में फलक लगाकर शत्रुओं को मारना; एवं अकस्मात् पीछे हटकर फिर (सहसा आगे बढ़कर) शत्रुओं को मारना, इत्यादि अनेक प्रकार के कुमार के दाव पेंचों से वह विद्याधर सैन्य अपने समस्त वाहन नष्ट हो जाने से, उस अकेले (जंबूकुमार) से ही इस प्रकार छिन्न-भिन्न होने लगा, जिस प्रकार वीर रस से युक्त अंगों अर्थात् अत्यंत तेजस्वी किरणों वाले सूर्य से आकाश में तिमिर फट जाता है॥14॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर-कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार वीर-रसात्मक महाकाव्य में श्रेणिक का दिशाविजय नामक यह पंचम संधि समाप्त॥

○○○

संधि-6

दरिद्र को दान देने वाले, दूसरों की विपत्ति में दुःखी, और सरस काव्य को ही अपना सर्वस्व समझने वाले कवि वीर के समान पुरुष को धारण करती हुई, हे धरित्री! तू कृतार्थ है॥1॥ हाथ में चाप (धनुष), साधुशील पुरुषों के चरणों को शिरसः प्रणाम, वदनकमल में सच्ची वाणी, हृदय में स्वच्छ प्रवृत्ति, कानों में इस सुने हुए श्रुत का ग्रहण तथा बाहुलताओं में विक्रम, वीरपुरुष का यह सहज स्वाभाविक परिकर (साधन सामग्री) है, परंतु इस समय तो कार्य ही दूसरा है (अर्थात् अब तो वीर कवि को युद्ध का वर्णन मात्र करना है)। केरल नरेशों के द्वारा धारण किये हुए आश्रय प्रदेश (केरल-नगरी) को छोडकर (उसके बाहर) विधाता के बल से युद्ध में मौत भी (भय से) पलायन कर रही थी। (?) अब जहाँ युद्ध हो रहा था, वहीं जंबूस्वामी रण में रत्नशेखर से भिड़ गये।

राजकुल में समर कोलाहल सुनकर बाहर (भी) सैन्य सन्नद्ध होने लगा। कोई उद्विग्न होकर उन्मार्ग से भागा, परंतु शत्रु का कहीं कोई चिह्न भी न पा सका । कोई कहने लगा, यह क्या हो रहा है? कहाँ चलें कहाँ भागें धरातल तो फटा जा रहा है। अकेला मृगांक तो युद्ध करने में असमर्थ है।, प्रायः (यह) कोई अज्ञात व्यक्ति ही युद्ध में लगा हुआ है। प्रचंड सैन्य ने (अपने राजा के) शिविरों को इस तरह घेर लिया, जैसे जंबूद्वीप लवणोदधि से घिरा है। तब किसी दूसरे ने कहा–न कहीं शत्रु है, और न युद्ध, राजा की सेना में ही फूट पड़ गयी हैं। कोई संतप्त होकर किसी से कहता है, काल के समान कोई बालक आ गया है, और उस (अकेले) के द्वारा राजा सहित सारी सभा रण में उसकी तलवार के आघातों से घायल हुई है तब मन में अत्यंत प्रसन्न होकर पुरी में प्रवेश करके गुप्तचरों ने मृगांक से वह अशेष वृत्तांत कहा जो उन्होंने उस अवसर पर शत्रु की छावनी में देखा था ॥1॥

हे देव! हे राजन! क्या कोई एक महर्द्धिक कुमार शत्रु सैन्य में आया है? क्या इसे श्रेणिक ने भेजा है? अथवा तुम्हारा कोई स्वजन है, यह हम नहीं जानते। उसने तुम्हारे पक्ष में चढ़ाई करके शत्रु सैन्यको अपनी तलवार (की धारा) के जल की लहरों में गले तक डुबो दिया है, और भुवन के समस्त भार के अपने भुजदंड में तौल लिया है। (अर्थात् समस्त भुवन को मानों अपनी भुजाओं में उठा लिया है), महान प्रहार जन्य रक्त के प्रवाह से उसे लीप दिया है, भटों के गिरे हुए मुंडों व रुडों से नचा दिया है, खेचरों के कटे हुए हाथों व पैरों से मंडित कर दिया है, एवं (सौभाग्य-सूचक) रक्तवस्त्रों को धारण करने वाली (शत्रु) नारियों को विधवा बना दिया है। अत्यंत शीघ्रतापूर्वक संनद्ध होकर वेगपूर्वक गमन कीजिए, और युद्ध के मध्य अभी उससे जा मिलिए! यह सुनकर शूरवीर संग्राम के रसिक हो उठे और विविध प्रकार के युद्ध के बाजे बजाये गये। युद्धकला में पटु रथ, हाथी व घुड़सवार योद्धाओं ने अति पौरुष के उद्वेग से उत्पन्न अतिशय रोमांच के कारण टूटती हुई कवच की डोरियों को बांध लिया, सारी सेना में कोलाहल मच गया और ध्वजा पताकाऐं फहराने लगी, इस प्रकार चतुरंग सैन्य संनद्ध हो गया ॥2॥

कोई कांता अपने पति को संदेश देने लगी-अपने हाथ में सुंदर मणियों से घटित चूड़े के लिए मुझे कोई कौतुक नहीं, बल्कि मेरे लिए तो एकमात्र वही चूड़ा भला, जो शत्रु के हाथी के दाँतों से बना हुआ हो। दूसरी कोई प्रिया अपने भर्त्तार को बोली-मूंल्य से खरीदे हुए हार की यहाँ कोई शोभा नहीं है, तीक्ष्ण खड्ग की प्रभा के समान निर्मल गजमुक्ताओं को तुम स्वयं (शत्रु के) हाथी के कुंभस्थल को आहत (विदीर्ण) करके लाओ। कोई कन्या कहने लगी-स्वामी के भूतकाल के ऋण को काटने (चुकाने) का आज ही अवसर है, भटों से भयंकर इस संग्राम में एक शिर से स्वामी का ऋणमोचन हो या न हो, तो फिर मैं भी इस कार्य के लिए पुरुष वेष बनाकर, तलवार व ढाल लेकर (रण में) चलूंगी। और कोई कांता बोली-तुम लोगों को (दूसरों को) आज्ञा नहीं देनी चाहिए बल्कि शत्रुसैन्य को देखते ही सबसे पहले (स्वयं) भिड़ जाना चाहिए। कोई भट बोला-हे कांते ! तू युद्ध में मेरे धड़को बाणों द्वारा बींधा जाने पर भी, हाथ से खड्ग व ढाल को गिराकर, शत्रु के हाथी की सूँड को काटकर, उसके दाँतों में झूलते हुए देखना ॥3॥

संभ्रम (क्षोभ) प्रकट करता हुआ सैन्य निकल पड़ा, और भट कोट व अट्टालिकाओं पर (सतर्कता से) प्रवृत्त हो गये। अच्छी तरह शोधा हुआ समर क्षेत्र घेर लिया गया, ऐसा देखकर शत्रु अपने सैन्यसहित (उसकी ओर) दौड़ पड़ा। उधर राजकुल के अंदर वह श्रेष्ठ धीर वीर जंबूकुमार खेचरों के साथ युद्ध कर रहा था, और इधर दोनों विद्याधरों की सेनाएं कलकल (कोलाहल) करती हुई आपस में लग गयीं। चाबुक से आहत हुए चंचल घोड़ों वाले रथ अनेक शूरवधुओं के नेत्रों को आनंद देने लगे। मनाक् (थोड़ा) कुपित करके गज समूहों को प्रेरित किया गया। जिनके मुखपटों को उचाटकर हटा दिया गया था, वैसे अच्छी तरह साधे हुए घोडों के समूह चलाये गये। रण के रंगीले भटों के समूह वर्गों में बंट गये। दर्प का नाश करने वाले आयुधों को अपने स्थिर हाथों में लिये हुए, म्यान से निकाले हुए तलवारों को घुमाते हुए, तथा सुगाढ़ अर्थात सुदृढ एवं खींची हुई प्रत्यंचा से युक्त धनुषों को धारण करने वाले योद्धा परस्पर एक दूसरे पर बाण छोडने लगे। तब ध्वजाओं को

मलिन करता हुआ ऐसा रज उठा, मानों दोनों सेनाओं का भार सहन न कर सकने वाली धरित्री ने अत्यंत खेदखिन्न होकर बड़ा निःश्वास छोड़ा हो ॥4॥

अथवा सुभटों के कोप (अग्नि) से दग्ध होते हुए मानों उसका धूमोद्गार ही ऊपर को उछल रहा हो। चरणों (अर्थात् भूमि) को छोडकर वह धूल अपने को विस्तीर्ण कर रहा था, क्योंकि (शक्ति से न दबाया हुआ) अकुलीन व्यक्ति और पृथ्वी में लीन (शांत) नहीं हुआ धूल अवश्य मस्तक पर चढ़ता है। वह युद्ध भूमि मानों महागजों के मदजल से मज्जन (स्नान) करने लगी, और चंचल चमरों से प्रसूत मरुत के छल से मानों नाचने लगी। निर्मल स्थलप्रदेश अंधकारपूर्ण हो गये। दोनों सेनाओं के नेत्र धूल से अवरुद्ध हो गये। उन्होंने अपने और पराये को न बूझते हुए इस प्रकार युद्ध किया जिस प्रकार कोई जड़मति (मूर्ख) जुगनुओं से (?) भिड़ जाये। हाथी के (द्वारा किये हुए) गलगर्जन को सुनकर किसी भट ने दौडकर वार किया, घोड़े के हींसने से सवार को जानकर किसी योद्धा ने पैनी की हुई धारवाले चक्र को छोड़ा। किसी धनुर्धर ने घरघराहट करते हुए रथ को जान लिया, और उसे (बाणों से) ऐसा बींध दिया कि वह थर्रा उठा। किसी को हांक लगाते हुए कोई योद्धा किसी अन्य से ही जा भिड़ा, और उसके शिर पर बज्रदंड के समान लकुटि (लाठी) का प्रहार हुआ। सुभटों के रुधिररूपी पय से, हाथियों के मद से, और घोड़ों के फेन के प्रवाह से नमाया हुआ (अर्थात् गीला करके शांत किया हुआ) धूल, दूसरे को मैला (कंलकित) करने वाला प्रबल ग्रास (पर्याप्त सामग्री) देकर किसी दुर्जन के समान उपशांत हो गया ॥5॥

रणभूमि ने रुधिरजन्य अरुणत्व अर्थात् लालिमा को धारण किया, और मूल संछिन्न (पृथ्वी से बिलकुल अलग कटा हुआ) रज आकाश में ऐसा शोभायमान हुआ मानों पूर्णतया अंगाररूप हुए (निर्धूम) वैश्वानर का प्रारंभ में उठा हुआ धूम्र भ्रमण करता हो। रज का प्रसार दूरतर अपसृत हो जाने पर परस्पर अपने पराये को पहचानकर, (शत्रुपक्ष के) रथियों को प्रहारों से आह्वान करते हुए, निर्भय होकर रथ चलाये गये। एक ओर की हस्तिसेना स्थिरतापूर्वक स्थित रहकर, दौड़कर आते हुए शत्रुगजों से झड़प की प्रतीक्षा

कर रही थी। खणखण करते हुए करवाल हाथों में लेकर, राजकुमार (अपने) अश्वों को चला रहे, व (शत्रुसेना के अश्वों को) मार रहे थे। योद्धा लोग जलधरों के समान बल्लम, भालों व बाणों की वर्षा करते हुए (परस्पर) बींध रहे थे। फारक्क (शस्त्र) को धारण करने वाले एक दूसरे पर टूट पड़े, और कुंतवाले कुंत धारण करने वाले प्रतिपक्षियों से भिड़ पड़े। (योद्धाओं के) कटे हुए शिर, स्थिर (शांत) रज-भार (धूलि-विस्तार), (योद्धाओं द्वारा-क्रोध से) दृष्ट अधर और (योद्धाओं को लगे हुए) सद्य-व्रणों तथा आकाश में पक्षियों के समूह से युक्त एवं निष्ठुर हृदय (योद्धाओं) वाला वह युद्ध (स्थल) ऐसी कर्णाट विलासिनी के यौवन के समान हो रहा था। (सुरतक्रीड़ोपरांत) जिसके शिर पर के केश बिखरें हों, जिसका रज भार (रजस्राव अथवा रतभार अर्थात् सुरत क्रीडा का आवेग) शांत हो गया हो, एवं रतियुद्ध (अथवा प्रणय-कलह) में जिसके अधर काट लिये गये हों, और उन पर अभी भी सरस-व्रण (ताजे घाव) विद्यमान हों, तथा जिसके कठोर स्तन नखक्षत से युक्त हों ॥6॥

वह संग्राम संघर्ष शूर महान वीरों के समूहों और बजते हुए तूरों से बड़े भारी कोलाहल से युक्त था। उच्च स्वर से हुंकार छोड़ने वाले धनुर्धरों से वह बड़ा प्रचंड हो रहा था, और वहाँ टंकार करते हुए धनुषों से बाण उड़ रहे थे। वह युद्ध आपस में मिलकर खड़खड़ाती हुई तीक्ष्ण असिधाराओं से युक्त था, और वहाँ झपटे जाते हुए बड़े-बड़े फारक्क (शस्त्र) टूट रहे थे। वह समर भालों की नोकों पर झूले जाते हुए योद्धाओं एवं शूरों के द्वारा परित्यक्त तनुत्राणों (रक्षाकवचों) से शोभायमान था। वह संग्राम प्रहार से झरते हुए रुधिर के प्रवाह तथा काटी हुई मुखनाड़ियों से निकलती हुई वाष्प से युक्त था; और वह युद्ध हाथियों के दांतों के अग्रभाग (नोक) से भेदे जाते हुए शरीरों, तथा रक्तकणों से सिंचकर रक्तवर्ण हुए छत्रों से भरा था। और वह समर मांस व चर्बी के ग्रास के लिए संचार करते हुए गृद्धों, व (शवों की) कपाल परीक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सिद्धों (औघड़ों) से व्याप्त था। कोई वेग में उद्भट अर्थात् अत्यंत वेगवान् (फुर्तीला) योद्धा खड्ग लिये हुए उछलकर इस प्रकार

रथ पर जा चढ़ता था, जिस प्रकार मृगेंद्र कूदकर पर्वतराज पर जा चढे। किसी भट ने दांतों की नोंकों पर पैर देकर किसी महागज के कुंभस्थल पर आघात किया, कोई यश के लोभ से (मैदान में) निकलता हुआ योद्धा, प्रत्यंचा को टंकारता हुआ एक श्रेष्ठ खच्चर से जा लगा। कोई भट स्वर्ग में ले जाया जाने पर, मार्ग में गीर्वाण नारियों से इस प्रकार कहकर नहीं जाता था–मैं तब तक नहीं जाऊँगा जब तक रण में शत्रु का मान भंग नहीं हो जाता इसलिए (मुझे लेने के लिए लाये हुए) अपने विमान को दूर हटाओ। कोई योद्धा गजपर्याण पर बैठे हुए सारि नर (महावत?) को मारकर हाथ में कुंत लिये हुए दांतोंसे विलक्षण (हस्ति) शरीर पर ध्यान न देते हुए, अपने मन में (हाथी को भी) हथिनी समझते हुए हाथी को मारकर एक धनुर्धारी रणराक्षस (युद्धपिशाच, प्रचंड योद्धा) को भी वंचना दे देता है॥7॥

कोई भट शत्रु का दमन करके (स्वयं भी) प्रहारों से आहत होकर भूमि पर गिरता हुआ इस तरह सोच करता है–अहो! मेरे भी (शत्रुओं को) मारने का क्या वैशिष्ट्य जबकि वैरी वंश शेष नहीं हुआ? अपने शिर से (अर्थात् शिर देकर) कोई भट स्वामी के ऋण से निर्मुक्त (निर्मुक्त) होकर मरण–निद्रा से सेवित होकर (निश्चिंत) सोता है। शत्रु के आघात से स्वामी सेवक से अलग हो गया और मूर्च्छित होकर दोनों ही भूमि पर गिर पड़े। पंखे की हवा से उन्मूर्च्छित होते हुए स्वामी को देखकर एक सेवक ऐसा मानता है मानों उसे सुख का खजाना मिल गया हो। उसकी आंतों को तोड़ता हुआ गृद्ध भी इस प्रकार के दुःख में लीन सेवक के द्वारा हटाया नहीं जाता कि युद्ध में शिर भी दिया तो भी स्वामी की कृपा का ऋण शेष ही रह गया। जिसके पेटकी आंतें तक भी सांकलों से जकड़ी गयी हैं, इस प्रकार विदीर्ण शरीर होकर किसी भटका कबंध (धड़) गिर पड़ा। (जिसने) हृदय से साथ–साथ अपना शिर भी स्वामी के लिए समर्पित कर दिया, और मांस सौ–सौ टुकड़े करके मांसभोजियों अर्थात् राक्षसों के लिए दे दिया, जीवन सुररमणियों के लिए, तथा पृथिवी के लिए अपना वर्ण अर्थात् यश गाथा प्रदान कर दी। ऐसे पदाति के समान अन्य कौन हो सकता है? गंदन (स्वयं के द्वारा मारे गये)

हाथी के सूंड में फंसी हुई , पैर हाथी के पांव तले कुचले हुए, उरस्थल, शिर व संपूर्ण शरीर चूर चूर किया हुआ। ऐसी स्थिति देखकर (प्रियतम के) साथ में मरने की भावना से आयी हुई सुभटप्रिया पहचान नहीं पायी कि प्रिय कौन है? और शोक करती हुई बैठी रही ॥8॥

दोनों सेनाएं घमासान रूप से जूझ रही थीं। दोनों सेनाऐं युद्ध में समान बलवाली थीं। दोनों सेनाओं में शूरवीर परस्पर की ओर बढ रहे थे। दोनों सेनाऐं तूरों के रव से भयानक हो रही थीं; एवं दोनों सेनाओं के योद्धा परस्पर के ध्वज व छत्रों को भग्न कर रहे थे; तथा पौरुष का अवलंबन लिये हुए थे। दोनों पक्ष आयुधों से विदीर्ण हो रहे थे, और दोनों ही रणदेवता के लिए बलि चढ़ रहे थे। दोनों सैन्य बार बार परस्पर संघट्टन कर रहे थे, व कायर लोग बार बार फूट रहे थे, अर्थात् तितर-बितर होकर भाग रहे थे। बार बार हस्ती जर्जर हो रहे थे, व घोड़े उत्तेजित। बार बार शरीरत्राण (रक्षाकवच) काटे जा रहे थे, एवं (मृत वीरों को स्वर्ग ले जाने के लिए देवों के) विमान उपस्थित हो रहे थे। बार बार रुधिर के प्रवाह में तैरते हुए लोग मरते समय मूर्च्छित हो रहे थे। बार बार राक्षस आमिष एवं वसा को निगल रहे, तथा रक्त पी-पीकर प्रसन्न हो रहे थे। पुनः-पुनः झरती हुई लोहित-सरिता के घोड़ों व हाथियों के अस्थिनिर्मित शिलातटों पर सेनाओं के द्वारा अनेक प्रकार का चातुर्य प्रकट करते हुए; अपने स्वामी का पराभवपट धोया जा रहा था ॥9॥

इस प्रकार के उस दुर्द्धर व भीषण रण में जहाँ कि बड़े भारी नाद के साथ किये हुए आघातों से शस्त्र टूट गये थे, और जहाँ कि सुमट-समूह के (कटे हुए) बाहुदंड व तुंड बिछे हुए थे, तथा जहाँ योद्धाओं की कटी हुई जांघ व बाहू शंका (भय) उत्पन्न करते हुए घूम रहे थे, और जहाँ सूंड कटा हुआ कोई हाथी प्रचंडता से विह्वल एवं भयानक हो रहा था, तथा अपने सूंड की निकली हुई आंतों का शेखर बनाये हुए था, और जहाँ कि रुधिर पंक में चक्का फंस जाने से रथ ठहर गये थे, तथा मूर्च्छित होकर पड़े हुए योद्धाओं का मर्दन हो रहा था, ऐसे उस महा संग्राम में वे दोनों ही विद्याधर, दुष्टों का दमन करने

वाला गगनगति और (दूसरा) रत्नचूल (रत्नशेखर), मिलकर हाथियों के समान बद्धमूल होकर अर्थात् जमकर भिड़ गये। वे दोनों ही प्रवर बिद्याओं के धारक थे , और (विजय) लक्ष्मी पर इस प्रकार अपना लक्ष्य दिये हुए थे जिस प्रकार नखोंरूपी खड्ग से युक्त वह मृगेंद्र जिसने गर्जेन्द्र को मार डाला है। फिर सुप्रमाण (सुनिर्मित)उत्तम विमानों से निकट आकर दोनों ही मेरू के समान धीर वीर परस्पर आघात करने लगे। यम के समान रत्नशेखर ने (गगनगति पर) प्रहार किया और शत्रु को वंचना देते हुए उसका खड्ग खंडित कर डाला। इस प्रकार शत्रु को शस्त्र रहित खाली हाथ देखकर, अपनी जय मानते हुए जब तक कि वह पुनः आघात करे, तब तक गगनगति ने उस खड्ग के टुकड़े को छोड़कर, एक प्रचंड मुद्गर पाकर, उसे स्थिर हाथों से घुमाकर रत्नशेखर के शीघ्रयान पर प्रहार कर दिया, तो ध्वजा को गिराता हुआ वह विमान खड़-खड़ करता हुआ नष्ट हो गया। तब नभस्थित मणिशेखर ने पैनी धारवाले तलवार से शत्रु के वक्षस्थल को चीरता हुआ प्रहार किया। आघातों से गगनगति विकलमति अर्थात् विह्वल और लहुलुहान शरीर हो गया, तथा संध्या के समय अपने विमान में बैठा हुआ वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा अस्ताचल पर सूर्य ॥10॥

रत्नशेखर घायल शरीर (व्रणितगात्र) होकर अपने कृपाण सहित, आकाश से भूमि पर आ गया। इसके अनंतर पदातियों ने अपने स्वामी को देखकर अपनी सेना में ले जाकर स्वागत किया। वहाँ स्मरण करने से कवच व शस्त्रों से युक्त हाथी उपस्थित हुआ, और विद्याधरपति (रत्नशेखर) शीघ्र उस पर चढ़ गया। उस समय मृगांक राजा ने अपने क्षोभरहित महावत से पूछा-आकाश से दर्पपूर्वक युद्ध करके आने वाला यह कौन है? तब सवार (महावत) ने कहा-देव! विज्ञापन करता हूँ कि यह जो हत-विमान होकर भूमि पर आया है, वही तो हमारा शत्रु खेचरराज रत्नशेखर है, और वह दूसरा अवसर तथा वृत्तांत जानकर तुम्हारा साला गगनगति आया है। वह निर्दय प्रहारों से विदीर्णशरीर होकर विमान में मूर्च्छित पड़ा हुआ दिखाई देता है।

महावत ने जो कहा उसे सुनकर और स्वजन (गगनगति) को जानकर आकाश की ओर आंखें उठाये हुए मृगांक ने विशेष रूप से (उसके लिए शुभ) कामना की ॥11॥

इस बात को जानकर (गाढ़) स्नेह वश राजा मृगांक ने गगनगति की इस प्रकार प्रशंसा की-इसके समान दूसरा कौन मेरा बंधु है? महान आपत्ति में कौन कंधा (सहारा) देता है, घनी छाया से युक्त उत्तम वृक्ष फलहीन होने पर भी कार्यार्थी विट के लिए सफल नहीं होता? जिसका अपने हृदय के जैसा मित्र नहीं है, उसके लिए राज्य केवल एक रज्जू बांधने का ही निमित्त है। सुहृदय के ऊपर किये हुए प्रहार के दु:ख को नहीं सहते केरलनृप ने अपने गर्जेंद्र को प्रेरित किया; और वापिस आओ! वापिस आओ! कहकर रत्नचूल को आह्वान किया। अरे! अरे! तूने बड़ा कलह का कारण बढ़ा रखा है। जिस स्थान से समुद्र पार किया उस स्थान पर तूने देश को विंध्वस करके अपना रौद्ररूप दिखलाया। तू अध्यवसाय करके (अर्थात् बलपूर्वक) मुझसे राजकुमारी को मांगता है, ले! मेरा प्रहार ले! इससे मैं तेरी मृत्यु कर डालता हूँ। ऐसे कटुवचनों से बिंधकर ध्वजा उड़ाते हुए अपने मातंग को प्रेरित कर वह खेचर (रत्नशेखर) (मृगांक राजा से) भिड़ गया। उस समय उन दोनों को एक दूसरे पर झपटकर भिड़े हुए देखकर, रथ, हाथी और तुरंगों से संकीर्ण दोनों सेनाएं निर्मल चातुरी करके युद्ध छोड़कर अलग-अलग हट गयीं ॥12॥

तब उन दोनों राजाओं ने हाथी पर स्थित होकर चाप चढ़ाये हुए (एक दूसरे पर) धावा बोल दिया। वे दोनों ही प्रचंड बल को धारण करने वाले केशरी के समान विक्रम में श्रेष्ठ युद्ध के रसिक व अनेक संग्रामों के भार को खींच लेने वाले थे। वक्षस्थल रणांगन (युद्धभूमि) के साथ विलास करने वाले थे, और उनके सुंदर मुखों का तेज पूर्णचंद्रमा के समान था। उन्होंने डोरी की टंकार की, व उस पर बाण चढ़ाया एवं बैरियों को डराकर (बाणों से) प्रचंड मार करने लगे। दोनों ही निष्ठुर चित्त होकर अपने अधरों को (क्रोध

से) काट रहे थे, वह सूर्य की किरणों से पसीने से सिंच गये थे। परस्पर क्रुद्ध हुए वे दोनों एक दूसरे को तृण के समान गिन रहे थे, तथा धराधर अर्थात् पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत के समान धीर एवं विजयाभिप्राय (अर्थात् विजय प्राप्ति) के लोभी थे। उनके आघात-प्रत्याघातों से दोनों सेनाएं भयभीत हो गयीं, और गगनांगन में देव भी दूर हट गये। न जाने इनमें से कौन विजयी होगा, इस प्रकार के संशय में पड़ी हुई सुंदर आँखों वाली विजयलक्ष्मी दोनों के मध्य में से किसी को भी नहीं छू रही थी। सैकड़ों आयुध, ध्वजा पताकाऐं, कवच और शिरस्त्राण खंड-खंड हो गये। दोनों ही समान रूप से बलशाली, बिलकुल अकेले-अकेले अपने-अपने शरीर के प्रति बिलकुल निःसंग भाव से युद्ध में डटे रहें ॥13॥

जब खेचर जीत नहीं सका तो उसने माया युद्ध का प्रसार कर दिया। बादल, आंधी, धूल और दावानल (सब एक साथ) जल के प्रसार युक्त प्रलय जलधि के समान गर्जन करने लगे। रत्नशेखर ने विद्याबल से अंधकार उत्पन्न कर दिया; और तीव्र आताप (दाह) से सारे भुवन को संतप्त कर डाला। आकाश गड़गड़ाने लगा और धरणीतल फटने लगा, जिससे (पृथ्वी को धारण करने वाले) कूर्मका का पीठरूपी कड़ाह उलटने लगा। पैंतरा देकर उसने बलवान मृगांक राजा को तो पकड़ लिया और उसके हाथी को घायल कर दिया। इस प्रकार उत्कट साहस के द्वारा उस भटशार्दूल रत्नशेखर ने मृगांक राजा को बांध लिया। फिर उसको उठाकर (अपने) हाथी पर डाल लिया, और अपने भुजबल की श्लाघा करके तुरंत (वंहा से) चल पड़ा। छावनी के बाहर इस प्रकार युद्ध हो रहा था, फिर भी सुभटों का चित्त (अपनी-अपनी) विजय की आशा नहीं तोड़ (छोड़) रहा था। और इधर छावनी के भीतर स्थिर भुजबलशाली व खड्ग और फलक (ढाल) को धारण करने वाले उस कुमार के द्वारा उस महायोद्धा सुभट के सन्निकट जो अष्टसहस्र विद्याधर आकर भिड़े, वे सबके सब युद्ध करते हुए पैनी तलवार के आघातों से आहत करके दिशाओं में घुमा दिये गये (अर्थात् चारों ओर भगा

दिये गये व तितर बितर कर दिये गये)। उनके पैर काट लिये जाने से (बाहर निकली हुई) आंतों के गुल्फ बन गये, और विद्याधर सैनिक वसा एवं नसों कर्दम में निमग्न कर दिये गये। सभी रुधिर के रंग से रंग दिये गये, तथा खेचरों के कबंध (धड़) रूपी भृत्य नचा दिये गये। वे रणभूमि की शय्या पर सुला दिये गये, एवं भटों की सैकड़ों सीमंतिनियाँ रुला दी गयीं। जिस प्रकार हारते जाने से जूए के फलक पर निरंतर बढ़ती हुईं ऋणसूचक संख्याओं को सब्याज चुकाकर खड़िया से मिटा दिया जाता है, उसी प्रकार रणभूमि रूपी फलक के समान विशाल (महान्) और निरंतर अंकों वाले अर्थात् सतत बढ़ते हुए स्वामी के ऋण को वीरों ने सब्याज चुकाकर शत्रुभटों की (उनकी मार-मार कर छीनी हुई) तलवारों रूपी खड़िया से घिस दिया (अर्थात मिटा दिया) ॥14॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर-कवि द्वारा विरचित 'जंबूस्वामी चरित्र' नामक इस श्रृंगार वीर-रसात्मक महाकाव्य में दोनों सेनाओं का संग्राम नामक यह षष्ठ संधि समाप्त॥

संधि-7

जिनके मुख प्राचीन कवियों के काव्यामृत से अतिशय भरे होने से, उनकी रसनाओं का रुचि भंग हो गया है, ऐसे सज्जनों के (स्वाद को बदलने के) के लिए मेरे द्वारा भी आर्द्रक (आदी) के फूल की कली के समान भिन्न व चटपटे से युक्त यह काव्य रचा गया ॥1॥ जिस श्रेष्ठ कवि के हृदय में अर्थानुरूप भाव प्रतिस्फुरित होता है, और जिसकी नितांत ललिताक्षरों से परिमित (निर्मित) वाणी से अर्थ स्फुट होता है (अर्थात् स्पष्टता से प्रकट होता है), उसके लिए नमस्कार है ॥2॥ (काव्य में) अति ऊँचा भाव (स्थापित करना) बहुत दूर (दुष्कर) होता है, अर्थ का सुंदर (व सुकोमल और चतुर) मंडन और भी दूर (दुष्करतर) होता है, इन दोनों को प्रकट कर (अर्थात् अति ऊँचा भाव और अर्थका सुंदर कोमलकांत पदावली से मंडन करके) कथा कहने की वह कोई अन्य ही (अद्भुत) विद्या है ॥3॥

इस प्रकार खेचर सैन्य को मारकर गिरा दिया गया, यह सुनकर सब विद्याधरों में से वहाँ कोई भी स्थित सत्व अर्थात धैर्य को स्थिर रख सकने वाला दिखाई नहीं दिया। अपनी तलवार रूपी दाढ़ में पकड़कर (विद्याधर) लोगों को मारकर, प्रलयकाल के समान वह बालक वापिस लौटा। ॥4॥ जब तक जंबूकुमार स्कंधावार को पार करके जा भी नहीं पाया, तब तक उसने रण में विजित हुए सैन्य को देखा। वहाँ रुधिर नदी के स्रो में छत्र तैर रहे थे, तथा मथित हुए मांस और वसा के प्रवाह (झरने) झर रहे थे। भूत पिशाच संतृप्तचित्त होकर आनन्द मना रहे थे, और सैकड़ों डाकिनियां व बैताल उछल कूद मचा रहे थे। श्रृंगाली, चील, गिद्ध और वायस (कौवे) मंडरा रहे थे, व मक्खियों के झुंडके झुंड भिन भिना रहे थे। कहीं कोई भट अपने शरीर को पसारे पड़ा था, जिसके अवयव मुद्गर के प्रहार से आहत होने पर भी विकृत नहीं हुए थे। उसके सुदृढ़ लकुटियुक्त हाथ को देखकर काक समूह पास में नहीं आता था। कोई भट आँखों को भयानकता से फोड़े हुए पड़ा था, उसे जीवित समझकर सियार भयभीत हो रहा था। कहीं किसी भट के मणिवलय

युक्त हाथ को काटकर चबाती हुई श्रृगाली के दांत ही टूट गये थे। वहाँ कोई डाकिनी मनुष्यों की वसा तथा श्रृगाली के मुखानल के समान लाल लाल रसाओं (रक्तवाहक धमनियों) को से रही थी (अर्थात् खा रही थी) कहीं पर विदीर्ण कुंभस्थलों से शंका (भय) उत्पन्न करने वाले तथा सूंड कटे हुए हाथियों के धड़ पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। कहीं पर जिनके श्रेष्ठ पर्याण (पलान) जुदा हो गये थे, ऐसे घोड़े सवारों सहित मरे पड़े थे। कही पर भग्न-धुरा और टूटे हुए जूएवाले लाखों रथ उलटे हुए एवं हेति नामक शस्त्र पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। तब वह चरम शरीरी (इसी जन्म में निश्चय से मोक्ष जाने वाला) कुमार सोचने लगा-किसने ऐसा युद्ध किया है, जो हाड़ों व रुंडों (धड़ो) के विस्तार से युक्त होने से ऐसा लग रहा है, मानों यह वैवस्वत (यमराज) का हाडों व रुंडों से वैभवशक्ति, भयानक एवं बहुत अधिक रक्तरूपी रस से युक्त भोजनगृह ही हो॥1॥

जाते हुए उसने समरांगण में दूर से ही बहुत प्रहारों से घायल हुए वाहनों (हाथी, घोड़े आदि) वाली दोनों मृतप्रायः (मृतशेष, मृतकशेष) सेनाओं को देखा, (और देखा कि) एक सेना में विजय (सूचक) शब्द सुनाई पड रहे थे, दूसरी ओर हाहाकार का निनाद हो रहा था, एक सेना में मंगलतूर्य बज रहा था, दूसरी ओर लज्जापूर्वक रोया जा रहा था; एक सेना में छत्र लगाये जा रहे थे, दूसरी ओर संवलित किये जा रहे थे; एक सेना में ध्वजाचिह्न उड़ रहे थे, व दूसरी ओर पृथ्वी पर गिरे हुए थे जब तक कि वह विस्मित चित्त से यह सब देख ही रहा था, तब तक विमान सहित गगनगति आ गया। विजयश्री समवेत जंबूकुमार रिपुओं के रुधिर कणों के छींटों से युक्त दिखाई दे रहा था। तब सर्षप (सरसों) के समान नील शोभावाले तलवार से युक्त वह विद्याधर (इस प्रकार) कुमार के वर्णन (स्तुति) में लग गया-धन्य हो कुमार! तुम धन्य हो! तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन अकेला ही अनेक खेचरों का दमन करने वाला है? नखों के पराक्रम से युक्त एक केशरी ही श्रेष्ठ है, महान गर्जन करने वाला हाथियों का मेला (झुंड) नहीं। गगनमें प्रवाहमान एक दिनमणि(सूर्य) ही श्रेष्ठ है, खद्योतक कीड़ों का बहुत बड़ा समूह नहीं। बढ़ा

हुआ एक बड़वानल ही श्रेष्ठ है, रत्नाकर (सागर) का अतिशय जलसमूह नहीं। झपट मारने वाला एक गरुड़ ही श्रेष्ठ है, महाफणाटोपवाला विषधर समूह नहीं। तुमने अष्ट सहस्र विद्याधरों को रण में अकेले ही मार डाला। हम लोग कापुरुष हैं, हमारा ऐसा ही बल है जिससे ऐसी अवस्था (पराजय) को प्राप्त हुए (अथवा हम लोग कापुरुष हैं, जो एतद्सदृश बलवान् होते हुये भी ऐसी अवस्था को प्राप्त हुए) ॥2॥

दूत रूप में तुम्हारे आलाप (कहा-सुनी) से युद्ध प्रारंभ हुआ देख, और रिपुसभा में प्रहार का डंका बजते हुए देखकर जब गुप्तचरों ने यह मृगांक को बतलाया , तो वह भी संनद्ध होकर निकला। अथानंतर लड़कर सेनाऐं भिड़ी, शोकाग्रस्त हुई, छिन्न भिन्न हुई और काटी गयी। मैंने रण में रत्नशेखर से भिड़कर मुद्गर से उसका विमान तोड़ डाला। उसने भी तलवार के आघात से मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया और युद्ध करते-करते ही मुझे मूर्च्छित कर दिया। मृगांक भी उसकी भर्त्सना करके उससे भिड़ गया। माया युद्ध से (उसको) पराजित करके (यह रत्नशेखर) उस महानुभाव को बंदीगृह में ले गया। यह शत्रु सेना में विजय का उत्साह दिखाई दे रहा है, और इधर हमारी (सेना की) पंक्ति शोभाहीन दिखाई देती है। नायक के बिना योद्धा क्या करें? तुम्हारे (छावनी के) भीतर युद्ध करते समय, (छावनी के) बाहर रण में इस प्रकार का वृतांत घटित हुआ। इस अवसर के लिए हे धीर व हितपरायण हृदय वाले कुमार! तुम्हें छोड़कर (अब) हम लोगों के हृदय का आश्रय और कौन हैं? लोक के सारभूत (लोक में श्रेष्ठ) हे कुमार! अब यह समझिए कि यही तुम्हारे सुभटत्व (को प्रगट करने) का अवसर है । बड़ी आशा से कार्य (प्रयोजन) बतलाकर तुम यहाँ लाये गये हो, तो हे सफल मनोरथ (कुमार) ? ! अब तैयार हो जाओ। अधम बैल डर लेकर (अर्थात डरकर) भार को भग्न करके (अर्थात् कार्य नष्ट करके) भाग गया। हे धुरंधर नरवृषभ! (अब)तुम्हीं उसका उद्धार करो, और कार्य विनष्ट हुआ देखकर, हे बांधव! जैसा समझो वैसा करो ॥3॥

नखरूपी वज्र से विदीर्ण किये हुए मदमाते हाथियों के उत्तंग कुंभस्थलों से गलित रुधिर लिप्त मुक्ताफलसमूह से विस्फुरायमान कपिल केशर कलाप जिनके स्कंधप्रदेश पर लहराता है ऐसे सिंह तभी तक दहाड़ते हैं जब तक कि शलभ को नहीं देखते ॥1॥ अपनी गृहिणी के वासगृह में बैठे हुए लोगों के द्वारा बहुत भटजनोचित संभाषण (कथन) किये जाते हैं (अर्थात् पत्नी के सामने सभी लोग अपनी बहादुरी का बड़ा बखान करते रहते हैं) परंतु ऐसे लोग निश्चय से अति विरले होते हैं जो सुहृद् के कार्य को संपन्न करते हैं ॥2॥ दूसरे के कार्य भार के धुरे अर्थात् जूए को धारण करने से उसके गुरुतर घर्षण से जिनके बलिष्ठ कंधे किणयुक्त (चिन्हांकित) हो गये हैं, ऐसे लोग जगत में दो ही तीन हैं, अथवा अकेला तू ही है॥3॥ इस प्रकार खेचर के कहे हुए कथांतर (वृत्तांत)को सुनकर जंबूस्वामी रोषपूर्वक हाथ में तलवार उठाये हुए बोला-काल के ग्रास (मुख) में आने पर कौन जा सकता है? देवताओं के हाथी (ऐरावत) के दांतों से कौन झूल सकता है? यम के तुलादंड में अपने को कौन तौल सकता है? आक्रमण करते हुए सिंह के साथ कौन क्रीड़ा कर सकता है? विष फल को अपने मुँह में कौन चबा सकता है। हरि के नाभि कमल को कौन तोड़ सकता है। त्रयक्ष (त्रिनेत्र महादेव) के वृषभ के सींग को कौन भग्न कर सकता है? (और) मृगांक को बंदीगृह में रखकर मुझसे युद्ध करके निमेष मात्र भी कौन जीवित रह सकता है? कुमार के इस प्रकार गर्जना करने पर गगनगति ने (अपनी) सेना में चीरांचल (युद्ध सूचक झंडा) घुमाया और स्वामी के पराभव से बैचेन सेना के लिए घावपर नमक छिड़कने के समान तिलमिलाहट उत्पन्न करते हुए युद्धाशय को प्रकट करने वाले स्वर से सेना को ललकारा तथा प्रहारों से विदीर्ण हुआ सारा सैन्य शीघ्र दौड़कर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँ प्राप्त हुआ। जो सैन्य केवल जीवित (श्वासोच्छवास) मात्र शेष हुआ मरे जैसा पड़ा था, वह कुमार को देखकर उद्दीपित (उत्साहित) हो गया और स्वयं की विजयाशा से आश्वस्त मानों पुनरुज्जीवित हो उठा ॥4॥

चंद्रमा के समान धवल एवं विस्तीर्ण यश वाले सैन्य के पुनः चल पड़ने पर उस संग्राम (स्थल) में जहाँ कि वीर रस से भरे हुए भटों के फूटे

हुए व्रणों से वसा एवं रस अर्थात् लोहू बह रहे थे, और जहाँ कि हाथियों के गंडस्थलों से थोड़ा-थोड़ा मद चू रहा था, एवं आकाश पथ (गामी) अर्थात् वायु से आहत होकर चंचल ध्वजपट फहरा रहे थे, और जहाँ कि चरणों के भार से दलित हुई रणभूमि दम-दमा उठी थी, तथा जहाँ (घायल) भटों के आपस में टकराते हुए मुकुट , सिर व उरस्थल और पैर कड़कड़ा रहे थे, वहाँ वर्म एवं कवच युक्त श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर हाथों में शस्त्र धारण करके युद्ध (स्थल) का पूरा चक्कर लगाकर जिनमती का पुत्र (जंबूस्वामी) (एक स्थान पर) खड़ा हो गया। (युद्ध के लिए उद्यत) प्रबल सेना को देखकर, प्रलयंकर रौद्ररूप वैवस्वत (यमराज) के समान भयानक वह खेचरपति रत्नशेखर वापिस लौटा और रण में भिड़ गया। दोनों सेनाओं के मिलने (भिड़ने) से जलचर समूह क्षुब्ध हो उठा और जलनिधि का जल अपने मर्यादा तट का उल्लंघन करके झलझला उठा। तुरग, हस्ति, सुभट, रथ और चमचमाते हुए कांतिमान शस्त्रों से कलकल (कोलाहल) युक्त होता हुआ वह युद्ध पुनः त्रिभुवन को लीलने लगा। प्रभु के फलों अर्थात कृपा पूर्वक किये गये उपकारों का स्मरण करके अपनी कुल परंपरागत चतुराई (युद्ध कौशल) को प्रकट करते हुए, कलिकाल एवं कृतांत के समान गर्वीले तथा जयलंपट (विजयलिप्सु) वे दोनों सैन्य पुनः भिड़ गये ॥5॥

तब वहाँ महान सैन्य युद्ध हुआ। जूझते हुए पदाति कुंत, खड्ग, वावल्ल (बल्ल ?) भाले, सब्बल और मुसुंढि नामक शस्त्रों से एक दूसरे को मारने लगे। एक दूसरे को देख-देखकर रुष्ट हुए, एवं (शत्रु पक्ष के) महावतों को मारकर रिक्तहौदे वाले मत्तमातंग परस्पर भिड़ गये। हाथियों के दांतों की टक्कर से उठते हुए अग्नि के स्फुलिंगों से सुरवधुओं के विमान पिंगल वर्ण हो गये। सुरवधुओं के विमानों से आच्छादित गगन में दूर जाते हुए विमानों से नोक टकराकर वीरों के करवाल खड़खड़ा उठे। वीरों के करवाल से विदीर्ण किये जाते हुए हाथी, घोड़े और सुभटों के शरीर से बड़ा भारी कल्लोल करता हुआ रक्त का झरना बह निकला। रक्तवाहिनी के वेग से प्रवाहित होकर ले जायी जाती हुई कात्यायनी देवी के विशाल करतल स्थित कपाल कोष्ठ

(खोपड़ी) से लगकर एक भयानक अग्निमुख वैताल दौड़ पड़ा। बैताल के छोड़े हुए कठोर व उत्कट अट्टहास से संत्रस्त होकर भागते हुए भयानक हाथियों के समूह के पैरों से कुचले जाने से बचते हुए सैन्य के कोलाहल से दिगंत भर गये। दिगंत में फैलते हुए अश्ववारों के चंचल तलवारों के त्रास से भागते हुए कायरों को देखने के लिए श्रेष्ठ सुभट उत्साहित हो उठे। श्रेष्ठ सुभटों के हाथों में घूमते हुए लकुटिदंड के प्रहार से चूर चूर होते हुए नर कपालों से बड़ा कटुक डक्कार शब्द उत्पन्न होने से कापालिकों का समूह झूरने लगा। और कापालिक समूह के हाथों की कैंची द्वारा (अपने केशादि) काटे जाने से कटाक्षयुक्त सुरसुंदरियों द्वारा संरक्षित (मृत) सामंतकुमार (मानो स्नेहभरे) नेत्रों को ऊंचा करके सुरसुन्दरियों की ओर देखने लगे। सामंतकुमारों के पूर्व में दिये हुए सम्मान व दान से भरपूर, लटकते हुए केशोंवाले और कछौटे पर हाथ देकर स्वामी के प्रांगण में बड़ी-बड़ी बातें मारने वाले कायरों का समूह भाग पड़ा, और कायर समूह के भागने से परितुष्ट हुए , पहले सम्मान व दान प्राप्त नहीं करने वाले, तथा अपमानित होकर भी डटकर युद्ध करते हुये भृत्यों के द्वारा अपना विशेष नैसर्गिक शौर्य प्रमाणित किये जाने पर उनके ठाकुरों के हृदय में (पश्चात्ताप रूपी) शल्य उत्पन्न होने लगा।

चिक-चिक-चिक ने कीचड़ में चक्का फंस जाने से भार से भरी हुई गाड़ी के रुक जाने पर श्रेष्ठ वृषभ का अपमान करके, रे धनिक जब तक तू अधम बैलों पर अनुराग करता है- ॥1॥ (तबतक) अधम और कबरे बैलों के प्रतिपालन में लगा (तुझ जैसे) गृहपति का (परिचारक) वर्ग श्रेष्ठ वृषभ (धवल) के द्वारा भार निर्वाह करने (की क्षमता) को न जानता हुआ, उसे हृदय से भी भुला देता है॥2॥ परंतु आपत्ति के समय अधम बैलों के द्वारा चीत्कार करके कंधे को गिराकर भारमुक्त हो जाने पर उसी धवल के द्वारा लीलामात्र में (क्षणभर में) इस तरह भार खींच लिया जाता है, जिससे कि पृथ्वीपति (कुस्वामी) का हृदय खिल उठता है ॥3॥ जो धवल बिलकुल अधम बैलों को पालने वाले प्रभु के अपमान को नहीं मानता (अर्थात् अपने पूर्वकृत अपमान को ध्यान में नहीं रखता, और संकट में धुरा को धारण करता

है, उसे पुनः पुनः नमस्कार ॥4॥ अधम बैल के साथ जोड़े जाते हुए धवल ने अपने पार्श्व को देखा और सोचा कि भारी बोझ को खींचने में यह अधम बैल वास्तव में मेरा प्रतिभार (अतिरिक्त बोझ) मात्र होगा ॥5॥ भार से अधम बैल वाला एक चक्का रुक जाने पर धवल अपने हृदय में झूरने लगा–हाय! मैं ही खंडित करके दोनों दिशाओं (पार्श्वों) में क्यों नहीं जोत दिया गया? ॥6॥ जिस धवल के द्वारा भार धारण (वहन) करने के हेतु खुरों से आहत मार्ग में भी समुद्र (होने) की शंका धारण की जाती है, वैसे धवल की स्पर्द्धा करने से अधम (गर्रा) बैल निश्चय से मरता है ॥7॥ रे शशधर! यदि तू हरिण के स्थान में सिंहशिशु को धारण कर लेता तो उस (सिंहशावक) के जीते हुए सहु के लिए तेरा मर्दन करना (ग्रास लेना) दुष्कर होता ॥8॥

तब वहीं पास में विकट (विशाल) वक्षस्थल वाले मणिशेखर को देखकर बालक ने व्यंग्य किया–वहाँ, उस समय सभास्थल के युद्ध में तू चूक गया (बच गया), अब बिना मारा हुआ (अर्थात् मृत्यु से बचकर) कहाँ जायेगा? ॥6॥

अरे रे! तू जो मेरे साथ युद्ध छोड़कर भाग गया, वही तो तेरा (वीरता का) प्रमाण मिल गया। तूने अष्टसहस्र शस्त्रधारी श्रेष्ठ विद्याधरों को तो मरवा डाला, और यहाँ आकर दूसरों को लड़ाकर दोनों सेनाओं को क्षत्रियहीनता को प्राप्त करा दिया, गगनगति के उरस्थल पर खड्ग से प्रहार किया, और मृगांक राजा को बंदीगृह में ले गया, इस बहादुरी से तू बड़ा गर्वित है। पर इतने से मैं तेरी शूरता नहीं मानता! यदि तेरे शरीर में युद्ध का गर्व है तो सारी सेना देखती बैठी रहे, तेरा मेरा संग्राम हो, और बेचारे ये साधारण (सैनिक) लोग अब (व्यर्थ) न मरें। इसका अनुमोदन करके खेचरराज बोला–सैन्य शक्ति से क्या? और बहुत प्रलाप करने से क्या? यहाँ मेरा ऐसा प्रताप है कि मैं मनुष्यगति (लोक) में असाध्य साधन कर सकता हूँ। मेरे कुपित होने पर युद्ध में देव भी तुच्छ हो जाते है, फिर तेरी तो गिनती ही क्या? तू तो अभी कुमार ही है। (इसके) अनंतर आज्ञाकारी प्रतीहारों के द्वारा परस्पर वैरबद्ध दोनों संनद्ध सेनाओं को बड़ी कठिनाई से युद्ध निवारण करके दूर हटा दिया गया ॥7॥

को मारना स्वभाव ही होता है, उसी प्रकार उस लौहमय तीक्ष्णता से शरीर को बींधने के स्वभाव वाली, धनुष से च्युत तथा शत्रु को मारने के स्वभाव वाली उस बाणवलि को बालक ने आकाश में छोड़े हुए अपने बाणों से उसी प्रकार छिन्न भिन्न कर दिया, जिस प्रकार गरुड़ सर्प पंक्ति को कर देता है। तदनंतर प्रत्यंचा पर संधान करके समर्थ भुजावाले उस विद्याधरों ने आग्नेय बाण छोडा। वह बाण अपनी धूम्राकुल-श्यामल ज्वालाओं से दोनों सेनाओं को जलाता हुआ दौड़ा। उसी समय गगनगति ने बालक को शुभ व दिव्यशस्त्र प्रदान किये। तब कुमार ने वारुणास्त्र छोड़ा। उस शर के प्रभाव से एक बड़ा मेघसार्थ (समूह) आकाश में उन्नत हुआ, जिसने सूर्य को आच्छादित कर लिया, विद्युत कड़कने लगा, और मयूर नाचने लगा। बहुत भारी जलधारा समूह बरसने लगा, और आंनदित दर्दुरों का (टर-टर) रव व्याप्त हो गया। प्रचुर पानी को वहन करने वाला वह मेघसमूह (वर्षा करने से) तब तक नहीं रुका, जब तक कि अग्नि पूर्णरूप से शांत नहीं हो गयी। तब बालक ने पुनः शत्रु को आह्वान किया- यदि शक्ति है तो अपने शरासन (धनुष) को बचाओ! अरहदास के उस पुत्र ने जो हाथी के सूंड के समान भुजाओं वाला था, शत्रु के पकड़ते पकड़ते और (उनकी रक्षा के लिए जंबूस्वामी पर) प्रहार करते करते भी, उसके महावत (ध्वज) चिन्ह एवं धनुष को तोमर के आघात से भूमि पर गिरा दिया ॥9॥

तब विद्याधर ने दृढ़ता से अधरों को काटकर, अपने हाथ के टूटे हुए धनुषदंड और शस्त्र को देखकर, चक्र हाथ में लेकर, आसन जमाकर (अर्थात् निशाना साधकर) उसे जैसे ही छोड़ा वैसे ही बालक ने शत्रु का प्राणहरण करने वाले कर्णिका नामक बाण से चक्र को बीच से खंडित कर आधे को तो टुकडे टुकडे कर दिया और आधे को हथेली पर रख, नभस्तल में घुमाकर छोड़ दिया। कुमार के द्वारा वैरी का निवारण करने के लिए अत्यंत बलपूर्वक प्रहार करने पर वह चक्र (शत्रु के) हाथी पर ऐसा गिरा, जैसे पर्वत पर वज्र। प्रहार से आहत होकर वह महागज चक्कर खाने लगा। दारुण चीत्कार करके गिरते हुये देखकर, उस हाथी को (अंकुश से) प्रेरित कर,

बाणों को तूणीरों में रख दिया गया, धनुषों पर चढ़े हुए गुण (प्रत्यंचा) उतार दिये गये, खड्गों को म्यानों में पिरो दिया गया, और कुंत (बर्छे) भालाघरों में रख दिये गये। तीक्ष्ण अंकुशों से श्रेष्ठ गजेंद्र साधे गये, और सुदृढ़ लगाम से (खींचकर) घोड़े हटा दिये गये। (इन सबसे) वहाँ ऐसा कोलाहल किया गया और तूर बजाये गये, मानों पृथ्वी और आकाश फूट गये हों। दूर पर स्थित दोनों घनी (विशाल) सेनाएँ चित्रलिखित सरीखी (युद्ध) दिखने लगीं। दोनों ही (जंबूकुमार एवं रत्नशेखर) श्रेष्ठ हाथियों पर चढ़कर, उन्हें प्रेरित करते हुए ऐसे शोभायमान हुए, मानों दो पर्वतों पर दो सिंह स्थित हों। खेचर ने झट धनुष को टंकारा, मानों गिरिश्रृंग पर बिजली गिर पड़ी हो। बालक ने भी चापको हाथ से आस्फालित किया, उससे सारे लोक को बहरा करता हुआ (ऐसा) निनाद प्रसृत हुआ, मानो अपने मंथन का स्मरण करने से पीडित हुए रत्नाकरने ही करुण चीत्कार किया हो। उस शब्द से भटों के प्राण गिरने (छूटने) लगे, और देवताओं के विमान (स्वर्ग से) ढुलककर (आकाश में) लटकने लगे। सूर्य व चंद्र द्रुतगति से कांपने लगे, और मंद (शांत) जलधि झुलसकर ऊपर उठने लगे। पर्वतों के शिखर कड़ककर टूटने लगे, और प्रासाद विघटित (विश्लिष्ट) होकर फूटने लगे। जिस प्रकार किसी अविवेकी कृपण जीव के द्वारा धन को हाथ से खूब दृढ़ता से पकड़कर, गुणों से सज्जित अर्थात् खूब गुणवान ऐसे बीसियों भिक्षार्थियों को भी मुंह बांका करके (बिना कुछ दिये, अपने घर से) बिदा कर दिया जाता है, उसी प्रकार उस अविवेकी खेचर ने अपने हाथ से धनुष को दृढता से पकड़कर व शरीर को थोड़ा झुकाकर, पत्रयुक्त बाणों को प्रत्यंचापर चढ़ाकर रण में बीस बाण छोड़े ॥8॥

उस बाण समूह को देखकर कुमार ने बीस ही बाणों से उसे खंड-खंड कर दिया। खेचर ने पुनः बाण वलि छोड़ी, वह जंबूस्वामी के निकट उसी प्रकार गयी, जिस प्रकार कोई असती (कुलटा) स्त्री किसी सत्पुरुष के पास जाये। जिस प्रकार किसी लोभमय (लोभी) और तीक्ष्णता से (तीखे वचनों के द्वारा दूसरों को) बींधने के स्वभाव वाले तथा धर्म से च्युत व्यक्ति का दूसरों

कोंत नामक आयुध हाथ में लेकर खेचर दौड़ा, और वेग से बालक के पास पहुँचा। विद्याधर ने कोंत फेंका, वह बालक को लांघता हुआ चला गया। तब विक्रम में श्रेष्ठ उस कुमार ने अपने समर्थ (बलिष्ठ) दाहिने हाथ से उसे पकड़ लिया, और (एकाएक) छोड़कर उसे अपने सामने पटक दिया। भाले सहित विद्याधर अपने स्थान से भग्न (भ्रष्ट) हो गया। भय से विह्वल शत्रु हाथी के कंधों पर खींचा हुआ ऐसा लगता था, मानों उसे (अन्यत्र) कहीं (शरण) स्थान नहीं मिलता। तब कुमार ने कूदकर, अपने हाथी को छोड़कर, शत्रु के हाथी के कंधे पर उड़कर (छलांग लगाकर), शस्त्र युद्ध छोड़कर, सिंह के नखों से खचित (पंजों में आये हुए) हरिण के समान शत्रु को पकड़ लिया ॥10॥

अत्यंत बलपूर्वक महान् भुजबलशाली उस कुमार ने खेचर को चांपकर (दबाकर) वस्त्र से बांध लिया, और उचकाकर (अपने) हाथी के हौदे में डाल दिया। मृगांक के बंधन छुड़ाकर उसे मुक्त किया। ऐसा देखकर अपने विमानों को निकट करके देवों ने पुष्पवृष्टि की और कुमार के जय जयकार शब्द का घोष किया। परितुष्ट हुए नारद आकाश में नाचने लगे। गगनगति को अत्यंत आनंद बढ़ा, और केरल सैन्य-स्नेह व प्रीतिपूर्वक मिला। (विजय) तूर बजाये गये, गंभीर गान किया जाने लगा, और बंदियों को वस्त्र, धान्य व धन दिया जाने लगा। खेचरजन (रत्नशेखर के सैनिक) भग्नमान हो, शस्त्रों का अवलंबन लेकर अधोमुख होकर बैठे रहे। तब गगनगति ने प्रणाम करके और उत्कंठा व आवेगपूर्वक गाढ़ आलिंगन करके मृगांक को सब वृतांत कहा-तुम्हें जीवन देने वाला यह जो (कुमार) दिखाई देता है, मेरे कहे वृतांत को निर्दिष्ट करके श्रेणिक ने आज ही इसे यहाँ भेजा है। यह नगर में भी प्रविष्ट नहीं हुआ, और न तेरे द्वारा देखा ही गया। दूत होकर शत्रु की सभा में प्रविष्ट हो गया। वहाँ हुए युद्ध में आठ हजार खेचर आक्रमण के लिए शस्त्रों सहित दौड़े और मारे गये। भीतर रिपुसैन्य को मारते हुए, इसके नहीं जानते हुए ही यहाँ तुम्हारा युद्ध हुआ। अभी तुमने जिसे युद्ध करते देखा, यह वही, खेचरों के लिए कालस्वरूप श्रेष्ठ कुमार है (यह सब) सुनकर मन में प्रसन्न होकर

केरल नृप कैसे कैसे पुनः-पुनः बधाई देने लगा और बहुत प्रणय प्रगट करके जिनमति के पुत्र को अपनी पुरी के मध्य में प्रवेश कराया ॥11॥

पत्तन मणिमौक्तिकों की सजावट से उत्पन्न किरणों से हाट शोभा दिखायी गयी। घर घर में कर्पूर की आमोद प्रस्फुरित हुई, और श्रीखंड के घने रस से छटायें दी गयीं विद्रुम के चूर्ण तथा मणिवर्णों से चौक पूरकर रंगोली बनायी गयी। प्रचुर रत्नमालाओं और कल्पवृक्षों के नये किसलयों के तोरण बांधे गये। धवल व पूर्ण कलश जो फलों व पत्रों से ऋद्धिसंपन्न, एवं दधि, दूर्वा, पुष्पों और अक्षतों से समृद्ध थे, उन्हें लिये हुए उन्नत स्तनों वाली तथा आभरणयुक्त नगर की सुंदरियों ने कुमार को देखा (स्वागत किया)। (किसी ने अपनी सखी से कहा, सखी-हे सखी! मैं मानती हूँ कि चद्रंमा के समान मुखवाली राजकन्या विलासवती धन्य है, जो शरणागत के लिए शासन (अर्थात् शरण व निर्वाहसाधन आदि सब कुछ) देने में समर्थ श्रेणिक राजा का पाणिग्रहण करेगी। ऐसे वर के लिए बलिहारी है, जिसके घर में ऐसा धीर साहसी अद्वितीय वीर पुरुष (जंबूस्वामी) विद्यमान है इस प्रकार उत्साह पूर्वक सब राजकुल में प्रविष्ट हुए, और दिये हुए आसनों पर बैठे। तब जंबूकुमार ने कलह के कारणभूत रत्नचूल को (बंदीगृह से) छोडकर उसका सम्मान किया (और कहा) -अहो खेचरपति! यहाँ (इस संसार में) गर्व किस बात का? जो आपके साथ युद्ध किया उस सबको क्षमा करें। क्षत्रिय का एक ही परम सुकर्म यह है कि युद्ध में भी अपने इस (क्षात्र) धर्म को नष्ट न होने दे, क्योंकि पीछे हटने से लोक में लज्जित होना पड़ता है, विजय और अजय (पराजय) तो दैवाधीन होती है। तो लीजिए, अपने परिजनों सहित जाइए और राज्य कीजिए! इस पर साथ में चलने को प्रस्तुत रत्नशेखर कहने लगा-हे धवल यशस्वी कुमार! मैं भी तुम्हारे साथ ही जाऊँगा और मगधराज श्रेणिक के दर्शन करूँगा। सज्जनों के हृदय में प्रेम रस उत्पन्न कर और कतिपय दिवस कृतज्ञ सुहृत् के साथ व्यतीत कर, सुंदर विमान में बैठकर जंबूकुमार गमन के लिए उद्यत हुआ ॥12॥

विद्याधर रत्नशेखर के साथ पांच सौ विमान चले। मृगांक अपनी भार्या व कन्या सहित चला। गगनगति भी उन्नत मान होकर चला। सभी विमानों सहित आकाश में दौड़ने लगे और नर्मदा के निकट कुरल पर्वत पर आये। वहाँ सुप्रमाण स्कंधावार देखकर, सभास्थल में विमान लटकाये गये। (सबने) उतरकर मुकुटबद्ध राजाओं के प्रधान राजा (श्रेणिक) का जय जयकार किया। जंबूस्वामी को देखकर मगधेश ने संतोषपूर्वक भुजाओं से आलिंगन किया, शिर चूमकर अपनी जांघों पर (गोदी में) बैठाया, और उसका मुख देखते हुए साधुवाद दिया। गगनगति ने भी जैसा उसने चाहा, वैसा युद्ध का समस्त वृत्तांत राजा को कहा–हे देव! इन मृगांक को देखिए, और यह वह कन्यारत्न है, इसे भी देखिए! यह वह विद्याधरपति आया है, जो रत्नशेखर नाम से विख्यात है तब नराधिप ने सबको जानकर संभाषण करके फिर सम्मान किया। शुभमुहूर्त में सब लोगों के नेत्रों को आनंद देने वाली मृगांक की पुत्री को राजा ने विवाह लिया। परस्पर शत्रुभावरहित विद्याधर (रत्नचूल) और मृगांक राजा, इन दोनों को किंकर (सेवक) बनाकर विसर्जित (विदा) कर दिया। गगनगति भी स्वस्थान को भेज दिया गया, और स्वयं नरपति प्रयाण करके अपने नगर को पहुंचकर, जब (भीतर) प्रवेश करने लगा, उसी समय उपवन में महामुनि दिखाई दिये। उनका नाम सुधर्मस्वामी था, और वे पांच सौ शिष्यों के साथ विहार करते हुए वहां पधारे थे। लोगों के कम हो जाने पर, राजा ने (मुनि को) शिरसः प्रणाम कर भक्तिपूर्वक वदंना की।

(अज्ञान) अंधकार का नाश करने वाले, चरमशरीरी, तथा श्री महावीर जिनेंद्र के पांचवें, अंतिम व उत्तम गणधर की राजा के निकटवर्ती अनुचरों ने स्तुति की और फिर जंबूकुमार ने ॥13॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर–कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार वीर–रसात्मक महाकाव्य में 'रत्नशेखर संग्राम' नामक यह सप्तम संधि समाप्त॥

संधि-8

आर्षप्रोक्त कथा से अधिक मैंने वसंतक्रीड़ा, हाथी का उपद्रव नरेंद्र के प्रस्थान व संग्राम का यह सब जो वृत्त कहा, उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें ॥1॥ चिंतनशील कवियों के द्वारा काव्य के अंग व रसों से समृद्ध चाहे वह घटित हुआ हो या न घटित हुआ हो, जो कुछ युक्ति-युक्त कहा जाता है, वह सब सच्चारित्र में घटित अर्थात् संभावित होता है॥2॥ समस्त काव्यरस के पूर को धारण करने में असमर्थ लोग स्वयं (काव्यगत विषयों का) वर्णन न करें, अपनी शक्ति के अनुरूप रसकणों का संग्रह करके अर्थात् काव्यों के अध्ययन का ही रस लेकर, मौन ही रहें ॥3॥ मेरे द्वारा रचे हुए नाना वर्णों व रसों के समुद्र इस काव्य के पार जाने के लिए महासंत जन (सहृदय लोग) इसमें (अभिधाशक्ति से प्रतीयमान अर्थ की अपेक्षा लक्षणा व व्यंजना शक्तियों के आश्रय से) अधिक अर्थ (विशेषार्थ) की स्थापना करें ॥4॥ अलंकार सहित काव्य रचने पढ़ने, जानने तथा अभिनय और प्रयोग करने में वीर (कवि) को छोड़कर और कौन पार पा सकता है ॥5॥

अरहदास के उत्तम आत्मा पुत्र ने भक्ति भाव से हाथ जोडकर, प्रणाम करके प्रसन्न हो, निर्मल ज्ञानचतुष्क (मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यय) के धारक उन गणधर प्रवर से पूछा- ॥1॥

'प्रभु आपके दर्शनों का हेतु प्राप्त कर मेरे मन में ऐसा विकल्प हुआ है कि आपके साथ कहीं पूर्वभव में विशिष्ट (प्रगाढ़) परिचय रहा।' इस बात को सुनकर व्रत और शील के समुद्र, विद्रुम के समान स्फुरायमान अधरमुद्रा के धारक, कुंदपुष्प के समान उज्ज्वल दांतों को ईषत् दिखलाते हुए, और वाणी से अमृत का प्रवाह सा बहाते हुए तथा पूर्वभव के कारण (संबंध) को स्मरण कराते हुए उन भगवान (मुनि) ने जंबूस्वामी को कहा-हे कुमार, मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो! यह तुम्हारा मनोभाव है, ऐसा स्पष्टता से समझो। क्योंकि जिस भव्यजीव का भवच्छेद (मोक्ष) निकट हो गया है, ऐसे विवेकवान के चित्त में सब कुछ स्पष्ट भासित होता है। यहीं इसी मगधदेश में वर्द्धमान नामका एक

भय भीतिरहित गाँव था, वहाँ एक भवदत्त और दूसरा (अपने नामके अंत में देव पद युक्त) भवदेव, ये दो दीर्घबाहु ब्राह्मण, पुत्र उत्पन्न हुए। परम महाव्रत चारित्र (मुनि धर्म) का पालन कर वे मरकर तीसरे स्वर्ग में देव हुए।

वहाँ से च्युत होकर पूर्वविदेह में वज्रदंत और महापद्म नामक राजाओं के सागरचंद्र और शिवकुमार नामक (शुभ) लक्षणों से युक्त एवं विचक्षण पुत्र हुए। वहाँ घोर पराक्रम पूर्वक तप करके वे दोनों ही ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के जलकांत नामक विमान में इंद्र की लक्ष्मी के धारक देव हुए और दस सागर की सुखकर आयु पाकर, विविध सुखों का भोग करते हुए वहां रहे ॥2॥

वहाँ दोनों ही परस्पर पूर्वभवजन्य स्नेह से भरपूर होकर रहे। वहाँ से च्युत होकर पुनः इसी भारत में हुए। अब यहीं इस सुंदर मगध देश में, जहाँ सुररमणियों के आश्वास से दिशाऐं सुगंधित हैं, जहाँ का भूमंडल जिनमंदिरों से मंडित है, और जहाँ का जल इंदीवरों के पराग रज से सुरभित है, ऐसा संवाहन नाम का नगर है, जहाँ के नागरिकों का विलास खेचरों के विलास का उपहास करता है। श्रावकों से संकीर्ण होने से वह श्वापदों से संकीर्ण वन के समान स्थित है, और नागों से अधिष्ठित पाताल के समान नागवृक्षों अथवा न्याय नीति से अधिष्ठित है। लक्ष्मणसहित राम तथा सुलक्षण रानियों को धारण करने वाले रघुकुल के समान वह नगर सुलक्षण वृक्षोसहित आरामों तथा सुलक्षणा सुंदिरयों का धारक है। जिस प्रकार आज्ञानोपदेश से परमार्थ नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार उस नगर के शत्रु नष्ट हो गये हैं। बहुत बनियों (व्यापारियों) से युक्त होने से वह बहुत अधिक पानी वाले मकरगृह (सागर) के समान शोभा पाता है। वहाँ हाटमार्ग (बाजार) मानों भारत कथा को कहता है। भारत-युद्ध में बाणों का प्रसार करते हुए गुरुद्रोण (युद्ध) व्यापृत थे, वहां के हाटमार्ग में खूब शब्द करता हुआ द्रोण नामक माप व्यापृत अर्थात् व्यवहृत होता है। कहीं पर वह केशव के चरित्र को प्रकट करता है, जिसमें केशवने अपनी भुजाओं रूपी तुला में कंस जैसे प्रधान (शत्रु) को तोला अर्थात्! विजित किया था वहाँ हाथों से तौलने वाली तुला में काँसे की बनी श्रेष्ठ वस्तुएँ तौली जाती हैं। कहीं बहुत से व्यापारियों के सार्थ व्यापार में गिरावट

(या रुकावट) जानकर इस प्रकार ठहरे हुए हैं, जैसे कि मूर्ख शिष्य पाठ में स्खलन जानकर खड़े हो जाते हैं। कहीं बासनों (बरतनों) का व्यापार करने वाले लोग, शव अशन का व्यवहार (प्रयोग) करने वाले (शव-भोजी) राक्षस समूह का अनुकरण करते हैं। कहीं अक्षरों का संग्रह अर्थात् काव्य पदों की रचना करते हुए कवि ऐसे शोभायमान होते हैं, जैसे द्यूतगृहों में पासों के रस में तल्लीन विचित्रबुद्धिवाले जुआड़ी। वहां के जिनगृहों में सद्+अर्पण अर्थात सदाचार का पालन करने वाला तथा पूज्य वचन बोलने वाले मुनींद्र सदैव दिखाई देते हैं। जिनचरणों का भक्त, समर में उद्धत बलशाली, कमलों (कुमुदों) को पूर्णतः प्रफुल्लित करने वाले, पूर्ण चंद्रमा के समान पृथ्वी मंडल के हर्ष को बढाने वाले एवं पृथ्वी के भार की धुरा को धारण करने वाला सुप्रतिष्ठ नामका राजा नगर का पालन करता है॥3॥

उसकी शुभलक्षणों की भाजन, गुरु व देवता के अर्चन में मन लगाने वाली तथा श्रृंगार के आशय की शिल्पिनी अर्थात् श्रृंगार के मर्म को समझने में दक्ष, ऐसी रुक्मिणी नामकी प्रधान रानी है। पूर्वभव में जो ज्येष्ठ (भ्राता) भवदत्त था, फिर देव फिर सागरदत्त और पुनः देव हुआ था। वह राजा की जनमान्या रुक्मिणी रानी का पुत्र हुआ। उसका नाम सौधर्म रखा गया। वह विद्याओं को जानने में श्रेष्ठ और समस्त शास्त्रों व विज्ञान (कलाओं) का धारक, तथा सज्जनों के मन और नयनों को आनंद देने वाला, एवं शत्रुपक्ष के राजकुमारों को डर उत्पन्न करने वाला हुआ। एक दिन वह शुद्धमति सुप्रतिष्ठ राजा अपनी पत्नी और पुत्र के साथ वंदना करने की भक्ति से संसार से पार उतारने वाले श्री वीरजिनेन्द्र के समोशरण में गया, उन परमेष्ठी की दिव्यध्वनि सुनकर प्रव्रज्या लेकर महामुनि हो गया। उन तप से तपाये हुए तनवाले चतुर्थ गणधर ने सिद्धिवधू में अपने विमल मन को लगाया। इस प्रकार अपने जनक को राजलक्ष्मी का त्यागी होते देख सौधर्म कुमार भी प्रव्रजित हो गया। उन दुःख का नाश करने वाले और शाश्वत सुख के पद (मोक्ष) को प्राप्त वीर जिनेन्द्र का वह पाँचवा गणधर ही मैं हूँ, और मुनिसंघ के साथ विहार करते करते इस उद्यान में आ पहुंचा हूँ। दोनों भाइयों में छोटा

जो भवदेव हुआ था, फिर देव, फिर शिवकुमार और फिर उत्तम देव हुआ। वह विद्युन्माली नामका महागुणवान् देव जलकांत विमान में चार देवियों से युक्त हुआ ॥4॥

वही तू स्वर्ग से च्युत होकर इस मनोहर सुंदर व श्रेष्ठ नगर में अरहदास वणिक् का इंद्र को भी जीतने वाला पुत्र हुआ है। पूर्व में वे जो तुम्हारी चार देवियाँ थीं, वे प्रियतम के स्वर्ग से च्युत होने की छह मास की अवधि के उपरांत पूर्वभव के स्नेह से बंधी हुई (स्वर्ग से) आकर सागरदत्तादि के उत्पन्न हुई हैं। वे चारों पुत्रियाँ विद्याओं में विमल अर्थात् विद्याओं के विमलज्ञान से युक्त, अपने चरणों की शोभा से कोमल कमलों को तिरस्कृत करने वाली, तथा अपने कर पल्लवों से रक्ताशोक को भी जीतने वाली हैं, और उनके मुख श्वास का आमोद भ्रमरों द्वारा पीया जाता है, अर्थात् भ्रमर उनके मुखों को कमल एवं उनके मुख के श्वास को कमलगंध समझकर उन पर मंडराते रहते हैं। मणिमय कुंडलों से उनका कपोलप्रदेश मंडित है और बेकाम धनुर्द्धर के अग्रिम (श्रेष्ठ) बाण ही हैं। (तुम्हारे) तात ने उन सबको तुझे दे दिया है, अर्थात् तुम्हारे लिए उनका वाग्दान कर लिया है, दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा। इस कारण (पूर्वभव संबंध) से, हे कुमार! तुम्हारा पवित्र चित्त मेरे परिचय में लग गया। हम लोग लोगों के शरीर से आनंद उत्पन्न करने वाले पूर्वजन्म के स्नेह को जानते हैं। मुनि के वचनों को सुनकर विशेष रूप से अपने पूर्वजन्म का स्मरण कर पुनः पुनः यति के चरणों में भक्ति दर्शाते हुए, शुभकर्मों वाले सुसत्व (पवित्रात्मा) जंबूस्वामी कहने लगे-हे प्रभु! मैं मोक्ष महापथ में गमन करूँगा और परिजनों को छोड़ूंगा। मैं संसार से उदासीन हो गया हूँ, मेरे ऊपर दया कीजिए, और पूर्वभव में जिस प्रकार (मेरे) मन को संवृत अर्थात् संवरयुक्त बनाया था, उसी प्रकार की शुभ (श्रेयस्कर) दिगम्बरी मोक्ष दीक्षा दीजिए ॥5॥

यह सुनकर वे (कर्म) मलनाशक गणधर बोले-'तो फिर अपने घर जाओ और माता पिता जनों से पूछो।' तब मनोद्भव अर्थात् कामवासना को त्यागने वाला अरहदास और जिनमती का तनुज बोला- आज जिन्हें यहां मां

बाप कहा जाता है, वह इतने (से) ही कि उनके द्वारा जन्म दिया जाता है। कोटि-कोटि जन्म पाकर भी जो दुर्लभ धन पहले कभी नहीं मिला था, और जिसका पहले कभी अभ्यास नहीं किया था, वह धर्मरत्न तथा कषायरहित शील तुम्हारे ही प्रसाद से प्राप्त हुआ। तू ही मेरा माँ बाप है, तू ही मेरा बांधव, तथा तू ही महासंसार (समुद्र) से पार उतारने वाला मित्र! तू ही देव है, गुरु है, और तू ही स्वामी! तूने ही सर्वप्रथम मेरा मोह उपशांत किया था, और जहाँ चंवरों से व्यजन डुलाया जाता है, ऐसे मनुष्य और देवसुखों को दिलाया था। (अतः) कृपा कीजिए और पूर्व (जन्मों) से ही (मोक्षमार्ग पर) चलने वाले (मुझ) को दीक्षा दीजिए। बहुत विचार करने से क्या? उस धीर का निश्चय जानकर और उसके वचनों को सुनकर सुधर्म मुनि कहने लगे-रे वत्स कहो तो! मां-बाप को पूछकर, फिर तप लेने से क्या हानि होती है? ॥6॥

रे वत्स! तुझ चरमशरीरी को अपने मन में कोई विकल्प लाने की आवश्यकता नहीं है, अतः परिजनों से पूछकर तपोवन का सेवन करना। गुरु के कहे हुए आदेश को लेकर, उनके चरण युगल को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके, कुमार गया, और दान से बंदीवृंद को आनंदित करने वाले अपने घर को पहुँचा, एवं जननी और जनक के पैरों को सिर नमाकर, करकमलों की अंजलि को शिर पर चढाकर, बोला-'यह संसारी अवस्था ऐसी है, जिसमें मनुष्य का (चंचल) मन चौरस्ते के दीपक के समान (सांसारिक विषयों में यहां-वहां) डोलता है। जीवन (आयुष्य) सर्प के जिह्वा स्फुरण के समान चंचल है, और बल गिरिनदी के पूर के समान (निरंतर) ह्रास को प्राप्त होता रहता है। लक्ष्मी का विलास गंडमाला (रोग) के जैसा है, और विषयसुख नखों से खाज खुजलाने के समान है। इस कारण से मैं आज ही प्रव्रज्या लूंगा। अपने आत्मा को मैंने (सबके प्रति) क्षमा (भाव) से युक्त करा लिया है और लोक से भी मैं (अपने प्रति) क्षमा (भाव) चाहता हूँ, एवं राग और विरोध (द्वेष) दोनों को उपशांत करता हूँ।' पुत्र के इन वचनों से माँ मूर्च्छित हो गयी, और किसी-किसी तरह उन्मूर्छित हुई, मरी नहीं (अर्थात् किसी-किसी तरह मरने से बची)। वह तीक्ष्ण पवन से आहत कदली के समान कांपने लगी, एवं

सजलनेत्र होकर ऐसी गद्-गद् वाणी बोली-हे पुत्र! तुम्हारे वचन (कुल) कल्याण के विरुद्ध और धिक्कारणीय है। हे पुत्र! तूने जो कहा वह मेरे लिए पर्वतशिखर पर वज्रपात के समान है। हे पुत्र! तू ही घर की शोभा है, तेरे तप लेने से कुल का विनाश हो जायेगा। पुत्र ही कुल का आशावृक्ष है, संतानों का धारक है, और कुटंब के गुरुभार को कंधों पर उठाने वाला है। पुत्र ही कुल का क्षय करने वाली आपत्ति वल्लरी को विध्वंस करने वाला श्रेष्ठ हस्ति है ॥7॥ इस संसार में वही प्रिय है, जननी के वैसे कथन को सुनकर चारों गतियों के दुःख का नियमन करने वाले जंबूस्वामी ने कहा- 'हे शुद्धशील मां! यह जो लोकाचार तुमने बतलाया, वह दूसरा कौन कह सकता है? निश्चय से पुत्र वही है जो वंश को उज्ज्वल करे, तथा जो गुणियों की गणना में प्रथम हो और आचार युक्त हो। जिसके जन्म लेने से वैरी क्रंदन नहीं करते, और सज्जन सदा सुख से आनंद नहीं मनाते, जिसके दान से अथवा रण को जीतने से; सुकवित्व से अथवा जिनभगवान का कीर्त्तन करने से जिसका यश रूपी हंस इस संसार रूप पिंजडे में न समाता हुआ, इसका अतिक्रमण करके संपूर्ण ब्रह्माण्ड में तीव्रगति से नहीं जाता, उस मात्र उदरपोषण करने वाले अथवा प्रजापूरण (संतति बृद्धि) करने वाले, निज-जननी के यौवन को काटने (लूटने) वाले पुत्र से क्या जो दुर्व्यसनों से भक्षित (वशीवर्ती) होकर कुल के मूल (धर्म) को ही खोद डालता है, एवं अर्थपरायण होकर माँ बाप को भी मार डालता है।' तो अच्छा है कि मैं वह परित्याग कर्म (संसार त्याग) करूँ जो जिनकेवलियों द्वारा गम्य रहा है। सामान्य व्यक्ति के लिए जैसा साध्य नहीं है, उस प्रकार से मैं चंद्रमंडल पर अपने कुल के नाम को उकेरूंगा। मैं वह करूंगा जिससे पुनः विग्रह गति (संसार में आवागमन) न हो, और जिससे यह मनरूपी मत्कुण पुनः डंक न मारे (अर्थात् विषयों की तृष्णा से अभिभूत न करे)। जहाँ इंद्रियाँ व्यापार प्रगट ही नहीं होता है, अर्थ की (उपलब्धि या अनुपलब्धि) जहाँ विकार नहीं करती, जहाँ मिलने (पहुँचने) से कालद्रव्य विलीन हो जाता है (अर्थात् जहाँ जन्म, जरा व मृत्यु नहीं होते), जहां समस्त आकाश अस्तगत हो जाता है, और जहाँ कलिकृतांत क्षयहो जाता है, मैं ऐसा

तप करूंगा, और निरंजन (कर्मरूपी कालिमा से रहित) संत होऊँगा? यह कहने के अनंतर उसने विशेषता से (विस्तारपूर्वक) अपने निंरतर (पाँच) जन्मांतरों को कहा। तब बोध को प्राप्त हुई माँ ने कहा-पुत्र! तूने जो कुछ प्रतिपादन किया, सब युक्त है। शिवसुख में मन लगे हुए पुत्र का निश्चय जानकर पिता ने विवाह के लिए उमाहे हुए (उत्साहित) सागरदत्त प्रमुख वणिकों के पास शिक्षा (समाचार) देकर अपने दो पुरुष भेजे ॥8॥

तब (इन दोनों पुरुषों ने वहां जाकर) मंडप में बैठे हुए चारों श्रेष्ठियों को देखा, और तोरण द्वार पार करते ही वे दोनों भी श्रेष्ठियों के द्वारा देखे गये। उनके लिए अभ्युत्थान करके दधि, कुसुम व अक्षत मंगलोपचार करके आसन दिया, तांबूल, कुंकुम व चंदन आदि विलेपन सामग्री आगे करके जो जो कुछ आचार व्यवहार योग्य है, सभी किया गया। तदंनतर दोनों में से एक व्यक्ति बोलने लगा- 'वर के तात ने तुम्हारे घर भेजा है। (दुः) साहसी और दुष्ट विधि अघटित को घटाता है, और सुघटित को विघटित कर देता है। सत्पुरुष की बुद्धि इस दैव का क्या करे, जहाँ असंपन्न कार्य में कोई और ही गति हो जाती है? उसके बोलते हुए सब लोग अपना मन थामकर निर्निमेष दृष्टि से उसका मुँह देखने लगे। सर्वत्र विस्फार अर्थात् उच्चलय से बजते हुए तूर रोक दिये गये। मधुर वेणु और वीणा से समवेत सभी गान बंद कर दिये गये। कामिनियों का संचार रोक दिया गया, और नूपुरों की झंकार अवरुद्ध कर दी गयी। बंधुजन तथा और जिन्होंने भी कानों से सुना, सभी चित्रलिखित के समान (स्तभित) हो गये। पुनः वही व्यक्ति कहने लगा-कन्याओं के लिए अन्य वर देखिए! अपने चित्त को (अतिशय रूप से) सिद्धिवधू में लगाने वाले कुमार ने विवाह को त्याग दिया है। तुम्हारे साथ हमारी परम प्रीति है, इस प्रसंग में जो किया जाये वैसी मति दीजिए। दुःखित मन माता पिता और बांधवजनों के द्वारा समझाये जाने पर भी वह कैसे भी नहीं समझता। वैराग्य मन कुमार को आज ही सचमुच तप लेने से कैसे रोका जाये? ॥9॥

उस संदेशवाहक के कहे को सुनकर सभी का हृदय करोंत से चीरे गये सा तथा विष खा लेने से घूमता हुआ (चकराता हुआ) जैसा हो गया। वज्रजनवृंद इस प्रकार अधोमुख होकर बैठे रहे जैसे अतिकठोर वज्रायुध से तोड़ा हुआ पर्वतराज, जैसे गरुड़ से झपेटा हुआ फणिसमूह, सिंह के द्वारा शिर विदीर्ण किया हुआ हाथियों का झुंड, और तीक्ष्ण परशु से कटी हुई शाखाओं वाला (ठूंठ) वृक्ष हो जाता है। कन्याओं के पिता दुखपूर्वक कहने लगे-'जंबूस्वामी जैसे श्रेष्ठवर को छोड़कर तीनों लोकों में उसके समान और कौन देखा गया है? जो कन्याएँ बहुत पहले से ही (उसे) दे दी गयी थीं, उन्हें अब किस दूसरे को दें? अब उन्हीं नवीन सिरीषपुष्प के समान सुकुमार बालिकाओं से पूछा जाये'-ऐसा कहकर संदेशवाहक को हाथ पकड़कर और मातृगृह में भीतर प्रवेश कराकर कन्याओं को सब कारण (समाचार) बतलाया, (और पूछा) अच्छा, अब तुम लोगों के लिए दूसरा वर देखें? (विवाह) कार्य में व्यवधान की यह बात सुनकर, लक्ष्मी की शोभा को जीतने वाली पद्मश्री ने प्रत्युत्तर दिया-निर्मलगुणों और महान गोत्रवाली कुलकन्याओं का निश्चय से एक ही पति होता है, लोक में एक ही जननी होती है, एक ही तात, और एक ही देव-वीतराग जिन। एक ही परम साधु को गुरु कहा जाता है और एक ही सुहृत् जिससे तप व धर्म का लाभ हो। यदि प्रियतम हम लोगों का परिणय नहीं करके, वैरागी होकर परम तप (दिगंबरीदीक्षा) लेते हैं (तो लें), परंतु फिर भी यदि (किसी तरह) विवाह घटित हो जाय और हम लोग उनकी दृष्टि में चढ़ जायें, तो मैं बहुत आगे बढकर तो बोलना नहीं जानती, (लेकिन फिर भी) चंचलनेत्रों के विलास के वश हुए, और रति में रस लेने वाले उसको हम लोग आजन्म अपना प्राणबल्लभ मानें (अर्थात चंचल नेत्रों के कटाक्ष और रतिरस में डूबकर वह आजन्म हम लोगों का प्राणप्रिय होकर रहेगा) ॥10॥

इस मनोवांछित वचन का दूसरी राजकुमारियों ने भी समर्थन किया-(कि) परिणय कर लेने पर उसके लिए व्रतप्रधान तपोवन तो दूर ही है। यद्यपि यह बड़ा भारी लज्जनीय कार्य है, तथापि लज्जा छोड़कर कहना पड़ता है तो फिर जवानों के मन को उद्दीप्त करने वाली काम की संजीवनी

कोमल ध्वनि, रतिनाटक और विलास की शिक्षा, बाँके तीक्ष्ण [illegible] देखना, प्रेमरस से पूर्ण होकर सुंदर बाहुलताओं से आलिंगन और स्थू[illegible] से प्रगाढ़ता से मर्दन हो। हम लोगों के दर्शनमात्र से ही दर्शितशृंगार उद्दीप्त काम कुमार की रति विह्वल दृष्टि को हमलोग अपने चरणों मे करती और विशाल रमणस्थल पर खिन्न होकर भ्रमण करती हुई देखेगा। रोमाबलि प्रदेश पर विह्वल होकर, विषम त्रिवली तंरगों पर झपट मारते हुए नाभिबिंब पर ठहरकर उसका प्रवर्तन इस प्रकार रुक जायेगा, जिस प्रकार कीचड़ में फंसा हुआ दुर्बल पशु, और घने स्तन तटों पर चढ़कर वह ऐसी निष्पंद हो जायेगी, जैसे जलदर्शन का लंपट कोई प्यासा (जल को देखकर)। तरल तरंगोंवाली (अर्थात् चंचल प्रेक्षणों से युक्त) व मदन मदकी संगिनी, हमलोगों के दीर्घनेत्रों रूपी तरंगिणी को वह अभिलाषा पूर्वक देखेगा। (और भी हमलोगों के द्वारा) वह विलास से अनुरक्त मनवाला और हम प्रणयनियों के प्रणय के पाद प्रहार से युक्त शरीरवाला अर्थात् प्रणयवश हमलोगों के चरणों को चूमते हुए; तथा माननियों के मान को उपशांत करने की आकांक्षा से मधुर कंदर्पालाप करते हुए वरदीर्घ निःश्वास लेते हुए; और प्रणाम करने के लिए उसका मुकुट अपने चरणों से इस प्रकार लगा हुआ मानों वह नूपुरों के अग्रभागसे बांधकर चिपका दिया गया हो, इस रूप में देखा जायेगा। यह सुनकर सभी ने विचार किया, और मिलकर कुमार को इन व्यवस्थाओं में स्थापित किया (अर्थात् बांधा) कि केवल एक दिन के लिए चारों कन्याओं से पाणिग्रहण करके सुहृज्जनों के नयनों के लिए महद् प्रीति उत्पन्न कीजिए। फिर कल ही विमल व्रतों और शुद्ध गुणोंवाले तपश्चरण को लेते हुए (तुम्हें) कौन रोकेगा ॥11॥

तब बालक ने अस्वीकार नहीं किया और इस वचन को मान लिया। शीघ्र ही विराग विवर्जित अर्थात् किसी भी प्रकार रस भंगरहित गंभीर तूर बज उठा। शुभ विवाह मुहूर्त आने पर ऊर्णामय कंकण हाथ में बाँधा गया। शिर पर अपनी शोभा से चंद्रमा को जीतने वाला तथा अपनी गंध से आकृष्ट भ्रमरों के गुंजार से युक्त श्वेत (कमल) पुष्पों का मुकुट बांधा गया। धवल,

सूक्ष्म और नये वस्त्रों को पहने, तथा चंदन से लिप्त और रत्नों से मंडित-देह कुमार ने चारों कन्याओं से वणिक्कुल के आचार के अनुसार विवाह कर लिया। सागरदत्त को प्रमुख करके चारों कन्याओं के लिए (कन्यादान के निमित्त) स्वच्छ जलधारा की जाने पर वधुओं के पाणिग्रहण के उपरांत उस पवित्र कुलवाले वर के लिए बहुत सा दायज (दहेज) भी दिया गया। ताप से तपाया हुआ श्रेष्ठ सोना, शुक्ति में उत्पन्न होने वाले बड़े-बड़े सुंदर मोती, दीप्ति स्फुरायमान श्रेष्ठ (जात्य) रत्न, वज्र की खान से निकाला हुआ कांतिमान वज्ररत्न एवं बहुमूल्य कांची देश निर्मित वस्त्र तथा अन्य भी जो जो कुछ वस्तुएं हैं, सभी दी गयीं। दासियां भी दी गयीं, और सुंदर सुंदर वस्त्र; विशेष प्रकार के आसन एवं दीपक और मंच पलंग सहित दिये गये। आनंददायक मंडप में प्रवर अर्थात वरिष्ठ लोगों के एकत्र हो जाने पर परिणय का कार्य संपन्न किया गया, और मानों श्रेष्ठ नव-वधुओं तथा वर को देखने के लिए आया हुआ सूर्य मध्याह्न में प्रवृत्त हुआ ॥12॥

(अब जिस समय कि) तीव्रतम घाम (धूप) से पसीने से तर, तथा चंदन का खूब गाढ़ा लेप की हुई कामिनियों के कमलों पर जल लव अर्थात् स्वेदबिंदु चमक रहे थे, और उनके कंकणों का मधुर कलरव हो रहा था; और जबकि लोग तृणमय कायमानों अर्थात आसनों पर बैठ गये थे, तथा जल से तर किये हुए व वारिकणों को चुआते हुए चंवरों के खूब शीतल प्रभंजन (पवन) का सेवन किया जा रहा था। और जबकि ईषत् उष्ण जल वाले सरोवर के तटपर शिला तट अग्नि के समान तप रहे थे, दर्दुर कर्दम-क्रीड़ा करके प्रसन्न हो रहे थे, भौंरें इंदीवरों के पीछे छिप रहे थे, महिषों के यूथों के अवगाहन करने से (सरोवरों का) जल पंकिल हो रहा था, तथा पशु मंडली वृक्षों की छाया में बैठी थी वैसे समय में कुमार वधूओं और बांधवों के साथ विशुद्ध भोजन करने लगा। वह भोजन श्रृंगारादि रसों से युक्त नाटक के विस्तार के समान नानाप्रकार के अम्ल मधुर इत्यादि रसों से युक्त था, और क ख ग व्यंजनों से युक्त व्याकरण के समान नाना व्यंजनों अर्थात् विविध पकवानों से शोभायमान था। दुर्जन लोगों के सकूर अर्थात् क्रूरतापूर्ण हृदय के

समान वह भोजन कूर नामक श्रेष्ठ चावलों से युक्त था, और सज्जन लोगों के स्नेहपूर्ण मन के समान घृतादि स्नेह पदार्थों से परिपूर्ण था। सुंदर तरुणियों के लावण्युक्त वदन (मुख) के समान वह लवणयुक्त था, और संपूर्णरूप से उद्गत अर्थात् पूरी तरह उदित हुए प्रातःकालीन सूर्यमंडल के समान समुग्ग अर्थात मूंगे के व्यंजनों से युक्त था। खाटों से युक्त वासगृह के समान वह भोजन सुंदर खट्टे पदार्थों (अचार-चटनी आदि) ये युक्त था। बहुत से बाटों अर्थात मार्गों से युक्त महानगर के समान वह बहुत सी बाटों अर्थात् कटोरियों से युक्त (कटोरियों से सजा हुआ) था। सत्पुरुषों के सुपात्र अर्थात् सद्व्यक्तियों में नियोजित धन के समान वह भोजन सुपात्रों अर्थात् सुंदर बरतनों में रखा हुआ था। और सतर्क अर्थात् तर्कशास्त्र के ज्ञान से शोभायमान पंडितों के समान सतक्र अर्थात तक्र (मट्ठा) सहित होने से अच्छा लग रहा था। इस तरह रस लेने वालों के द्वारा नाना प्रकार के भोजनों का समूह जो मुख को मधुर करने वाला और 'कवड' अर्थात् पुरवों में भरा हुआ था, खाया जाकर अंत में बहुत सा उच्छिष्ट उसी प्रकार छोड़ दिया गया, जिस प्रकार किसी धूर्त्तस्त्री का कपटभरा उद्दीप्त प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है॥13॥

जलगंडूष के द्वारा मुखशोधन किया गया और विलेपन (कुंकुम चंदनादि के पिष्ट चूर्ण) लिये गये। इतने में थोड़ा गरम अपराह्नकाल हो गया। तब तक चारों वधुओं के साथ वर गया, और अपने घर आ पहुँचा। (गरम) हवा से झुलसा हुआ, और (आकाशरूपी वृक्ष से) मानों निरर्थक ही टूटा हुआ सूर्य रूपी फल अस्ताचल को जाता हुआ देखा गया, मानों वह (दिनभर) कमल सरोवरों से अपने किरणोंरूपी हाथों से कमलकोषों का सेवन करके मधुर से मत्त (रक्तवर्ण) होकर सुरापान से मत्त हुए किसी रागी पुरुष के समान अपने वस्त्रों को (सूर्यपक्ष में किरणों को) फेंककर गिर रहा हो। अस्ताचल के शिखर पर शिलातटरूपी रमण (नितंब) से विराजमान वनराजी से (अपने प्रियतम सूर्य को) लगे हुए देखकर उसकी पश्चिम दिशारूपी पत्नी ने ईर्ष्या करके, इसे सहन न करते हुए क्रोध से मानों संध्या अरुणिमा के व्याज से अपना मुख तांबे के समान लाल-लाल कर लिया। उस सूर्य ने अपना तेज

अग्नि में, ताप विरहीजनों में और राग (लालिमा अनुराग के रूप में) तरुण मिथुनों के मन में दे दिया, और प्रताप रातभर के लिए कामदेव को अर्पित कर दिया, (इस प्रकार) उसका यह अतिशय त्याग ही उसके अस्त होने का कारण हुआ। मेरे भीतरी धन का पता लगाने के लिए सूर्य को लेकर तुम लोगों के द्वारा बहुत प्राचीनकाल में मंथन करके मेरा सब कुछ ले लिया गया था, अतः अब पुनः मंथन के भय से पृथ्वीरूपी मुद्रा से मुद्रित(अर्थात् मर्यादित) समुद्र ने मानों देवताओं के सूर्यरूपी दीपक को धर लिया (अर्थात् अपने गर्भ में छिपा लिया)। आकाश वृक्ष से गिरे हुए पके फल के समान दिवाकर मंडल (एकाएक) विघटित हो गया। अस्ताचल को गये हुए सूर्यरूपी प्रियतम की कामना से दिवसरूपी लक्ष्मी ने संध्यारामा (नायिका) के रूप में लालवस्त्रों का (आत्माहुतिसूचक) जोड़ा धारण करके, तथा कुंकुम के गाढ़े द्रव से टीका करके, क्षणभर ठहरकर (प्रियतम के विरहरूपी) दुःख से अत्यंत पीड़ित होकर अपने आपको महासमुद्र में डाल दिया। अंधकार के प्रसार से (अलग-अलग) तटोंपर भूला हुआ चकवों का जोड़ा क्रंदन करने लगा। पंकज़ सरोवर मानो भ्रमरों से छा दिये गये और उद्यान कोकिलों से ढक दिये गये। पर्वतों के शिखर ऐसे हो गये मानों नाचे हुए मोरों के पंखों से आच्छादित हो गये हों। दिशा मुख मानों कस्तूरी से पोत दिये गये, और राजाओं के प्रासाद उत्तम गजसमूह के समान ललित लगने लगे। (यह ललितक नामक छंद है)। मन्मथ से पीड़ित, धनहीन विटजनों के द्वारा छोड़े हुए विरहाग्नि के स्फुलिंगों के समान अपनी नीलिमा से सारे जगत को व्याप्त करते हुए तथा नील के रंग को भी अतिक्रमण करते हुए जुगनुं आकाश में उड़ने लगे ॥14॥

रात्रि का आगमन होने पर दूतियों का गमनागमन होने लगा। अभिसारिकाओं ने काले वस्त्र पहने और मरकतमणियों से गढ़े हुए आभूषण धारण किये। अंधकाररूपी हस्ति के कुंभस्थल को विदीर्ण करने वाली सुवर्णनिर्मित सुंद दीपिकाओं रूपी बरछियाँ जलायी गयीं (पक्ष में चमकायी गयीं)। गत पतिकाओं के द्वारा अपने हृदयों अर्थात् उरस्थलों (स्तनों) पर

कंचुकी पहने जाने के साथ-साथ गगनांगन में मृगत्लांछन शीघ्र उदित हुआ; (जो ऐसा शोभायमान हुआ) मानो घना अंधकार फैल जाने पर वराक्षी (सुंदर नेत्रोंवाली) नभलक्ष्मी ने दीपक जलाया हो। ज्योत्स्ना के रस अर्थात चांदनी के प्रसार से भुवन ऐसा शुद्ध अर्थात धवल कर दिया मानों उसे क्षीरोदधि में डाल दिया गया हो। मकरध्वज के बांधव चंद्रमा की किरणें ऐसी हो गयीं मानों आकाश से अमृतबिंदु ही विघटित होकर गिर रहे हों, अथवा कर्पूर के पूर से कण गिर रहे हों, अथवा श्रीखंड के प्रचुर रस की शीकर (फुहारें) ही पड़ रहे हों। लार फैलाता हुआ एक मार्जार घरों के झरोखों को गोरस की भ्रांति से चाटने लगा। मोतियों के मनोहर व लंबे हार के समान उन चंद्रकिरणों को कोई मुग्धमुखी अपने व्याकुल हाथों से पकड़ने लगी। गोथान में बैठी हुई गोपी जान नहीं सकी (कि इस मथानी में कुछ नहीं लगा है), अत: (इस मथानी में) दही है, ऐसा कहकर (खाली) मथानी को ही मथने लगी। मालिनियां आवास के निकट से मालती कुसुम की आशा से चुनने लगीं। कोई शबरी (भूमिपर) गिरे हुए बेर के फल को हाथी के शिर का मुक्ताफल (गजमुक्ता) समझकर उठाने लगी। अपने वैरी (कौवे) से रुष्ट किया हुआ चतुर घूक (उल्लू) अपने सामने ही स्थित, (परंतु अतिशय चांदनी के प्रभाव से) हंस के समान (दीखने वाले) कौवे को पहचान नहीं पाया। ऐसी कुमुदों को प्रसन्न (विकसित) करने वाली धवल ज्योत्स्ना में चारों नववधुओं के साथ कुमार परिजनों के द्वारा बताये हुए, पांच सुंदर पलंगों से युक्त वासगृह प्रविष्ट हुआ ॥15॥

कुछ देर ठहरकर आदर किये हुए (अर्थात् आदर करके) अपने सब सहचरों (मित्रों) को अपने-अपने घरों को पठाकर (फिर) द्वार के कपाटों को निविड अर्थात-निश्छिद्र रूप से बंद कर दिये जाने पर वे पांचों वर वधू रुई के गद्देदार एवं चादरों से आच्छादित पांच मचों पर आसीन हो गये। प्रदीपों की शोभा (ज्योति) मंद कर दी गयी। (अथवा श्लेष में जंबूस्वामी एवं वधुओं के देदीप्यमान मुखोंरूपी दीपकों के तेज से तैलदीपकों का तेज फीका पड़ गया)। हाथ में आदर पूर्वक तांबूल ग्रहण किये गये। गुलाब के पुष्प के साथ

विच्चकिल्ल का फूल बांधा गया। सुगंधित कर्पूर व अगर जलाया गया। कोई वधू हार की छिपी हुई लड़ को बताने के बहाने से भर्त्तार के लिए अपने वक्षस्थल को प्रकट करने लगी। कोई अपने नाभिमंडल को खोलती हुई विवाह की हुई विरचना (पत्ररचना आदि रूप सजावट) को प्रकट करने लगी। कोई वस्त्रों को खिसकाकर अपने भले (आकर्षक) और मसृण उरु युगल को दिखलाने लगी। कोई आँखें बंद करके कान खुजलाने के कपट (बहाने) से अपनी कुक्षि को बतलाने लगी। कोई कुटिलता से अर्थात कटाक्षों से देखती हुई भौंहों को बांका करने लगी, और दांतों से अपने अधरों को काटने लगी। कोई दूसरी वधू सुंदर युवक के मन को उद्दीप्त करने वाले वात्स्यायन अर्थात कामसूत्र को अलंकार पूर्वक (अर्थात श्रृंगार भाव से भरकर) पढ़ने लगी। और कोई वधू वीणावाद्य के साथ रागपूर्वक हिंदोला गाने लगी। कोई किसी दूसरी के साथ बोलने लगी और शून्यभाव से सीत्कार छोड़ती हुई काँपने लगी। कोई वर के केरलपुरी को गमन, राजा के विवाह एवं वर के द्वारा जीते हुए युद्ध का वर्णन करने लगी, और इस प्रकार विद्याधरभटों के साथ किये हुए युद्धवर्णन के द्वारा, उद्भट हास्य के साथ वीररसपूर्वक श्रृंगार रस को प्रकट करने लगी ॥15॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर-कवि द्वारा विरचित-जंबूस्वामी नामक इस श्रृंगार वीर-रसात्मक महाकाव्य में 'विवाहोत्सव' नामक यह अष्टम संधि समाप्त॥

संधि-9

वीर (कवि) द्वारा रचित काव्य आप सज्जनों के द्वारा परीक्षा करके ही ग्रहण किया जाना चाहिए। कसौटी, ताप और छैनी से शुद्ध जानकर ही सोना खरीदिये, उसके स्नेह मात्र से नहीं ॥1॥ रसों से शुद्ध किये होने से खूब दीप्तिमान एवं व्यवसाय में सुनिर्धारित (शुद्ध) सुवर्ण के समान काव्यरसों से देदीप्यमान, एवं सुपरीक्षित-विविध शब्दसमूह से (दोषरहित रूप से) सुनिर्धारित तथा चिरप्रसिद्ध काव्योंरूपी तुला पर तौले हुए मेरे इस काव्य रूपी सुवर्ण को बुद्धिरूपी कसौटी पर कसकर ग्रहण कीजिए ॥2॥ मकरध्वज का नाच नाचती हुई उन वधुओं को जंबूकुमार ने अपने संपर्क में लायी हुई काष्ठ की पुतलियों के समान देखा ॥3॥

(उनके) उस रति (प्रेम) प्रपंच को वह अपने नेत्रों से देखता, फिर ज्ञाननेत्रों से अवलोकन (चिंतन) करता । अहो खेद! स्त्री के मोह में जकड़ा हुआ यह जगत मदनरूपी काले सांप के द्वारा खाया जाता है। (स्त्री के) अधर को अमृत व मधु का वास कहा जाता है, उसका दूसरा नाम वदनासब (अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से 'व्रतनाशक') भी रखा गया है। (पर) ओष्ठचर्म को काटने में और परित्याज्य लार मलको पीने में कौनसा रस है? जो मूत्र का द्वार है, और पूतिगंध से युक्त है, उसे विटजनों ने 'रमण' जैसा महत नाम दे दिया है। स्त्री का पृष्ठभाग ऐसा है जिससे लज्जा उत्पन्न होनी चाहिए, किंतु रागियों के द्वारा उसे ही नितंब (श्लेषार्थ-पर्वत मध्यवर्ती ढालू प्रदेश से तुलनीय) कहा जाता है। ऐसे (जुगुप्सनीय)त्रिक (अधर, रमण व नितंब) मय (स्त्री रूपी) पुद्गलस्कंध में कौन ज्ञानवान अपने को बांधता है? वस्तु के (सत्य) स्वरूप को छोड़कर स्वेच्छया हमारा बुद्धिविकल्प मिथ्यात्व में प्रवृत्त हो जाता है। पहले हमारा भाव (चित्त) स्त्रीत्व (स्त्रियाकांक्षा) को प्राप्त करता है, और फिर वही बाह्य जगत में द्रव्य स्त्रीत्व (भौतिक स्त्री शरीर) के लिए दौड़ता है, सम्यक्ज्ञानी इस प्रकार का विवेचन करता है किंतु हमारा भाव (मन) ही स्त्री रूप होता है, इस बात को अज्ञानी नहीं समझता। द्रव्यात्मक

(भौतिक) विषयों को भोगते हुए यह जीव संसार में भ्रमण करता हुआ रहता है। ज्ञानी इस परिस्थिति को उदयागत भावों (कर्मों) के अनुसार (नवीन) कर्मास्रव के बिना, परद्रव्य (में आसक्ति) को छोड़कर भोगता है और यही भाव (विवेक) संसाराभाव अर्थात् मोक्ष का कारण है॥1॥

कुमार को इस प्रकार दृढ़चित्त देखकर अपने मुख की कांति से चंद्रमा की शोभा को जीतने वाली, दीर्घनि:श्वास छोड़ती हुई और कुछ लज्जापूर्वक हँसती हुई पद्मश्री ने परिपाटा से (क्रमश:) अपनी उन सहपत्नियों को कहा-हे सुंदरी! संकुचित की हुई भुजाओं से पागलपन सरीखी वर की कोई अपूर्व ही भंगिमा है। क्या कहीं षंढ़ को भी मदन के बाण लगते है? प्रत्युत वापस आकर सैकड़ों टुकडे हो जाते हैं। नृत्योत्सव से कोई अंधा क्या करे? और कोई बहरा गीत रव से क्या करे? इस अविवेकी को ग्रह (भूत) लग गया है, तपश्चरण के क्लेश से यह स्वर्ग चाहता है। हे बहन! इस लोक में ऐसी संपति किसके घर में हैं, जो देवों के लिए भी मिलनी दुष्कर है। यहाँ रूप में अप्सराओं को भी जीतनेवाली तुमलोग तथा (अन्य) सब कुछ निर्बाधरूप से प्राप्य है। स्वाधीन सुख को छोड़कर दीक्षा लेना ऐसा है जैसे किसी के घर में कमलनाल पके हुए हों, और वह (उन्हें छोडकर) भिक्षा के लिए भ्रमण करे। तपश्चरण का फल तो संदेह मय है। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) किसने देखे हैं? यदि मनोयोग (अर्थात् चितवृत्तियों का निरोध व ध्यानसमाधि) का स्वरूप आनंदमय है, तो उससे श्रेष्ठ तो रमणीयोगहै, जिससे पुरुष मोक्ष के बिना ही प्रत्यक्ष सुख की अनुभूति पा लेता है ॥2॥

हे सुंदर सखी! यदि मेरे ऊपर रोष न मानें तो एक कथानक कहती हूँ। मैं समझती हूँ कि तुम लोगों का यह भर्त्तार मूर्ख धनदत्त नामक हालीका अनुकरण कर रहा है। वे सब विस्मित मन से सुनने लगीं। और जिस तरह जिनमती का पुत्र जंबूस्वामी सुने (अर्थात् उसी को लक्ष्य करके) उस प्रकार पद्मश्री कहने लगी-धनदत्त नाम का एक दुर्विदग्ध (मूर्ख) हाली था। उसके घर के सारे काम काज करने वाली पत्नी एक पुत्र को जन्म देकर पंचत्व को प्राप्त हो गयी। वह पुत्र दीर्घ व स्थूल (बलिष्ठ) भुजाओं वाला और पिता के

आरम्भ भार अर्थात् समस्त कृषि उद्योग का अच्छी प्रकार निर्वाह करने वाला हुआ। बुढापे में विधि से प्रेरित होकर धनदत्त ने एक दूसरी स्त्री को ब्याह लिया। वह तरुण, प्रगल्भ और (काम) मद से भरी हुई स्त्री सौभाग्य (सौंदर्य) रूपी दुर्वात से भग्न अर्थात् मर्यादा च्युत हो गयी, और वह वृद्ध किसान प्रिया की कामप्रेरणा से उद्विग्न एवं व्याकुल होता हुआ गाँव के लोगों के लिए एक खिलौना बन गया। पश्चात् एक दिन उसकी वह प्रिया अर्द्धरात्रि के समय रुष्ट होकर मुंह फेरकर पड़ी रही। अनुनय करने पर कठोर स्वर में बोली-मेरे शरीर से मत लगो, अपने हाथ को दूर करो, घर में तुम्हारा समर्थ पुत्र विद्यमान है। मेरे उदर से जो पुत्र होंगे। वे सब इसके चरणों का अनुसरण करके (अनुगामी बनकर) इसका भृत्यपना (दासत्व) करके जीयेंगे। (अत:) हे प्रियतम! इस पुत्र को मार डालो, हमारे जो पुत्र होंगे, बुढ़ापे में उनके प्रसाद से निष्कंटक लक्ष्मी को भोगेंगे ॥3॥

तब किसान ने कहा-कांते! यह बड़ी लज्जा की बात है, पिता के द्वारा पुत्र को कैसे मारा जाये? वह विनयवान है गृहभार की धुरा को धारण करने वाला है, और विशेषरूप से बलवान है, इसलिए उसे मारने में डर भी है। गृहिणी आग्रह करके पुन: कहने लगी- एक मंत्र (उपाय) बतलाती हूँ, जो बहुत गुणकारी (हितसाधक) है। प्रात:काल जब यह हल बहा रहा हो, तब अपने नये बैलवाले हल को इसके पीछे कर लेना। फिर उस उद्धत बैल से इस पर (सींगों का) प्रहार करना (कराना), फिर हलमुख से विदीर्ण करके मार डालना। इसमें न तो (पुत्र से) प्रतीकार का भय है, और न लोकों में अपयश। ऐसा निश्चय करके दोनों मन में संतुष्ट हुए। यह सारा संकेत (वार्तालाप) पास के घर में सोये हुए पुत्र ने सुन लिया। प्रात:काल पुत्र के चले जाने पर हाली भी दुर्दम्य वृषभ और तीखे फलवाले हल को लेकर उसके पीछे पीछे गया। सामने ही उसने हल लिये हुए अपने पुत्र को पके हुए धान के खेत में हल चलाते हुए देखा। उसने पुत्र को (ऐसा करने से) रोका- अरे क्या (मति) भ्रष्ट हो गया है? यह पर्वत के समान महान अर्थछेद (धन-नाश) मत कर! तब मुत्र कहने लगा-तात इसका उन्मूलन करुँगा, और फिर बिलकुल नया

धान यहां रोपूंगा। धनदत्त ने कहा-अरे मूर्ख चला जा, सिद्ध (प्राप्त) को छोडकर असिद्ध की इच्छा करता है। (तब फिर) पुत्र ने कहा-'रात्रि में बातचीत करते हुए (तुमने पत्नी से) जो कहा, उससें स्वयं तुमने ही यह सिखाया। प्रमाण को प्राप्त अर्थात मुझ जवान पुत्र को मार कर तू स्त्री से अन्य पुत्र उत्पन्न करेगा।' यह सुनकर दीर्घ निःश्वास छोड़कर, वह पामर पुत्र को आलिंगन करके रोने लगा। प्रियतम धनदत्त हाली के समान है, (क्योंकि) यह (स्वयं देवियों जैसी साक्षात् उपलब्ध) तुम सबको छोड़कर, बहुत कष्ट से तप करके ऐसी सुर-नारियों की वांछा करता है, जिनकी प्राप्ति में पूर्ण संदेह है॥4॥

इस आख्यान के समाप्त होने पर वर सोचने लगा-कैसे इसने मुझे पामर बना दिया? तो फिर मैं भी अपनी प्रियाओं को (मेरे ऊपर लगाये हुए) मूर्खता (के आरोप) का अपहरण करने वाला कुछ तो मैं भी कहूँ। (ऐसा विचारकर) कुमार बोला-हे मुग्धमुखी सुनो! एक दूसरा कथानक तुम अभीतक नहीं जानती। विषयभोगोंरूपी अमिष के मोह में पड़कर मांस लोभी कौवे के समान, इस रति लोभ से मैं विनाश को प्राप्त नहीं होऊंगा। विंध्यपर्वत पर एक बड़ा हाथी आयुष्य के अंत में नर्मदा नदी को प्राप्त कर वर्षा के पूर से बहता हुआ मर गया, और एक कौवे के द्वारा खाया जाता हुआ, भारी प्रवाह में पड़कर भयानक मच्छ, कच्छप और मगरों के आकर समुद्र में चला गया। जलनिधि के बीच हाथी मछलियों द्वारा निगल लिया गया। वह दुखी कौवा भी आकाश में उड़ने लगा। आकाश के अंतराल में स्थित होकर जब उसने देखा तो कहीं कोई गांव, न कोई स्थान और न कोई वृक्ष (ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा)। वह कौवा थोड़ा सा परिभ्रमण करके आकाश से च्युत होकर कांव-कांव-कांव करता हुआ, गिरकर मर गया। जिस प्रकार उस बेचारे कौवे ने मांस भोजन के वश होकर अपने (प्राणों) को दे दिया, उसी प्रकार हे मृगनयने, मैं भी तुम लोगों के सुख का आस्वाद लेता हुआ विषयासक्त हो, कामदेव के वशीभूत होकर, इस संसार रूपी महासागर में पड़कर विनाश को प्राप्त नहीं होऊँगा॥5॥

इसके अनंतर कनकमाला कथानक कहने लगी–कैलाश पर्वत पर एक कपि रहता था। वह शिखर से गिरा और खंड-खंड होकर मर गया, तथा (मरकर) मणि व स्वर्णमय मुकुटधारी विद्याधर हुआ। कोई एक दूसरा विद्याधर उसे देखकर मन में बड़ा विस्मित हुआ और अपनी पत्नी के साथ ऐसा वार्तालाप करने लगा–जहां कपि मरकर विद्याधर होता है तो यदि किसी तरह कोई खेचर मरे तो वह अवश्य उत्तम गीर्वाण (देव) होगा। तो लो, अब मैं ही यहां मर जाता हूँ, ऐसी उसकी (दृढ़) बुद्धि हो गयी। रोती हुई उसकी प्रिया उसे रोकने लगी–हे नाथ, खेचर स्वभाव (रूप) से भी तुम्हें मनोवांछित विषयसुख प्राप्त होता है। देवों के लिए ही स्वर्ग में कौन सा अतिशय सुख है? कांता के कहे हुए की अवहेलना करके उस खेचर ने अपने को गिराकर चूर्ण कर लिया और लाल मुंह वाला वानर होकर रह गया। स्वाधीन सुखों को छोड़कर, अधिक की कामना करने वाला खेचर (जिस तरह) नष्ट हुआ, उसी तरह (प्राप्त हुई)? तुम जैसी रमणीयों को यह नहीं चाहता। (अतः) यह (जम्बूस्वामी) दैव से ठगा जाकर विनष्ट हो रहा है॥6॥

यह सुन कर जंबूस्वामी कहने लगे–विंध्यमें एक यूथपति बंदर रहता था। वह बड़ा कामातुर था, सदैव रतिव्यसन का सेवन करता था और दूसरे वानरयूथ की आवाज भी सहन न करने वाला था। वानरी जो संतान जनती थी, पुत्रीको छोड़कर पुत्र को मार डालता था। पश्चात् किसी समय वह वानरी सगर्भा हुई। उस वन को छोड़कर उसने अन्य वन में प्रसूति की। उसे पिंगलनेत्र और खूब बड़ी द्रंष्ट्रापंक्ति से युक्त मुखवाला पुत्र हुआ। उसने जननी से पूछा–मेरा पिता कहाँ है? (माँ ने कहा)–हे पुत्र! वह पुत्ररूपी अंकुर का उन्मूलन करने वाला (पिता, जहाँ है, वहीं) रहे, अर्थात् उस पुत्रघातक पिता से तुझें क्या लेना देना है? तब अपने भुजयुगल को फटकार कर, कुपित होकर वह बोला–माँ बतलाओ (कि वह कहां है)! उसे उसके पाप का फल बतलाऊंगा। माँ उसे वहां ले गयी। परस्पर क्रुद्ध होकर दोनों वानर (एक-दूसरे पर) झपटे। नखों और दांतों के प्रहार से घायल शरीर होकर बूढ़ा बंदर रण छोड़कर भाग निकला। दूसरा भी असहिष्णु होकर उसके पीछे-पीछे हो गया,

यहाँ तक कि उसने वन छुड़वा दिया। अत्यंत प्यासे हुए उसने अपने सामने कुछ (द्रव्य पदार्थ) देखा। और जब (एक) हाथ डालकर उस जल के सेर्स पदार्थ) को पीने लगा तो उस लेप (चिपचिपा पदार्थ-शिलाजीत) चिपकर व्यांकुल हो गया ? फिर भी उस मूर्ख ने जल की अभिलाषा करके दूसरा हाथ भी उसी में डाल दिया, तथा घुटने लगाकर मुख भी डाल दिया। जिस प्रकार जानते हुए भी वह हतबुद्धि मूर्ख वानर लेप में चिपककर मरा, उसी प्रकार विषयसुखों का प्यासा होकर मैं भी, किंचिन्मात्र मधु को चाटने में आसक्त होकर सर्पों से संकीर्ण कूप में पड़कर विनाश को प्राप्त नहीं होऊंगा ॥7॥

(तब) विनयश्री ने यह कथानक कहा, और वर (जंबूस्वामी) को एक संखिणी नामक कबाड़ी का दृष्टांत दिखलाया। किसी नगर में दारिद्र्य से पीड़ित संखिणी नामका कबाड़ी रहता था। वह प्रतिदिन वन में लकड़ी आदि इकट्ठा करने को जाता और भोजन भर भी बड़े क्लेश से पाता था। कुछ दिनों में खाने से बचा बचाकर उसके पास एक रूपया रोकड़ (जमा) हो गया। पत्नी के सहयोग से बहुत उत्कंठापूर्वक एक कलश में रखकर रुपये को (कहीं वन में) धरातल में गाड दिया। अथानंतर किसी समय सूर्यग्रहण के अवसर पर प्रातःकाल के समय (कुछ लोग) अपने निवास स्थानों को छोडकर तीर्थयात्रा को चले, और मणि, रत्न व सुवर्ण से भरपूर उन लोगों ने संखिणी की उस निधि को देखा, तथा कुछ खड़ खड़ करते हुए उस अल्प मूल्यवान रुपये के संचरण में ऐसी मंत्रणा की, इस रुपये के द्वारा लोगों को ऐसा जताया (बतला) जा रहा है कि (तीर्थयात्रा के) अपने (इस) मार्ग से जाने वाले लोग हमें (मुझे) कुछ ग्रहण करावें, अर्थात इस घड़े में एक सिक्का डालकर इसे पूरा कर दें। ऐसा सोचकर वे सब लोग एक एक श्रेष्ठ सुंदर मणिरत्न उस घड़े में डालकर उसे फिर वापस जमीन में गाडकर पुनः अपनी-अपनी यात्रा पर प्रवृत्त हो गये, और तीर्थस्नान करके अपने घर आ गये। पश्चात् किसी समय उत्सव के दिन (कबाड़ी की) स्त्री ने कहा-नाथ! आज उस रुपये से आनंद मनाया जाये। तब संखिणी ने उस स्थान को खोदा जहाँ कलश रखा था, तो

उसने सुवर्ण और मणियों से भरा देखा। उसने उत्कंठा से उत्कंठित होकर कहा-प्रिये देखो। मेरे जैसा पुण्यवान् और कौन दिखाई दे? (दैवयोग) से अर्जित खजाने के द्वारा मैं अपने बुद्धिबल से (प्रे सिद्धिनय करने का) एक अन्य उपाय रचता हूँ। इस निधि से न तो कुछ लूंगा न इसे खो दूंगा, अपना भोजन तो कबाड़ीपन से भी चलता रहेगा। फिर एक मणिको एक एक कलश में रखकर अत्यधिक धन की आशा से गाड़कर छोड़ दिया। (उन्हीं) अन्य यात्रियों ने (किसी दूसरे) पर्व पर मार्ग में फिर उस निधि को देखा, और (घड़े में एक ही रत्न देखकर) यह निधि कैसे पूरी हो, यह बात उन लोगों के हृदय में अर्थात् समझ में नहीं आयी। (अंततः उन लोगों ने खोज खोज कर)उस निधि से एक एक करके सब रत्न ले लिये और घड़ों को खाली करके (वहीं) छोड़ दिया। जब (पुनः) संखिणी ने पत्नी के साथ उस निधि को उखाड़ा तो (सब घड़ों को); रिक्त देखकर हाथों से सिर पीटने लगा।- वह सुंदर रत्नसमूह तो दूर ही रहे, जो मूल में एक रुपया था, वह भी विनष्ट हो गया। स्वाधीन लक्ष्मी को तो भोगता नहीं, और श्रेष्ठ स्वर्गसुख की आकांक्षा करता है, ऐसे इस वर के लिए उस संखिणी के समान शून्य निधि (खाली घड़े) ही हाथ लगेगी ॥8॥

कुमार बोला-हे सुंदर आंखों वाली भामिनी! रति (रमण, क्रीड़ा) सुख के कारण मैं भ्रमर के समान विनाश को प्राप्त नहीं होऊंगा। शतपत्र के भीतर गया हुआ गंध का लोभी मुग्ध भौंरा दिवस के अस्त होने को नहीं जान पाता। रात्रि के संगम (प्रदोषकाल) पर कमल संकुचित हो जाता है, भौंरा उसमें से निकल नहीं पाता, व उसी में मर जाता है। इसी प्रकार विषय सुख का त्याग न करके मैं विनाश के मार्ग पर नहीं चलूंगा, यही मेरा मंतव्य है। इस पर रूपश्री बोली-ऐसे ही पराक्रम (आत्माभिमान) से एक सर्प अपने आपको कालकवलित करके विनाश को प्राप्त हुआ। किसी समय पृथ्वी में अनेक सत्वों को उत्पन्न करनेवाला शिखि बल्लभ वर्षाऋतु प्राप्त हुआ। अंबर में रज शांत हो गया। पयोधर (मेघ) अधोमुख होकर आकाश में लटक गये, मेघपटल से तारकगण आच्छादित हो गये, और काश (घासविशेष) खूब फूल

उठे, इस प्रकार वह पावसलक्ष्मी ऐसी जराजीर्ण वृद्धा के समान प्रतीत हुई, जिसका रजोंबर शांत हो गया है, अर्थात् ऋतुमती न होने से जो रजोवस्त्र धारण नहीं करती, जिसके पयोधर (स्तन) अधोमुख होकर लटक गये है जिसके अक्षि-तारक (आंखों की पुतलियां)घने अक्षि-पटल (मोतियाबिंद) से आछन्न (आवृत्त) हो गये हैं, और जिसका काश अर्थात् खांसी रोग (श्वास) अत्यधिक बढ़ गया है। उत्तम वृक्षों के पत्रों से संघट्टन करता हुआ वारिद समूह गिरिमेखला और शिलातटों पर मंद मंद एंवं हल चलायी हुई क्षेत्र मालाओं में खूब घना, अतः आलापिनी (वीणा) के वादन के स्वर का अनुहरण करता हुआ, और नदी तड़ाग गढ़ों, दर्रों व दहों को भरता हुआ अविच्छिन्न धारा से बरसने लगा। वर्षा गिरने से उछलते हुए जल को धारण करती हुई पृथ्वी ऐसी शोभायमान हो रही थी, मानो स्फटिकमय लिंगों से जड़ दी गयी हो। सात दिनों तक मेघ निरंतर बरसता रहा, और उसने धरातल को जल से पूर दिया । पानी के कारण संचरण (मार्ग) मिलना भी कठिन हो गया, और सारा जग व्याकुल हो गया ॥9॥

तालाबों की पाल (मेंढ) फूट गयी, और जल का प्रवाह बह निकला। नदी की बाढ़ में पड़कर जलचर बह गये। खाद्य पदार्थों के न मिलने से क्रंदन करते हुए बच्चे गलती हुई जीर्णतृण निर्मित कुटियों में लीन हो गये। कुटुंबीजन भूख से व्याकुल होकर सलबलाने लगे और व्यवसाय हीनता के कारण हैरान हो गये। पक्षी अपने नीड़ों में ही निवास करते रह गये, और बार बार मूर्च्छित होने लगे। वनचर समुदाय गिरिकंदराओं में स्थित हो गया, और पीड़ित शरीर होकर तड़फड़ाने लगा। जल के प्रवाह में से निवृत्त होकर (बचकर), उथले जल में संचरण प्रवृत्ति से धीरे धीरे चलते हुए एक मतिवृद्ध (प्रौढ़मति) करकैंटे ने स्वयं के आहार के लिए विचरण करते समय एक काला सर्प देखा, जो शरीर को कुंडलित किये हुए अर्थात् कुंडली मारे हुए, विस्तीर्ण फण को ऊपर उठाये हुए, मानों सारे जग को भक्षण करने के मन (इच्छा) से अपनी जीभों को लपलपा रहा था। अब मैं भुजंगम से खाया गया, कहां लुकूं और किस उपाय से इससे बचूँ? (ऐसा सोचकर) पहले देखी हुई

एक नकुल गुफाका स्मरण करके उस करकैंटे ने तुरंत जय-जय शब्द करके कहा-हे स्वामिश्रेष्ठ! मुझे मार डालिए और क्षुद्र जंतु योनि से उद्धार कर दीजिए। ऐसा कहकर, उट्ठिग्न मुख करके अश्रुप्रवाह छोड़ता हुआ रोने लगा। सर्प ने कहा- तुम्हारा चरित्र लोगों में बड़ा विपरीत और आश्चर्य कारक है इसका क्या कारण है? करकैंटा कहने लगा - तू हमारा कुलदेवता है, तुम्हारे द्वारा खाया जाकर मैं शिवपथ को पाऊंगा, इस कारण तो हर्ष से जय जयकार की ऐसा मानिए और जो रोया उसका कारण भी सुन लीजिए! मेरा कुंटुब बहुत संतानों वाला है। मुझ एकके बिना अकेले (निराश्रय) होकर उसका कैसे क्या होगा? इसलिए हे देव! दया कीजिए, और उसको भी खा लीजिए! सर्प ने कहा-तुम्हारा कुटुंब कहां रहता है, यह बताओ! करकैंटे के चलने पर वह सर्प भी उसके पीछे पीछे चला। गिरिकंदरा में ले जाकर करकैंटे ने कहा-भट्टारक, यह देखिये हमारा कुल! भीतर प्रवेश करके इसे खा लीजिए! प्रसन्न होकर वह (सर्प) प्रविष्ट हुआ, वहां लाल मुंहवाले नकुल समूह ने उसे देखा, और फाड़कर खा लिया। अभिलाषा के वशीभूत हुआ सर्प अधिक की ओर ही लक्ष्य करता है, अत: अपने इष्ट (दुग्ध) को तो देख लेता है किंतु प्रतिहारको नहीं देखता। और अधिक अनुपलब्ध (सुखों) की इच्छा करने वाले प्रियतम के उपलब्ध सुखों का भी विनाश उसी तरह हो जायेगा, जिस प्रकार शिव और माधव धूर्तों द्वारा ललचाया हुआ राजपुरोहित ठगा गया॥10॥

इस कथा को सुनकर कुमार ने कहा अपने आधीन विष को (भी) क्या तुरंत त्याग नहीं दिया जाता? रात्रि में एक श्रृगाल नगर में प्रविष्ट हुआ और (उसने) रास्ते के मुंह पर ही एक मरा हुआ बैल देखा। (उसे) खाते खाते उसके दांत व मुख छिद गये और वह रात्रि के अंत होने की अवधि को भी नहीं जान सका। प्रभात होने पर वृषभ के मांस से मोहित वह श्रृगाल लोगों के संचार के कोलाहल से सचेत हुआ। भय से काँपता हुआ वह (नगर से) निकल भी नहीं सका और यह सोचकर निश्चल होकर पड़ रहा--अपने को मरा हुआ दिखला देता हूँ, पुन: रात आने पर वन को चला जाऊंगा। दिन में नगर के लोगों ने मिलकर देखा। एक मनुष्य ने जिसका रोग बढ़ा हुआ था,

औषधि के लिए उसकी पूंछ व कान काट लिये। जंबूक सोचने लगा-अभी भी धन्य (भाग्य) हूँ, यदि एक बार पुण्य से छूट जाऊँ तो बिना पूंछ और कानों के ही जी लूँगा। एक दूसरा कामी पुरुष बोला- इसका दाँत ले जाता हूँ, (उससे) प्रिया का मन वश में करूंगा। और पत्थर लेकर सचमुच ही उसके दांत तोड़ डाले। (यह) जानकर श्रृगाल अपने हृदय में खेद करने लगा-पुंछ व कान के काटे जाने को तो मैंने तृण के समान समझा, परंतु दांतों के बिना तो जीने की आशा दुष्कर ही है। ऐसा सोचकर (लोगों से) छूटते ही जब वह अपने प्राण लेकर भागा, तो सिंह के समान श्वान ने उसे गले से पकड़ लिया, और जान से मार डाला, तथा शोर मचाते हुए कुत्तों के समुदाय ने मिलकर खा डाला। इस प्रकार जो मूढ़ विषयांध होकर रहता है, वह अवश्य विनाश को प्राप्त होगा, इसमें क्या भ्रांति है? (इस प्रकार) कथा वार्ता करते करते आधीरात बीत गयी, तो भी कुमार संसार में आसक्त नहीं हुआ। उसी समय विद्युच्चर नामका चोर चोरी करने के लिये नगरी में भ्रमण कर रहा था ॥11॥

सुदृढ़ गांठ से अपने परिधान में शलाका (डंडा) लगाये हुए, और पृथुल (विशाल) कटितल पर छुरी को स्वाधीन किये हुए अर्थात लटकाये हुए, शिर से चारों और घना जटाजूट बांधे हुए, अगुरु के उद्गार व धूप से पवन को सुगंधित करते हुए, श्वेत तांबूल (पका पान) पत्र का बीड़ा चबाते हुए दाहिने हाथ से तलवार घुमाता हुआ, कामलता नामक कामिनी के लिए घर छोड़कर निरंतर वेश्याबाट को देखा (जाया) करता था, जहां पर वेश्याएँ खूब सजे हुए रूपवाले मनुष्य को भी रूपये से रहित अर्थात् धनहीन होने से विरूप (कुरूप) मानती हैं। क्षण भर के लिए देखा हुआ (धनवान्) पुरुष ही जहाँ अतिवल्लभ कहा जाता है, और जीवन भर प्रणयासक्त रहने वाले पुरुष को (भी निर्धन हो जाने पर) ऐसा कहा जाता है कि इसे जन्म भर कभी देखा ही नहीं जो नकुल संतान होकर भी भुजंगों (सर्पों) के दंत नखों से व्रणित (घायल) होती हैं (यह विरोधाभास है), अर्थात वे नकुल-हीन कुल में उत्पन्न होती हैं, और भुजंगों अर्थात् कामीजनों के दांतों व नखों से उनके अंगों पर व्रण लगा दिये जाते हैं (विरोध परिहार)। (कामभोग से) कभी भी तृप्त न होने

वाली कामदेव की दीपिकाएं होते हुए भी वे स्नेह संग से परित्यक्त होती हैं (विरोधाभाव), अर्थात् कामवासना का उद्दीपन होने पर भी किसी से सच्चा स्नेह (प्रेम) नहीं करतीं (विरोध परिहार)। रक्त चूसने में दक्ष व लगी हुई शाकिनियों के समूह के समान वे कामुक व्यक्तियों का रक्त (शक्ति व धन) चूसने में दक्ष होती हैं। मेरुपर्वत की समभूमि के प्रतिबिंब के समान होती हैं। मेरुपर्वत की समभूमि किंपुरुषादि देवों से सेवित होती है, वेश्याओं के नितंब किंपुरुषों अर्थात् क्षुद्र मनुष्यों से सेवन किये जाते हैं। वे राजनीति के समान ऐश्वर्यसंपन्न होती हैं, और अनर्थ संयोगों को दूर से ही छोड़ देती हैं। राजा की नीति ऐश्वर्यवृद्धि करने की तथा राजा और प्रजा को हानि करने वाले कारणों को दूर से ही छोड़ने को होती है, उसी प्रकार वेश्याएं ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवानों को तो चाहती हैं, और अर्थहानि के संयोग अर्थात् जिन लोगों से कोई अर्थलाभ होने वाला नहीं ऐसे धनहीन लोगों का संपर्क दूर से त्याग देती हैं। जिनके अधरों में राग (प्रेमरस) भी विद्यमान है और मदन (कामदेव) भी, तथापि वह पुरुष विशेष के साथ प्रवृत्त नहीं होता (यह विरोधाभास है), (विरोध परिहार) जहां ओठों व अधम (अहरे) पुरुषों में राग होता है, और जो नीच मदन (काम) से युक्त हैं, अथवा जिनके ओठों में नीच पुरुषों के प्रति राग व काम रहता है, वहां पुरुष विशेष अर्थात् उत्तम पुरुष में उसका प्रवृत्त न होना स्वाभाविक है। और जहां दूसरों को कौतूहल (औत्सुक्य) उत्पन्न करने के लिए ही कटिवेश की विरचना (सजावट) की जाती है, लज्जा से नहीं और सारल्य उनकी बाहुलताओं में तो कह दिया गया है, परंतु उनके परवंचक हृदय में किसी ने नहीं देखा अर्थात् उनके हृदय की कुटिलता पर किसी ने लक्ष्य नहीं दिया। और जिनमें कामीजनों के मन को आर्कषण करने वाली रुचिर (सुंदर) वेशरचना तो होती हैं, परंतु स्वाभाविक रूप (नैसर्गिक सौंदर्य) नहीं होता। और उनमें जो मीठापन है, तो यह गुण श्रद्धा के लिए, अर्थात् श्रद्धा के कारण नहीं, क्योंकि वह तरुणाई में तो चित्त का अनुरंजन करता है, परंतु पीछे पीड़ा देता है। अपने शारीरिक मंडन में तो उन्हें सब वर्णों (रंगों) की अपेक्षा (चिंता) रहती है, परंतु विटजनों के संबंध में उन्हें किसी वर्ण-जाति की कोई

अपेक्षा नहीं रहती। और उनका गौरव (गुरुता, गुरुभाव) उनके रमण (भोग करने वाला धनी व्यक्ति अथवा नितंब प्रदेश) में होता है, निर्धन मनुष्य में नहीं। जिस प्रकार से किसी छत्ते से उड़ायी हुई निपुण मधुमक्खियां मधु के उस सरस (मधुयुक्त) छत्ते को रिक्त करने के लिए आदरपूर्वक खूब देर तक चमूती अर्थात् चूस लेती है, उसी प्रकार से ये क्षुद्र (दुष्टाभिप्राय) व निपुण वेश्याएं किसी सरस (स-काम, स-धन) व्यक्ति को रिक्त (धन-हीन) करने के लिए आदर (अनुराग) पूर्वक चिरकाल तक आलिंगन करके चुंबन करती हैं (अर्थात् पूर्णतः चूस लेती हैं) ॥12॥

कोई वेश्या किसी नये नये धनिक को गिनती (आदर देती) हुई किसी हतधन अर्थात् धनहीन मनुष्य के संसर्ग की अवगणना (अवहेलना) करती हुई ईर्ष्या के बहाने से (कि तुझे यहां देखकर उस धनिक को ईर्ष्या होगी) उसका गृहप्रवेश निषिद्ध करके, उसे हटा देती है, और घर में दूसरे धनी को प्रवेश कराती है। किसी मतिहीन (किंकर्त्तव्यविमूढ़) गणिका ने, धूर्त्त कामुक के द्वारा अर्पित झूठे प्रेम को देखकर खेद करते हुए सोचा कि अब कार्य समाप्त हो चुकने पर क्या किया जा सकता है? किसी ने अपना भाड़ा लेकर भागे हुए विट को देखा तो दौड़कर उसको कछौटे व चोटी से पकड़ लिया। पीछे जो चौगुना धन मिला, उसे अपनी श्रृंगारपिटारी में डाल लिया। (अत्यासक्ति के कारण) धन दिये जाने पर भी कोई वेश्या (यह निर्धन है, ऐसा सोचकर) उसके प्रति निरपेक्ष रहती है, (उसे स्वीकार नहीं करती) और किसी अन्य धनी के प्रति बड़ा अनुराग दिखलाती है। (ऐसा देखकर) मुझे अपनी भेंट नहीं मिली, इस प्रकार कोई किसी गणिका को उलाहना देता (फिरता) है। विद्युच्चोर यह सब देखता हुआ चला जा रहा था, तो कहीं उसने मिथुनों के सुरत (व्यापार) को देखा। कहीं गाढ़ आलिंगन के द्वारा स्तनों के अग्र भागों को आक्रांत करके कामस्थानों के सुंदर चुंबन में पटुता दिखाई जा रही थी। कहीं दांतों का अग्रभाग से बिंबाधरों का पीड़न, भ्रूभंगिमाका मनोहर रूप से नर्तन, स्वेदसलिल कणों से सुंदर कपोल और आधे अक्षर स्खलित होते हुए (प्रणयक्षणों की) वार्ता का कलकल हो रहा था। कहीं स्त्री पुरुषों के

जोड़े ग्राम के निकटवर्ती वन के समान हो रहे थे। ग्राम का निकटवर्ती वन हतवृक्ष होता है अर्थात् उसके वृक्ष काट भी लिये जाते हैं, व नाना प्रकार से आहत भी होते है, उसी प्रकार स्त्री पुरुष युगल भी परस्पर के वक्षस्थलों को आहत कर रहे थे, और भी वे स्त्री पुरुषों के जोड़े राजकुल के समान कारण दक्षा थे-राजकुल न्यायालय, मंत्री, सेना, दुर्ग आदि अनेक कारणों-साधनों से परिपूर्ण होता है, मिथुन कामक्रीड़ा के समस्त साधनों (व आसनों) में परिपूर्ण (व दक्ष) थे। ज्ञानावरणादिरूप अथवा प्रकृति स्थिति आदिरूप अनेक प्रकार के कर्म विकारकृत बंधन के समान, वे जोड़े अनेक प्रकार के रतिबंध रच रहे थे। समृद्ध किसान के समान उन्होंने अपने कंधे अर्पण कर रखे थे, समृद्ध किसान सहारे के लिए (दूसरे बंधुओं को) कंधा अर्पित करता है; युगलों ने परस्पर आलिंगन में अपने कंधे अर्पित कर रखे थे। युगल किसी अंधे की वधू के समान थे-अंधा व्यक्ति अपनी वधू को यत्र तत्र अनुचित स्थानों में नख-व्रण लगा देता है। उसी प्रकार युगल भी विवेक किये बिना परस्पर को अनुचित स्थानों में नख व्रण लगा रहे थे, और इस प्रकार स्वर छोड़ रहे थे, मानों धनुर्धरों का युद्ध हो, जिसमें बाण छोड़े जाते हैं। फारक्क धारण करने वालों के समान वे करवाल (तलवार, युगलपक्ष में हाथों से बाल) खींच रहे थे, नदी के पुलिन (तट) के समान वे अत्यधिक रेत (बालू युगल पक्ष में रेतस्-रज-वीर्य) से युक्त थे, अथवा नदी के रेत एवं जल के आगार तट के समान, युगल रेतसरूपी जल के आगार थे। युगल दानव सैन्य के समान थे-दानव सैन्य में शुक्र अर्थात् शुक्राचार्य उत्पन्न हुए थे और युगल समुत्पन्न शुक्र अर्थात् (रतिक्रीड़ा) अत्यन्त वीर्यवान थे, तथा व्रणों से विकलांग अर्थात् घायल होकर मूर्च्छित हो रहे थे। इस प्रकार विद्युच्चर ने शयनों पर आसीन मिथुनों को, जिनके नेत्र मुकुलित हो रहे थे, संपन्न किये हुए रत के आयास से थककर निद्रा में घुलते (डूबते) हुए देखा ॥13॥

प्रासाद पंक्ति की छाया (ओट) में चलते हुए, घूमते हुए नगर रक्षकों के द्वारा किये जाते हुए कोलाहल व पहरेदारों के श्वास को मौन हुआ जानकर, वह अरहदास के घर को प्राप्त हुआ और जंबूस्वामी के वासगृह की भित्ति का

आश्रय लेकर चोरवृत्ति से अर्थात् छिपकर वहां खड़ा हो गया, एवं सोचने लगा-यदि इस असाध्य (दुर्लभ) धन का अपहरण न करूं, तो मेरा चोरपना ही क्या? इसके अनंतर (वहीं खड़े खड़े) उसने वर वधुओं के उस अवशेष कलालाप को सुना और निःशेष कारण (वृतांत) को जान लिया। तब तक इधर जंबूकुमार की माता जलती हुई भूमि के समान (दीर्घ और उष्ण) श्वास ले रही थी। श्रीनेमिकुमार (22 वें जैन तीर्थकर) के घर छोड़ते समय जिस प्रकार शिवदेवी दुःख से विकलहृदय हुई थी। उसी प्रकार विकलात्म होकर बार-बार वह घर आंगन को छोड़ती (आती-जाती) थी, फिर पुत्र के वासगृहका द्वार देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ़प्रतिज्ञ है, अथवा वधुचतुष्क की (काम) विद्या के वश में हो गया? क्या अभी भी पुत्र का मन तपश्चरण में ही लगा है। अथवा उसे वधुओं के मुखराग का (कुछ) लोभ हुआ है (अर्थात् वधुओं में आसक्ति हुई है)? क्या अभी भी वह मोक्षवास को ही (श्रेष्ठ) मानता है, अथवा क्या उसके कंठ में प्रियाओं का बाहुरूपी पाश पड़ गया है? क्या अभी भी अपने को सिद्ध बनाना चाहता है, अथवा तीक्ष्ण कटाक्ष शरों से बिंध गया? इस प्रकार चिंता चक्र पर चढ़ाई हुई उद्भ्रांत चित्त व विस्मत जिनमती ने बिना डरे हुए, भित्ति से लगकर छिपे हुए चोर को देखा ॥14॥

(जिनमती ने) उसे पुकारा-अरे! अंधेरे में यह कौन आदमी है? तस्कर ने कहा-माँ डरो मत, तू जो हृदय से चाहती है, यह बात सफल हो। मैं विद्युच्चर नामका चोर हूँ, रात्रियों में नगर का भ्रमण करने वाला निशाचर हूँ, तथा शिष्टजनों द्वारा दूषित अपकर्म करता हूँ। ऐसा कोई घर नहीं है, जिसे मैंने लूटा नहीं। एक तेरा ही घर नहीं लूटा। इसमें भी आज चोरी करूँ, इस प्रकार मेरा मन प्रेरित हुआ। तब कुमार की माँ बोली-पुत्र तुझे जो रुचे वह द्रव्य ले ले। यह सुनकर चोर ने कहा-मैं तेरा धन पुआल के समान समझता हूँ। यहाँ मेरे चित में चोरी की भावना ही प्रवृत्त नहीं हो रही है। मुझे तो दूसरा ही चिंताशल्य उत्पन्न हुआ है। तू बार बार घर में प्रवेश करती है, घर में फिर प्रांगण में दिखाई देती है, फिर द्वार कपाटों को देखती है, तो हे माँ! इसका क्या

कारण है? सो बताओ! गद्गद वचनों और अश्रुजल से आर्द्रनेत्रों से वह उसको वृत्तांत कहने लगी-हे पुत्र! हमारा एक ही पुत्र है, जो बांधवों और माता पिता सबके लिए सुखदायक है। आज ही व्यवस्था (विधि) पूर्वक उसका परिणय कराया गया है। और बिहान (प्रभात) होते ही वह शास्त्र विधि के अनुसार (दिगंबरी) दीक्षा ले लेगा। पुत्रवियोग के कुठार ने हृदय को फाड़कर खंड-खंड कर दिया है, और अंगार में डाले हुए लवण के समान शतशः विदीर्ण कर दिया है॥15॥

विद्युच्चर करुणारस से रंजित शुद्ध मन और स्नेह प्राप्त करने से वर्द्धित स्नेह होकर ये प्रतिवचन बोला-मैंने वधुओं के द्वारा वर के साथ समस्त किया हुआ उत्कंठाजनक वार्तालाप सुन ही लिया है। तुम्हारा पुत्र किसी भी तरह संसार में प्रवृत नहीं होगा, यह वधुओं के बड़े-बड़े न्याय से जीता नहीं जा सकता। हे माता! एक और युक्ति प्रकट करता हूँ, जिससे (संभवतः) अभी भी कार्य की गति (अर्थात् अभीप्सित कार्य) विघटित न हो। हे अम्मा! यदि तू मुझे यहाँ (भीतर) प्रवेश करा दे तो मैं ऐसा बोलूंगा जिससे उसकी संसार में रति बढ़े। मैं ऐसे श्रुतिशास्त्रों को जानता हूँ, जिनसे लोगों की जैसी चित्तवृत्तियां है, उन्हें जान लेता हूँ, और जो लोगों का वशीकरण, स्तंभन व मोहन करने वाले, व सारे भुवन को भी विक्षुब्ध कर देने वाले एवं लड़ा देने वाले है, तथा ऐसा नेत्रांजन भी जानता हूँ, जो ज़ागृतों को सुला देने वाला एवं सुख से सोये हुओं को जागरण का आनंद देने वाला, तथा विघटित होती हुई (छूटती हुई) महाधृति (महान प्रीति-सुख) को भी जोड़ने वाला, और प्रियजनों के संगको तोडने वाला है। अतः यदि मैं कुमार को वधुओं के मुखकमलरूपी मधु का लंपट भ्रमर न बना सकूँ, (अर्थात् कुमार को वधुओं के प्रति असंत आसक्त न कर सकूँ) तो विहान होते ही मैं भी इसके साथ तपश्चरण का अनुसरण करूँगा ॥16॥

तब पुत्र दुःख से कातर कुमार की माता ने उस चोर वीर (भ्राता) के सरल व निश्छल वचनों से कहे को सुनकर, ढीले बाहु कंकणों से (शब्द

करते हुए) द्वार कपाटों को छूकर वधू का नामोच्चारण करके दोनों किवाड़ों को ढकेल दिया। किसी से माँ को आयी जानकर पुत्र ने माँ के पैरों को नमस्कार करके पूछा-माँ क्या बात है जो इस सोने के समय अर्द्धरात्रि को ही तू आ गयी ? माँ ने कहा—कुमार समझो (सुनो)-जब तू गर्भ में ही था तो मेरा एक कनिष्ठ भाई जो तभी से देशांतर में रहता था, वह आज तेरा विवाह कार्य जानकर अनेक वर्षों से तुम्हारे दर्शनों के अनुराग से बंधा हुआ, एवं ऐसी दुर्लभ अभिलषित गोष्ठी श्रद्धा (अभिलाषा) से यहां आया है और द्वार पर ठहरा है, परंतु वह रात्रि में विराम (रुकना) नहीं चाहता। तब कुमार बोला-माँ! वे बहुत बड़े अर्थात पितृस्थानीय हैं, और मैं लघु अर्थात् पुत्र स्थानीय हूँ, यह सोचो! (अतः) स्वधर्म (स्वकर्तव्य) में देर क्यों ? वे ससम्मान आवें (अर्थात् सम्मान पूर्वक उन्हें ले आओ)। पुत्र की अनुमति मिलने पर भीतर ही खड़ी हुई जिनमती ने स्थिर एवं अत्यंत स्नेहपूर्ण कोमलवाणी से भाई (विद्युच्चर) को हाँक लगायी ॥17॥

यह सुनकर अपने थकावट भरे शरीर का वह पुराना वेष बदलकर उसने अपना ऐसा रूप प्रकट किया-किरातों के समान मृगछाला का पटु (दक्ष या फुर्तीला) वेश, आजानुदीर्घ परिधान वस्त्र, बांका उरोबंधन, कमर में कटिवस्त्र (धोती) बांधे हुए, कर्णांत तक लहराती हुई केशलटाऐं, पीठ पर डाला हुआ केशर समूह, खुली हुई विसदृश (असमान या अद्भुत) कूर्चा को धारण किये, संपूर्ण शरीर को उत्तमांगपर्यंत आच्छादित किये, शिथिल अधरोष्ठ व दंतुर व (दांत दिखाई देता हुआ) मुख तथा डोलते हुए बाहु और सुंदर कर धारण किये हुए वह विद्युच्चर वासगृह में प्रविष्ट हुआ। उसको देखकर कुमार थोड़ा नत शिर होकर (प्रणाम करते हुए) उठ खड़ा हुआ और बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। परस्पर स्नेहपूर्वक आलिंगन करके दोनों दो पीठों पर बैठ गये। पथश्रांत मामा से (कुमार ने) कुशल समाचार एवं यह पूछा हे मामा! इतने दिनों तक कहां भ्रमण किया? विद्युच्चर ने कुशल कहा-(और बोला) हे कुमार सुनो! वाणिज्यकार्य से सुदृढ़ चित्त से मैंने जैसे काल गमाया और जिस-जिस देश का भ्रमण किया ॥18॥

दक्षिण दिशा में समुद्र को धोरकर मलयाचल, सिंहल, केरल, तोसल, (महा) कौशल, लंजिया व तंजिया प्रदेश, चोडदेश श्रीपर्वत गंगवाडी और उसके साथ पांड्य, द्रविड़, आंध्र देश एवं चीन का भ्रमण किया। फिर कर्नाटक, कांचीपुर, कोंतल, सह्याद्रि, महाराष्ट्रदेश और विदर्भ तथा वज्राकर और भद्ररंग में घूमा। फिर बरार, ताप्तीतट, नर्मदातट, विंध्य प्रभासतीर्थ, पैठण, अभीर चेउल्लदेश, जहाजों का स्थान (बंदरगाह) भरुकक्ष (भडौच), कक्ष, सोपारक (सूरत) कोंकण, नागर देश, सिंधु तट, कावेरी तट, कडहत (?) वइर देश (?) किष्किंधा, तोयावली द्वीप, पारस देश, हंस द्वीप जहां के लोग दूसरों को लूटने वाले (लुंठ) और अव्यक्त वचन बोलने वाले हैं, उन द्वीपों का भ्रमण किया। पश्चिम से स्थली मंडल (राजस्थान), बालभ (बल्लभी ?), सोमनाथ, सौराष्ट्र तथा महान् भिल्लमाल (भीनमाल) जिसकी रचना एक विशाल सुवर्णद्रोणी के समान है, फिर अर्बुद (आबूपर्वत), लाटदेश, मेवाड, चितौड़, मालव तथा तलहार को देखा। फिर पारियात्र, अवंती तथा भटों के लिए दुर्गम ताम्रलिप्ती को देखा। उत्तरदिशा से शाकंभरी (सांभर अजमेर), गूर्जरत्रा, खसदेश, बर्बरदेश, टक्कप्रदेश, करहाट, काश्मीर, हम्मीर, कीर देश, तरुष्क (तुरुक्क-तुर्की), तथा ताजिक बज्जर देश, सिंधु व सरस्वती का तट, म्लेच्छ देश, केक्काण देश सहित लौहपुर एवं अन्य (स्थानों) को छूता हुआ बालुकासागर, स्त्रीराज्य व अब्ज को पहुंचकर प्रेमतत्पर वचन बोलने वाली पर म्लेच्छ जाति के देश एवं अश्वमुख गोमुख हरिमुख व्याघ्रमुख और वानरमुख इन देशों में गया। पूर्वभाग में गौड़देश, कुरु (जांगल), कन्नौज, राढ, वरेंद्रश्री और सुंदर श्रीमध्यदेश को देखा। फिर गोल्लादेश, बंग, अंग, कुर्ग, कलिंग और महान उड़ियों (उड़ीसा निवासियों) के जालंधर (?) गंगा-यमुना सौंदर्य के आकर कामरूप, डहाला (डाहल जबलपुर) प्रयाग, चुनार वाराणसी, बडहर, सप्तगोदावरी, भीम, गंगोदधि (गंगासागर) तथा शुभ (सुंदर) योधनद्वीप की यात्रा की।

(यह सब सुनकर) सिर हिलाकर विस्मित चित्त से कुमार बोला–मामा! तुम वणिक्वर नहीं हो। इस प्रकार की शक्ति से तुम प्रत्यक्ष दैत्य हो, और अवश्यमेव एक बड़े वीरपुरुष हो ॥19॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर–कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी–चरित्रनामक इस श्रृंगार वीर--रसात्मक महाकाव्य में 'वधूवर आख्यान' नामक नवम संधि समाप्त॥

ooo

संधि-10

जहाँ ऐश्वर्य से, राजा के (निंरतर) नैकट्य से अथवा कलह से काव्य गुण उत्पन्न होता है, वहाँ उस काव्य के लिए वीर कवि ने जलांजलि दे दी है॥1॥ गुड़ादिक से जहाँ (व जिस प्रकार) भिन्न भिन्न माधुर्य की उपलिब्ध होती है, उसी प्रकार वहां वीर कवि की वाणी में उत्कृष्ट रस भिन्नता निष्पन्न होती है ॥2॥ कुशल समाचार पृच्छ आदि के द्वारा आदर प्राप्त छद्म मामा विद्युच्चर, स्वजनों के मन में उद्वेग उत्पन्न करने वाले अरहदासपुत्र से इस प्रकार बोला- ॥3॥

हे शुद्धाचरण जंबूकुमार! तुम कामदेव के अवतार हो, और लोक के एक मात्र श्रेष्ठधन हो। तुम्हारे नेत्र हरिण के समान सुंदर, चंचल व दीर्घ हैं, और मुख पूर्णचंद्रमा के समान नेत्रों को आनंद देने वाला हैं अपने वचनामृत से तुम सज्जनों के कानों को प्रीणित (तृप्त) करने वाले हो, और तुमने महाराज कर्ण को भी मात करने वाले त्याग को अंगीकार किया है। तुम्हारे गौर वर्ण से संपूर्ण गिरिशिखर धवल हो रहे है। श्रृंगार रूपी कमल की मकरंद के लिए तुम भ्रमर हो (अर्थात् कामदेव के श्रृंगारकमल का समस्त मकरंद तुम्हीं ने पी

लिया है, अतः भुवन में तुम्हीं सुंदरतम हो)। तुम्हारे बाल भृंगावलि के समान अत्यंत काले हैं। बालसूर्य की किरणों के समान तुम्हारा शरीर तेज से वेष्टित (व्याप्त) है। तुम्हारा अंग-अंग लक्ष्मी (सौंदर्य लक्ष्मी एवं विजय लक्ष्मी) से विभूषित है, और कीर्तिलता के तो तुम मूल अंकुर ही हो। शत्रुभटों की रमणियों को (उनके वीर पतियों को स्वर्ग भेजकर) रुलाने वाले हो, और वंदीजनों द्वारा पढ़े जाते हुए जय स्तोत्र के साथ संग्राम में वैरियों का भंग अर्थात् विनाश उत्पन्न कर देते हो। पराजित होकर आये हुए केरल सैन्य को तुमही प्रफुल्लित करने वाले हो और तुमने सुख की निवासरूप जयलक्ष्मी को प्राप्त कर लिया है। तुम सुंदर हो, और तुम में परम विवेक भी है, तथा तुम (स्वयं) जानते हो कि यह संसार सुख अत्यंत दुर्लभ है। (ऐसी) लावण्यलक्ष्मी और नीरोग (स्वस्थ) शरीर तुम्हें छोडकर बताओ और किसके पास है? ॥1॥

एक के पास भोजन करने की शक्ति है तो भोजन नहीं, दूसरे के पास भोजन है, तो खाने की शक्ति नहीं। एक को कामोत्साह है तो कामिनी नहीं, दूसरे को रमणी है तो रमण शक्ति नहीं। एकको दान प्रवृति है तो धन नहीं, दूसरे को द्रव्य है तो दान का व्यसन (आसक्तिरुचि) नहीं। जिसे दोनों पक्ष (भोग भी व भोग शक्ति भी) संप्राप्य हैं, वह प्रव्रज्या द्वारा अपने आपको प्राप्त सुखों से क्या वंचित करेगा? लिंग (साधुवेश) का प्रतिपादन भिक्षा के निमित्त से किया गया है, जो भाग्यविहीन आलसियों के लिए अत्युत्तम है। इससे क्या सिद्ध होगा? यह विचार करो, और शुष्क (निरर्थक)(काय) क्लेश से अपने को मत तपाओ। तप नामकी वस्तु शरीर का एक कर्म है, इसे किस कारण से करना चाहिए और इसका क्या फल होगा? जीव को शुद्ध व अबद्ध (निर्गुण-अकर्त्ता) तथा तन-मन और वचनों की चेष्टाओं से अस्पृष्ट रहने वाला कहा गया है। आत्मा के लिए इस अतिविशेष कायक्लेश के द्वारा कुछ भी विशेष (हित) नहीं किया जाता अथवा उस आत्मा में इस अतिविशिष्ट कायक्लेश के द्वारा कोई भी विशेषता उत्पन्न नहीं की जाती। शरीर का कर्म जीवद्रव्य का अनुसरण नहीं करता और न उसमें कोई विकार विकल्प ही

उत्पन्न करता है। इस (सिद्धांत) के अनुसार अपने कार्य (कर्तव्य) को जानकर ऐसा करो जो अपने शरीर को हितकारी हो ॥2॥

यह शरीर गर्भ से लेकर मरणपर्यंत रहता है, और यह देह न तो स्वयं जीव है, और न जीवका कार्य ही है, मैं (देह से अतिरिक्त अमूर्त शाश्वत व चैतन्यस्वरूप स्वतंत्र आत्मा) हूँ, इस प्रकार के विकल्प को (चार्वाक् दृष्टि से) मोह कहा गया है। वास्तव में यह देह भूतसमवाय (पंचमहाभूत-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) से उत्पन्न होकर स्फुरायमान (प्रगट) होता है। जिस प्रकार गुड़, धात की और जल के योग से मधुशक्ति (मादक-शक्ति) उत्पन्न हो जाती है, वह किसी अन्य (अव्यक्त अमूर्त्त) कारण का कार्य नहीं है उसी प्रकार कर्म भी पुद्गल निर्मित है, और उसी से उत्पन्न हुआ है, वह स्वयं भी पुद्गल ही हैं, किसी अन्य वस्तु का धर्म (स्वभाव) नहीं है। जो कुछ प्रतिभासित होता है, वही जीव है (उसके अतिरिक्त जीव नामकी कोई स्वतंत्र अमूर्त वस्तु नहीं है) और वह दर्पण में मुख के प्रतिबिंब के समान (एक स्वतंत्र वस्तु के रूप में) भासित होता है। जीव में किसी प्रकार का अध्यवसायरूप परिणमन असंभव होने से परलोक का अभाव सिद्ध होता है, और परलोक का अभाव होने से स्वर्ग व मोक्ष नहीं रहते। अतः संसारसौख्य को छोड़कर अपना कोई अर्थ (हित, लाभ) नहीं हो सकता। यह सुनकर थोड़ा हंसते हुए, जो इंद्रियों के व्यापार (प्रवृत्तियाँ, प्रवृत्तिमार्ग) को त्याग रहा था, और जो धर्मरूपी पर्वत शिखर का (उन्नत) वृक्ष था, ऐसे जिनमती के पुत्र ने कहना प्रारंभ किया—

यह समस्त श्रुत (सिद्धांत व तर्क) प्रमेयविषयम है, अर्थात् बहुत कठिन प्रमेयों को लिये हुए है, मिथ्याप्रपंच से रहित व ठीक प्रकार से संतुलन युक्त है, तथा यह सारा तत्त्वार्थ साधु अर्थात शोभन है, और साधारणजन अर्थात् अविचक्षण लोगों के द्वारा (कठिन होने से) उसका उपहास किया जाता है, परंतु साधुजनों के लिए उभयशिव अर्थात् दोनों लोकों में कल्याणकारी है। हे मामा! ऐसी बात आपको छोड़कर और तो कौन कह सकता है, (यह इसका

स्तुतिपरक अर्थ है। श्लेष निंदापरक अर्थ इस प्रकार है-) अथवा आपका यह सारा सिद्धांत प्रमेयविरुद्ध है, मिथ्यात्व के प्रपंच द्वारा साधारण लोगों को धोखा देने वाला है, एवं सज्जनों के द्वारा उपहास करने योग्य है, तत्रभवान् (ततत्थ तत्रत्यः) आपको छोड़कर हे मामा! ऐसा (कहने वाला) और कौन साहसी है ॥3॥

(पंचेद्रियों एवं मन से उत्पन्न) सविकल्पक ज्ञान का सामान्य (उपादान) कारण यदि पंचभूत ही है, तो फिर सभी जीवों के मूर्त्त कारण से उत्पन्न मूर्तज्ञान की परिणति (प्रवृत्ति) एक जैसी क्यों नहीं होती, जिस प्रकार किसी पट के प्रत्येक सूत्र का रंग संपूर्ण पट के रंग के अनुसार ही होता है! इन (भूतों)को आपने ज्ञानका सहकारी निमित्त निरूपित किया है, और इन्हीं को अंतरंग (उपादान) कारण भी सूचित किया है। (किसी भी) कार्य का कारण केवल स्वजातीय लक्षण वाला होता है, जिस प्रकार घटरूप कार्य का कारण उससे (द्रव्यतः) अविलक्षण मृत्पिड ही होता है। अतः (आपके सिद्धांत के अनुसार) अचेतन पृथिव्यादि भूतों से उत्पन्न अचेतन शरीरादिक के समान ज्ञान भी अचेतन ही होना चाहिये। (परंतु ऐसी वास्तविकता नहीं है, क्योंकि ज्ञान एक चेतन तत्त्व है और ज्ञप्ति-जानना यह चेतन की ही क्रिया है) इसलिए सच्चा अंतरंग कारण सुनिये। ज्ञान (रूप चेतन तत्त्व) का कारण ज्ञान (एकात्मक चेतनशक्ति आत्मा) आपने अपनी मोह कहा है, और दर्पण में वदनाभास के समान (मिथ्या) निरूपित किया है। आपका यह सिद्धांत अविचारित व असार है, और देखिये! यह नयों (युक्तियों) से खंडित हो जाता है (मूर्तस्वरूप) दर्पण में (मूर्तिमान) मुख तो प्रवेश करता नहीं, और (स्वशरीरस्थ) मुख को छोड़कर मुख दिखाई ही कैसे दे सकता है? (तब फिर दर्पण में मुख कैसे दिखाई देता है? इसका समाधान यह है कि) दर्पण के तेज से मिलकर नेत्रों का तेज विपरीत हो जाता है (अर्थात् मूलतः दर्पणाभिमुख होते हुए भी लौटकर स्वशरीराभिमुख हो जाता है) इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि दर्पण के तेज से प्रतिहत होकर चक्षुओं के (तेज की गति) निरुद्ध हो जाने से वह दर्पण में स्थित मुख के शुद्ध स्वरूप को नहीं देखता, बल्कि लौटकर (अपने शरीर में

स्थित) वदन के स्वरूप को ही देखता है। उसी प्रकार ज्ञान भी कर्मशक्ति से संवलित (मिश्रित) होकर मिथ्यादर्शन से मिल जाता है, और इस प्रकार मोह के वश में अथवा अविवेक के कारण जो वस्तुस्वरूप (अर्थात् यह कि शुद्धदर्पण तो मुखरहित ही है और मुख वास्तव में दर्पण में नहीं, अपने शरीर में ही है) की अवहेलना करते हैं, ऐस तुम सरीखे लोग ही दर्पण में मुख का होना मान लेते हैं। जो साध्य हो, जिससे भ्रांति नष्ट हो जाये और जिस तरह तुम अपने शुद्ध स्वरूप को जान सको, वैसा क़रो।

मनुष्यत्व प्राप्त करके जो व्यक्ति शुभभाव के द्वारा अशुभ (भावों) का त्याग नहीं करता, तथा शुद्धनय (शुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान व चिंतन) के द्वारा (शुभ व अशुभ) दोनों का ही क्षय नहीं करता, वह अमति (कुमति या मतिहीन) तेली के बैल के समान संसारचक्र में भ्रमण करता रहता है॥4॥

(एक ओर तो) एकांत नय (सांख्यमत) से (आपने कहा कि) जीव अबद्ध है और (सदैव) पूर्णत: विशुद्ध रहता है। पुद्गल कर्म से वह विकृत नहीं होता, और उसके द्वारा इस शरीर के लिए कुछ क्रिया भी नहीं की जाती। (दूसरी ओर चार्वाक मतका आश्रय लेकर) आपने बताया कि आत्मा पुद्गल (स्वरूप) ही है, यह सब (आपका) मोह है। (तो ठीक है) कर्म कीजिये और कर्म के फल को भोगिये। जो सुख व दु:ख (बिलकुल) प्रकट है, उसे (तो) मानिये, और उसे (क्रमश:) धर्म व अधर्म का चिह्न समझिये। धर्म से लोग स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करते है, और पाप से नरक दु:ख भोगते है। धर्म और अधर्म समान कैसे हो सकते हैं? इसे तो मैं ऐसा मानता हूँ जैसा कालकूट विषको दांतों से चबाना। (लोगों के द्वारा धर्मरूपी रसायन तो बड़े दुख से पीया जाता है और पापरूपी विष को लीला (क्रीडा) पूर्वक निगल लिया जाता है। स्वयं धर्म नहीं करने वाले, और पापोपदेश देकर दूसरों की वंचना करने वाले आप सरीखे लोग घर घर मिलते हैं। परंतु जो स्वयं करे, और दूसरे को भी वैसी ही शिक्षा दे, ऐसा कोई विरला ही कहीं कहीं दिखाई देता है, पापकर्म करने में कौन ईश्वर (समर्थ), उपाध्याय (उपदेष्टा) और

अग्रसर (नेता) नहीं बन जाता। जो आत्मा मोहयुक्त है, उसी को संसारी कहा जाता है। और वह अपने कर्मफल से कदर्थित (पीड़ित) होता हुआ चारों गतियों में भ्रमण करता है।

'यह मैं (या मेरा), इस प्रकार की मति जब तक रहती है, तभी तक जीव को कर्मों में रति (आसक्ति) रहती है, और उसी को जीव की बंधगति कहा जाता है- अर्थात् इस कर्मरति के कारण ही जीव को कर्मबंध होता है, व चतुर्गतियों में भ्रमण करना पड़ता है। इस प्रकार के रूप के अभाव अर्थात् ऐसे विकल्प (मैं मेरा) के सर्वथा अभाव से शुभाशुभ कर्मोपार्जन से रहित होने से जो जीव शुद्धावस्था में स्थित हो जाता है, वह आत्मा ही स्वयं मोक्ष, निरंजन, शांत एवं शिव (कहलाता) है ॥5॥

हे मामा! मैं अपने निरंतर कई जन्मांतरों को बतलाता हूँ, उनको सुनिये! (पहले) मैं भवदेव नामका बटुक था। तपश्चरण करके सुखराशि संपन्न देव हुआ। स्वर्ग से च्युत होकर मैं चक्रवर्ती का पुत्र शिवकुमार नामका श्रेष्ठ राजकुमार हुआ। विशेष तपश्चरण द्वारा (अज्ञान) अंधकार समूह का नाश करके मैं विद्युन्माली नामका देव हुआ। फिर तुम्हारी बहन का विशेष सन्मान भाजन पुत्र जंबूस्वामी हुआ। मैंने तपश्चरण से प्राप्त किये हुए मनुष्य व देव संबंधी सुखों को भोगा है। इस जुगुप्सोत्पादक मनुष्यगति संबंधी सुख में मुग्ध (मोहित) होकर, (बताओ कि) मैं कैसे इसी तरह (संसार) पंक में पड़ा रहूँ? तब विद्युच्चर बोला-मैं तो ऐसा मानता हूँ कि संसारी जीव कर्मक्रीत अर्थात् कर्मों का दास है। पूर्वजन्म की कर्मपरिणति से यदि किसीतरह तुझे स्वर्ग सुख प्राप्त हो गया, तो फिर भव-भव में हृदयोच्छित लाभ कहां से होगा। तुम्हें एक कथानक कहता हूँ, वह सुनो ॥6॥

किसी घुमक्कड़ ने अपने कार्य से च्युत (भ्रष्ट) एवं खस (खारिश) व्याधि से पीड़ित ऊँट को अटवी में छोड़ दिया। स्वच्छंद चरने से वह पर्याप्त बलशाली हो गया। बहुत दिनों तक उसने कहीं मधु खाया। उस मधु का स्मरण करता हुआ एवं भूख की बाधा को वहन करता हुआ, वह ऊँट करील

की शाखाओं को कभी चरता था, कभी नहीं भी चरता था। यही बात भोगे हुए स्वर्गसुख स्मरण करने की है। (वरना) यहां स्वर्ग मोक्ष किस मूढ़ को मिलता है? तब कुमार भी उसके उत्तर में यह कथानक कहने लगा-कोई वणिक्पुत्र भारी (असीम) तृष्णा को धारण करता था। अकेले ही मणि व्यापार की तृष्णा से जाते हुए अरण्य में उसने शीतल सरोवर जल को देखा। (वहाँ) वह चोरों द्वारा लूट लिया गया और (भय से) अंग अंग काँपता हुआ, एवं तृषा से पीड़ित हुआ, जल का स्मरण करता हुआ सो गया। स्वप्न में जब उसने उस सरोवर को देखा तो (स्वप्न में ही) जल पीकर (वास्तवमें) प्यासा ही जाग उठा, और जिह्वा से ओस बिंदुओं को ही चाटने लगा। भला उनसे उसकी तृषा कैसे मिटे? इस प्रकार हे मामा! जो स्वर्गसुख का स्मरण करता है,वह अपनी अभिलाषा का छेदन कैसे करे? यह मानुषिक सुख बड़ा घिनौना, और विचारहीन (अर्थात् विवेक भाव से रहित) है, एवं दूसरों को (व्यर्थ) कौतुक उत्पन्न करने वाला है॥7॥

अब चोर कहने लगा-एक वृद्ध वणिक् था, और उसकी जार पुरुषों से गमन करने वाली एक तरुणी रमणी थी। वह ब्रह्ममुष्टि नामके एक चटके साथ मणिसमूह आदि खजाने को लेकर निकल गई। चलते-चलते ब्रह्ममुष्टि को थोड़े काल पश्चात कहीं देशों के मार्ग में एक पुरुष मिला, जो बहुत कपट से भरा हुआ और धूर्तों का भी धूर्त था। रास्ते में उसने ब्रह्ममुष्टि चट से कहा-शुभ लक्षणों से युक्त सुंदर शरीरवाले तुमको देखकर मुझे बड़ा स्नेह बढ़ गया है। तू मेरा भाई है, और तेरी भार्या मेरी भ्रातृजाया (भौजाई) है। आजन्म तुम लोगों के पैर (चरण-सेवा) नहीं छोड़ूंगा। इस प्रकार अत्यधिक स्नेह से जड़ा हुआ वह ब्रह्ममुष्टि बदले में उसकी स्तुति करता हुआ उस धूर्त से ठगा हुआ अपनी कांता के साथ चलता रहा। कतिपय दिनों में लोक में निंद्य उस परदार कार्य (परस्त्री रमण) को देखकर वह मधुरता से इस प्रकार गाने लगा जिससे वह सुंदरी सुन ले, और कामोद्दीपन करने वाले गीत आलापने लगा। धूर्त्त ने उसका चित्त चुरा लिया। वह बोली-मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। धूर्त्त ने कहा-हे मृगाक्षी लो! यह मंत्र (उपाय) करो! इस ग्राम के ग्रामरक्षक के पास

जाओ और ऐसा कहो-यहां इस देवालय में लंबे पथ से श्रांत हुई मैं अपने कांत के साथ सोऊँगी। यदि किसी तरह तुम में से प्रवर (अर्थात् पुरुष) सो गया, तो रात में निश्चय से कल्याण हो जायगा। यह सुनकर रागारूढ़ हुई वह (धूर्त्त के द्वारा दिये हुए) उस संकेत को दिन में ही नगर रक्षक से कह आयी। तब देवकुल में सुख में प्रसन्न मन से वे तीनों जन रात्रि में सो गये। एक शयन पर प्रिया के साथ ब्रह्ममुष्टि (सो गया) और दूसरे पर धूर्त्त जागता हुआ पड़ रहा ॥8॥

तब अर्द्धरात्रि में जबकि सब सो रहे थे, और दिशाएँ शब्दरहित हो गयीं थी, उस समय डिंडिम निनाद करते हुए, यम से आदिष्ट दूतों के समान प्रचंड महाचूर्ण (मुर्दाशंखचूर्ण) से पांडुरवर्ण बने हुए, एवं लकुटि दंडों को लिये हुए, खूंखार शब्द करते हुए, भयानक दैत्यों जैसे भृत्यों को नगर रक्षक के साथ आते हुए देखकर वह स्त्री सोते हुए चट को छोड़कर न सोते हुए धूर्त्त के शयन पर आ गई। भटों के हुंकार से उत्पन्न कोलाहल को सुनकर धूर्त्त ने कोटपाल से कहा-दिन में ही कह दिया था कि ये दो तो हम (पति-पत्नी) हैं, तीसरे को नहीं जानते, तुम लोग खोज लो। तब (उन लोगों ने) ब्रह्ममुष्टि को देखकर बेचारे को पकड़ लिया और बहुत मार-पीटकर बांधकर ले गये। धूर्त्त भी उसके धन में आसक्त हुआ, स्त्री को लेकर, भागकर समुद्र की तटवर्ती एक नदी के तीरपर पहँचा। तब वह धूर्त्त उस दुस्तर नदी को देखकर कपट स्नेहमति करके बोला-तो अब एक बार वस्त्रादि वस्तुओं को लेकर जाता हूँ, पुनः चलकर (आकर) तुम्हें भी पार उतार दूंगा ॥9॥

यह सुनकर उसने अपने आभूषण, कटिमेखला, सुवर्ण, द्रव्य आदि सब कुछ उसको अर्पित कर दिया। उस सबको लेकर धूर्त्त तैरकर पार उतर गया, और दूसरे तीर को अतिक्रमण करके जाने लगा, तो वह बोली-अरे दुराशय दास! मुझे तट पर विवस्त्र (नग्न) छोड़कर, व ठगकर कहाँ चला। उसने शीघ्र चलते हुए, एवं हाथ हिलाते हुए, प्रत्युत्तर दिया-(एक जगह तो) परिणय किये हुए भर्त्तार को छोड़ा, अन्यत्र अपने जार को मरवा डाला, हे मृगाक्षी! क्या (अब) मुझे भी खाने का मन है? ले, भट्टारिके! तू यहीं रह!

उसके चले जाने पर जब वह असती तीर पर खड़ी थी तभी मांस का टुकड़ा लिए हुए एक श्रृगाल वहाँ आया। जल से स्थल पर आये हुए एक मच्छ को देखकर, मांस के टुकड़े को छोड़कर, उस मच्छ को पकड़ने की दक्षता से दौड़ा। मच्छ (तुरंत) जल में डूब गया, और इधर वह मांस का टुकड़ा झट से एक श्येन (बाज) द्वारा उठा लिया गया। दोनों आशाओं से वंचित होकर श्रृगाल बड़ा लज्जित और उदास हो गया। वह कुलटा उसे लक्ष्य करके हँसी और बोली-अरे निर्बुद्धि श्याल! रे मूर्ख! स्वाधीन (वस्तु) को छोड़कर क्या लाभ हुआ? तो उसने कहा-मैं तो अवश्य परम दुर्बुद्धि हूँ, अरे पापकर्म करने वाली दुराचारिणी! ऐसी (तेरे जैसी) परम सुबुद्धि कहाँ मिले कि एक जगह तो तूने भर्त्तार को छोड़ा, और फिर (दूसरी जगह) जार को भी मरवा डाला। अरे निर्लज्ज कल्याणकारिणी! तेरी ऐसी सद्बुद्धि तुझे खूब लगी है (अर्थात् तेरी परम दुर्बुद्धि का अच्छा फल तुझे मिला है)। नग्न अवस्था में (खड़े हुए) भी बोलते हुए कुछ तो लज्जा कर! इस असती कथानक को समझो। देव सुखों के लिए मन का दमन मत करो। दुर्लभ मनुष्य फल (शारीरिक विषय भोग) को भोगो। स्वार्धीन (सुख) को छोड़ने वाले को कौन सा सुख मिलता है? ॥10॥

(अथानंतर) जंबूस्वामी कथानक कहने लगे-कोई बनिया जहाज लेकर दूसरे तीर पर गया। वहाँ उसने पृथ्वी के (समस्त) धन के तुल्य एकमात्र अति बहुमूल्य रत्न खरीदा। पोत में चढ़कर जब वह सागर को लांघ रहा था, तो अपने मन में इस प्रकार इष्टार्थ सिद्धि की बातें सोचने लगा-जैसे ही मैं वेलाकूल (समुद्र तट) पर पहुँचूँगा, वहीं इस महागुणवान माणिक्य को बेच दूँगा, और फिर हाथी, घोड़े व नाना प्रकार के भांड खरीदकर राजा के समान संपदा सहित घर को जाऊँगा। थोड़ी नींद आने पर वह रत्न उसके हाथ से गिरकर समुद्र के मध्य में जा पड़ा। वणिक् दीर्घ स्वर से तैरने वालों को चिल्लाया-अरे! अरे! जहाज को रोकिये! यहीं रत्न गिर गया, उसे देखिये, और उसे लाकर मुझे उपस्थित कीजिये। देखिये! पोत के चलते हुए, सागर में

नष्ट हुआ माणिक्य (भला) कहां मिले? यह मनुष्यजन्म माणिक्य के समान है। रतिसुखरूपी निद्रा के वश भ्रम में पड़कर, संसार समुद्र में हराकर, खोजने पर भी मैं (इसे मनुष्यजन्मरूपी माणिक्य को) को फिर कैसे पाऊँगा? ॥11॥

(तब) विद्युच्चर कहने लगा-विंध्यपर्वत में दृढ़प्रहारी नामका एक धनुर्धर भील रहता था। उसने बाण के आघात से एक हाथी को मार डाला। इधर वह स्वयं भुजंग से डँस लिया गया। धनुष प्रहार से उसने विषधर को भी मार डाला, और वह भील भी विषभुक्त (विषव्याप्त) होकर मर गया। पृथ्वी पर पड़े हुए हाथी, भील, सर्प और धनुष एक घूमते हुए श्रृंगाल के चित्त में चढ़ गये। हाथी छह मास, मनुष्य एक मास, और एक सर्प एक दिन का ग्रास होगा। तो ठीक, ये सब तब तक रहें, आज तो मैं इस दुष्ट भूख को धनुष के दोनों ओर बंधे हुए सूखे बंधन (ताँत की गाँठ) को खाकर मिटा लेता हूँ। उसके चबानेसे वह दृढ़ गाँठ टूट गया, और धनुष के सिरे से उसका तालु व कपाल फूट गया। जिस प्रकार अधिक से और अधिक लाभ को चाहने वाला जंबूक मर गया, तू भी उसी तरह नष्ट होगा, इस प्रकार मैंने यह परमार्थ कह दिया। तब कुमार बोला-हे मामा! एक आख्यान सुनो, जिसे तुम अबतक भी नहीं जानते। कहीं कोई कबाड़ी रहता था, और ईंधन लाकर (उसे बेचकर) अन्न खाता था ॥12॥ एक दिन वह अपने कुल्हाड़े से सज्जित होकर वन में गया, और शिर पर काष्ठ का भार चढ़ा लिया। ग्रीष्म में प्रखर रविकिरणों से संतप्त होकर भार को छोड़कर (शिर से उतारकर), वृक्ष के नीचे निद्रा को प्राप्त हुआ। स्वप्न में उसने राजलीला देखी और सुंदर कामिनियों के साथ कामक्रीड़ा। अपने आपको राजा के समान समझा, जो सिंहासन पर विराजमान था, जिसके ऊपर चमरों सें बीजना किया जा रहा था, जिसका राजकुल करितुरग एवं योद्धाओं इत्यादि की समस्त सामग्री से सार युक्त अर्थात् समृद्ध था, और जिसका द्वार प्रतीहार से अवरुद्ध (संरक्षित) था। अथानंतर क्षुधा से शोषित एवं रुष्ट हुई उसकी स्त्री ने आकर उसे उठा दिया। राज्य (दृष्टि से) ओझल

हो गया, और स्याही जैसे काले वर्णवाली एवं काल रात्रि जैसी पत्नी दिखाई दी। उसके अंग सूख रहे थे। शिराएं और संधिसमूह प्रकट हो रहे थे, एवं बाल रोमांचित (खड़े हुए), रूखे कठोर तथा असमान थे। उसके कठोर वचन को सहन न करते हुए (कबाड़ी ने) उसे पीटकर निकाल दिया, और फिर से सो गया। तो उसने स्वप्न में देखा कि अटवी में उसके आँसू बह रहे हैं, मल से मलिन अतिशय प्रस्वेद का स्रोत बह रहा है, और उसका उत्तमांग (शिर) ईंधन के भार से पीड़ित (दबा हुआ) है। तब दुःख से झुलसते हुए शरीर से वह उठ खड़ा हुआ। यदि स्वप्न में उसको राज्य मिल गया तो वह भी पुनः-पुनः मिलना कैसे सम्भव है? इसी प्रकार यदि मैं मनुष्य जन्म से गिर गया तो नरक में दुःखों से ग्रसित होकर रहना होगा ॥13॥

तब तस्कर कहने लगा-सुनो! बहुत से चेटों से युक्त नटों का एक बेड़ा (दल) वर्षा ऋतु में (आजीविका के) कार्य से नगर में आया, और रात में नाचने के लिए राजा के पास गया। अपने आवास में रक्षा के लिए उन्होंने एक रक्षक छोड़ दिया। बोड नामका एक जरा जीर्ण (अतिवृद्ध) नट वृक्षों से संकीर्ण आराम के पास बैठ गया। तो उसी समय आभरणों से लांछित (युक्त) कोई बहू सास की निर्भर्त्सना पाकर, नगर से आकर उसी वृक्ष के नीचे ठहरी, और मरने के उपाय स्वरूप पाश को गले में लगाया। बोड सोचने लगा-इसके मरने से मुझे (यहीं) बैठे-बैठे ही स्वर्ण लाभ हो गया। यह मरना नहीं जानती, अतः मैं स्वयं इसको शिक्षा देता हूँ, मरजाने पर आभरण ले लूँगा। पूछी जाने पर उसने कहा-भाई मुझे सुखमृत्यु से यमपुरी भेज दो। तो नटने पाश को फंदा बनाया और वृक्ष के नीचे मुरज लाकर रखा। फिर वहां उसके ऊपर स्वयं चढ़कर एक वस्त्र से शाखा में बांधकर फिर पाश को गले में बांध लिया। और बोला-हे सुंदरी! मुरजको इस तरह लुढ़का देना चाहिये, और दृढ़ पाश बंध से मरना चाहिये। इस प्रकार वेग से उसको दिखलाते हुए, दैवसंयोग मर्दल लुढ़क गया सुदृढ़ पाश ग्रंथी गले में पड़ गई और वह तड़फड़ाता हुआ यमदूतों के द्वारा खींच लिया गया। स्त्री वोड को मरते देखकर अनुताप करके भयभीत होकर भाग गयी। इस प्रकार जो असिद्ध कार्य की अभिलाषा करता है, और परिणाम

में उसकी गति नहीं जानते हुए, उस वोड नामक नट का अनुसरण करता है, वह अपनी ही बुद्धि सुखरहित होकर (अर्थात् दुःखपूर्वक) मरता है ॥14॥

तब जंबू कुमार ने कहा-तुम नहीं जानते। वाराणसी नामकी एक नगरी है। वहाँ के राज्य की धुंरा को धारण करने वाला लोकपाल नामका राजा शत्रु को जीतने के लिए देशांतर को गया। युद्ध में पांच वर्ष लग गये पीछे उसकी अप्सरा जैसी विभ्रमा नामकी महादेवी जिसे घर छोड़ दिया था, पुरुष संयोग के बिना कामवासना से जल उठी, और प्रासाद पर चढ़कर निर्लज्ज भाव से डोलने लगी, तथा एक बूढ़ी दासी से बोली-सखी! मेरे दीर्घ व उष्ण श्वासों को देखो, और कांपते हुए सूखे अधरों को देखो। और भी कार्य को भूले हुए अर्थात कृत्याकृत्य विवेकशून्य, मेरे इस (सूने) हृदय को देखो। मेरी दोनों जाँघें रज जल से सिंच गई है। किसी जवान को लाकर गले लगाओ, और संदीप्त मदन को बुझाओ तब कुलटा दासी कहने लगी-इस प्रकार दीनता से क्यों कहती हो? मेरे स्वाधीन (आपके आधीन) रहते हुए (आपके लिए) क्या असाध्य है? प्रासाद के ऊपर दोनों स्त्रियों के इस गुप्तकार्य की चर्चा करते समय जन मान्य (प्रख्यात) रानी के दृष्टिपथ में मार्ग से आता हुआ- ॥15॥ -अतिविस्तीर्ण वक्षस्थल और सुकुमार भुजाओं वाला चंग नामका सुनार पुत्र पड़ा, जिसके चरण कमलों की नखमणियों में आलक्तक (अलता) लगा हुआ था। उसकी जंघाएँ स्निग्ध और मसृण थीं, व केश लहरा रहे थे। वह एक सुंदर पट धारण किये हुए था, पीछें लम्बा लटकता हुआ कछौटा पहने था, और उसकी कमर में एक चमकती हुई छुरिका लगी थी । अपने कानों में वह तालपत्र निर्मित कुंडल पहने था। नये पुष्पों के संचय (गुच्छों अथवा माला) से सजाया हुआ उसका केशपाश कंधों के नीचे तक लहरा रहा था। वह अच्छी तरह से चाँपी हुई बड़ी-बड़ी मूंछें धारण किये हुए था, उसकी दाढ़ी खूब सुंदरता से संवारी हुई थी, और हाथ बहुत मनोहर थे। उसको देखकर इशारा करते हुए रानी ने कहा-यह जवान हृदय को भाता है, इसको लाओ। जरा भी विलंब मत करो। दूती वहाँ गई, जहां वह श्रेष्ठ सुभग था। तदनंतर उसको

संकेत करके ले आई। फिर दृष्टि से पहचान हुई (आँखों से आँखें मिली) और फिर झट पट रागभरी महादेवी ने उसे अपनी शैया पर बैठाया। तभी श्रेष्ठ अश्वों के समूह पर सवार अपने परिजन लोगों व सहायकों के साथ, ध्वजा, छत्र और पताकाओं से आकाश को आच्छादित करता हुआ बड़े उमाह (उत्साह) से युक्त राजा आ गया ॥16॥

(उस समय) राज परिवार के स्थानांतर तक फैल जाने पर अर्थात् राजमहल के बिलकुल निकट आने पर मार्ग अवरुद्ध हो गया और महादेवी ने चंग को पीछे के घर में डाल दिया। तब तक इधर बहुत वर्षों से अभिनव वर्द्धित स्नेह से भरा हुआ राजा महादेवी के निवास को आया। थोड़ी देर बाद निवारण के लिए पीछे के घर में राजा का आगमन जानकर उतावली और भय से पराभूत रानी ने चंग को पुरीषकूप में डाल दिया, और नित्यप्रति उसके लिए मनुष्य (शरीर) के पोषण भर के लिए इतना भोजन देती रही, जिससे उसका जीवनाश अर्थात् मरण न हो। जब छह मास तक चंग वहां रहा, (तो) उसका शरीर दुर्गंध से आविष्ट और पांडुरवर्ण हो गया। इसके बाद जब कर्मकरों (मेहतरों) के द्वारा उस बीभत्स हुए अशुचि कूप का जल से शोधन किया जाने लगा तब विष्टा के भीतर अंध (गुप्त) द्वार से वह अमेध गंगा के प्रवाह में पड़ा। चंग भी उस (अशुचि) प्रवाह के साथ मिला हुआ निकाला गया। सुरसरि के तीर पर लोगों ने उसे पहचाना, और पूछा– हो न हो तू चंग है, तुम्हारा शरीर दुर्गंध युक्त और पांडुरवर्ण कैसे हो गया? उसने कहा–मैं (मेरे) रूप में आसक्त नागसुंदरियों द्वारा पाताल लोक में ले जाया गया। बहुत दिनों पर मुझे घर का स्मरण करते जानकर उन्होंने रोष से मुझे विवर्ण (कुरूप) करके छोड़ दिया। घर जाकर देवताओं के द्वारा लाये गये अर्थात दिव्य द्रव्यों, सुरभित जल सेचन व सुरभित तेलों के–(प्रयोग) द्वारा वह चंग बहुत दिनों बाद पुनः कंचन वर्ण और अभिनव अंग अर्थात् नवीन तारुण्य एवं सौंदर्य से भरपूर अंगोंवाला हो गया। किसी समय पुनः राजा गया, और कुछ दिन बीतने पर रानी को पुनः विरह उत्पन्न हुआ। पुनः वैसे के वैसे सुंद चंग को देखकर उसे

बुलाया, तो दुख से कांपते हुए गात्र से चंग उसकी सखी से यूं बोला–मैंने सुभगत्व (सुंदरता) का जो फल अनुभव किया (उससे) आज भी शरीर की वह दुर्गंध पूर्णतः नहीं मिटी। पुण्यों से यदि कोई एक बार (संकट से) छूट गया, तो क्या वह बार बार (संकट में पड़ने) जाता है? तिर्यंच और नरकगतिका अनुभव करके यदि भवभ्रमण करके मनुष्यत्व प्राप्त हुआ तो, हे मामा! रंचमात्र रतिसुख के लिए कौन मूढ़मति पुरुष पुनः नरक में पड़े॥17॥

तो फिर शुद्ध नीतिमार्ग से प्रतिबोध को प्राप्त, निःसार संसार से वैराग्य (विरक्त) चित्त, अनवरत प्रसरणशील रोमांच समूह से युक्त, आसन्न भव्य और (संसार के माया मोह के) प्रपंच से रहित तथा कुरुदेश में नागरपुर (हस्तिनागपुर) के विद्युच्चर नामके उस राजपुत्र ने युक्तिप्रयोग द्वारा (अर्थात् युक्तिपूर्वक) महाभव्य जंबूस्वामी की, जिन्होंने मतिज्ञान व श्रुतज्ञान पूर्वक छह द्रव्यों को जान लिया था, इस प्रकार स्तुति की–तू परमगुणों की खान है, धर्मवृक्ष का मूल है, और हम जैसे व्यक्तियों रूपी कुमुदवनों के लिए तू ही चंद्रमा है। इस प्रकार स्तुति करके उसने अपना वह तस्कराचार (चोरवृत्ति) और वासगृह में प्रवेश संबंधी निःशेष वृत्त कहा। इसके अनंतर गगनरूपी मकरगृह में प्रवाहमान रात्रिरूपी नावरूपी दोस्तटिका के कारण अवस्थिति को प्राप्त न कर पाती हुई संघर्ष में विघटित होकर फूट गयी और उधर जिसका किरणसंतति रूपी रज्जुबंध टूट गया है, ऐसे (रात्रिरूपी नौका के) डूबते हुए श्वेतपट (पाल) के समान चंद्रमा भी गलित हो गया (डूब गया)। (इस प्रकार मानों रात्रिरूपी नाव के खंड–खंड होकर टूटने से) शकुनजन (पक्षी समूह) रूपी वणिकवृंद क्रंदन करने लगा, और इधर उसका आधारभूत सुंदर व विशाल तारासमूह रूपी माणिक्य समूह भी डूबता दिखाई देने लगा। बंधूक पुष्प के समान छविवाला सूर्य उदयाचल पर उदित होकर ऐसा शोभायमान हुआ, मानों संसार रूपी गृह से मुक्त विद्युच्चर का राग (मोह, घट पक्ष में लालरंग) से भरा हुआ भाजन ही उड़कर सूर्य के रूप में आकाश में जा लगा हो॥18॥

तब घने केशर और चंदन से सुगंधित घर-आंगन में पटु पटह ललितस्वर से बजाया गया। करडवाद्य करड करड ध्वनि करने लगा, टिविल वाद्य टं टं करने लगा, तूर का आस्फालन किया गया, उद्दाम मर्दल सहित झल्लरी रमण करने लगे (अर्थात् मनोरंजन करने लगे), काहल वाद्य विद्युत के समान तड़ तड़ एवं डक्का डमडक्क करके बजने लगा। रुंज नामक वाद्य ने गूंज उत्पन्न कर दी और शंखों ने कोलाहल। जिनमती के पुत्र के रति सुख (अर्थात स्त्री आदि विषयसुख को भोगने की आंकाक्षा) को नष्ट हुआ जानकर, स्नेह से संवाहित अर्थात् संचालित व प्रेरित होकर घोड़े, हाथी समेत राजाधिराज श्रेणिक आया। उसने जंबूस्वामी को मणिमय कड़ा और कटिसूत्र एवं शिरपर शेखर (मुकुट) पहनाये, और स्वयं अपने हाथ से उसे वस्त्र पहनाये और आभूषण धारण कराये। तब मनुष्यों द्वारा ले जाये जाने वाले सुदृढ़ जंपानकयान (पालकी) के उपस्थित किये जाने पर,वधुओं को छोड़कर सिद्धिवधू में अनुरक्त हुए जंबूस्वामी ने पुत्र के (वियोग) दुख से क्रंदन करते हुए माता पिता को प्रणाम किया, और पालकी पर चढ़कर चल पड़ा। (इस पर) बंधुजनों के हृदय (दु:ख से) बिंध गये, और वे मार्ग से लग गये, अर्थात् मार्ग में खडे हो गये। नागरजन क्षुब्ध हो गये, व सागरचंद्र (दुख से विह्वल होकर) दौड़ पड़ा और मार्ग में आगे आकर खंड़ा हो गया। ध्वजा पताकाएं फहराने लगीं, अंबर छत्रों से छा गया, और राजमार्ग दोनों ओर खड़े हुए लोगों को आनंद देने वाले बहुत से रथों में संस्थित राजसेना से भरपूर हो गया। इस प्रकार बंदीजनों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ कुमार, नंदनवन में फूलों, एवं पत्रों से सघन वृक्षों से संपन्न तथा मुनिगणों से आकीर्ण (भरे हुए) आश्रम को प्राप्त हुआ। मनुष्यों व देवों के शिर जिनकी (चरण) रज को लेते हैं, ऐसे मुनि सुधर्म नामक गुरु के चरणों को प्रणाम करके उसने विज्ञापना की-हे सिद्धिवधू को कटाक्ष (लक्ष्य) करने वाले प्रभु (मेरे ऊपर) प्रव्रज्या (दान) रूपी प्रसाद कीजिए॥19॥

श्रेष्ठ गुरु का अनुग्रह पाकर जंबूकमार ने दीक्षा ग्रहण की। सिर से जो कुसुममाला को त्यागा, तो मानो कंदर्प की बाणपंक्ति को ही फेंक दिया। रत्नों से चमकता हुआ मुकुट छोड़ा, तो मानो कंदर्प के दर्प को ही भग्न कर दिया। शिर पर से बालों को उखाड़ा तो मानो मकरध्वज का निष्कासन कर दिया। हार त्याग देने पर (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप त्रिरत्न के समान) तीन रेखाओं से युक्त उसका गला स्वयमेव सुंदर लगने लगा, तो फिर वृत्तमुक्त अर्थात् आचरण से रहित (=शुद्धाचरण के विपरीत), अतएव निष्फल, ऐसा हार धारण करने रूप निरर्थक आचरण कौन करे? मणिसुवर्णमय कंकण को छोड़ा तो मानो उसने नरजन्म (अर्थात् संसार में मनुष्य रूप में जन्म) के लिए जलकण छोड़ दिये, अर्थात् जलांजलि दे दी। मुद्रिकाओं को तो उसने अवश्य उतारकर डाल दिया, परंतु वह तन, मन और वचन इस गुप्तित्रय से मुद्रित हो गया। स्त्रियों सहित अपने क्षेत्र व परिकर को छोड़कर उसने (संसार या कर्म) बंधन में समर्थ लोभरूपी लौह श्रृंखला को त्याग दिया। उसने (बाह्य) परिधानवस्त्र को तो त्याग दिया, वह वस्तुस्वरूप (के ज्ञान के रूप) में उसके चित्त में प्रविष्ट हो गया। हाथ ही उसके पवित्र एवं विशुद्ध पात्र बने, और भिक्षाभ्रमण ही उसका अविरुद्ध (निरतिचार) भोजन। निर्जन आश्रय (गृह, कुटीर) जो दूसरे को दिया हो, वह उसका आश्रय स्थान हुआ, और विस्तीर्ण पृथ्वी पृष्ट ही उसका संस्तरण (बिछौना) बना। इस प्रकार किया हुआ बाह्यार्थों का जो परिहार है, वह आभ्यंतर शुद्धि का हेतु होता है, निः संगवृत्ति और इंद्रियों का दमन करने वाला व्यक्ति कर्म को निर्मूल करता है, इसमें क्या भ्रांति है! ॥20॥

इधर व्रतों को स्वीकार करके विद्युच्चर ने भी प्रव्रज्या ले ली। दूसरे दिन अपने वंशों को, अपने सहोदर के पुत्र जिनसेन को, जो कि स्वजनों (व सज्जनों) को आंनद देने वाला था, अर्पित करके, सुंदर भुजाओं वाला अरहदास भी निर्ग्रंथ साधु हो गया। जिनमति ने भी सुप्रभा आर्यिका के पास

तपश्चरण ले लिया। पद्मश्री प्रमुख जो बहुएं थीं, वे भी प्रव्रजित होकर आर्यिकाएं हो गयीं। कुछ दिनों में परमपूज्य श्री सुधर्म गणधर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवली के साथ रहते हुए शुद्धाचारी जंबूस्वामी इस प्रकार तप करने लगे। सर्वप्रथम कर्मों को दहन करने वाला जो अनशन (नामक तप) है, जिसमें नियमित दिनों (अष्टमी चतुर्दशी आदि) में आहार त्याग किया जाता है, अपने उद्देश्य से न बनायी हुई भिक्षा ली जाती है, एवं जिसका फल अनुमान प्रत्यक्ष है कि वह संयम, ध्यान व ज्ञान शुद्धिका हेतु होता है।

अवमौदर्य में पहले एक ग्रास, और फिर प्रतिदिन क्रमशः एक एक अधिक करते हुए जब बत्तीस हो जावें तो फिर एक एक करके ग्रासों को घटाया जाता है, जबतक कि पुनः एक ग्रास हो जावें ॥21॥

इस प्रकार के तप से मुनि मार्ग में लगे हुए वे जंबूस्वामी दर्शन, ज्ञान और समाधि से जागते थे। इसके अनंतर तीसरे वृत्ति परिसंख्यान नामक तप में एक (दो) आदि घरों (की संख्या) को निश्चित करके भिक्षा की जाती है। यह (तप) बहु संकल्पी चित्त का निरोध करने वाला और आशा पाश के विनाश का कारण है। 'आशा' यह नाम ही मनुष्य के दुखों का आकर है, और निराश वृत्ति अर्थात् सर्वथा निष्काम भावना सुख का सागर है। चौथा रसत्याग (नामक) तप किया जाता है, जिससे प्रबल पंचेंद्रियों के दर्प का अपहरण होता है। पांचवां विविक्त शय्यासन (नामक) तप शून्य घर उद्यान आदि में निवास करना है। जन्तु पीड़ा से रहित होने से यह तप व्रतों की वृद्धि एवं ध्यान युगल (धर्म व शुक्ल) रूपी पर्वत की सिद्धि (आरोहण) का कारण है। छठा काय क्लेश नामक महातप है, जिससे परीषहों के भय का विजय हो जाता है। स्वेच्छाचारी के लिए जो दुःसह होता है, मुनि के द्वारा वह परीषह सहन किया जाना चाहिए। नियम विशेष से जो स्वयं किया जाता है (जैसे खड्गासन में रहना, शीत, उष्ण व वर्षा को सहन करना आदि) उसीको कायक्लेश (तप) कहा जाता है। इस तरह यह छह प्रकार का बाह्य तप है। इनको बाह्यतप किस कारण से कहा गया? क्योंकि इनकी गुणवत्ता बाह्यद्रव्यों (के त्यागादि) की

अपेक्षा से है, दूसरे पर प्रत्यक्ष (दूसरे लोगों को दिखाई देने वाला) भी है ॥22॥

प्रमाद का अपहरण करने वाला प्रायश्चित नामका आभ्यंतर आचार (तप) संसार से पार उतारने वाला है। पूजार्हजनों का जो आदर किया जाता है, उस नीतिपालन को 'विनय' कहा जाता है। शरीर चेष्टा से (शरीर से सेवा करके), अथवा धन देकर जो वैयावृत्य किया जाता है, वह (मोहरूपी) अंधकारका नाश करने वाला कहा गया है। ज्ञान के अभ्यास में जो आलस्य छोड़ा जाता है, अर्थात् आलस्य छोड़कर जो ज्ञानाभ्यास किया जाता है, उसे निर्मल स्वाध्याय कहा जाता है। जो (देहादिक में) अपनत्व का संकल्प नहीं करना हैं, उसे व्युत्सर्ग (नामक) महातप कहते हैं। मन की अवस्था को जबकि वह परद्रव्य संबंधी संकल्प से अपने को लौटाकर आत्मा में ही आत्म रूप होकर, सम्यक्ज्ञान व (आत्म) बोधि से संश्लिष्ट हो जाता है, उसे परमार्थ ध्यान निर्दिष्ट किया गया है। यह छह प्रकार का तप ज्ञान की विशुद्धि से जाना जाता है, इसीसे इसे आभ्यंतर तप कहा जाता है। इस प्रकार (सुधर्म) गणधर के समान (अथवा समीप रहते हुए) ही जंबूस्वामी बारह प्रकार का महातप करने लगे।

अठारह वर्ष का समय बीतने पर, माघ की श्वेत (शुक्ल) सप्तमी को प्रातः विपुलगिरि के शिखर पर विशुद्ध गुणों वाले परम पूज्य श्री सुधर्म मुनि निर्वाण को प्राप्त हुए ॥23॥

वहीं, उसी दिन अर्द्धप्रहर प्रमाण दिन व्यतीत हो जाने पर शुक्लध्यान में, परिपूर्ण योग से पर्यंकासन से स्थित, निर्मम मुनिपुंगव जंबूकुमार का शेष (बचा हुआ) मोह (मोहनीय कर्म) क्षय हो गया; दर्शन व ज्ञानावरण कर्म भी अशेषरूप से विलीन हो गये, और अन्तराय कर्म भी अस्तंगत हो गया। जीव ने जीव के (शुद्ध) स्वभाव को जान लिया। निरंध्र अर्थात् संपूर्ण लोक में अखंडरूप से व्याप्त केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे तीनों लोकों को एक

स्कंध के समान स्पष्ट देख लिया; अखिल द्रव्यों को करतल स्थित जल के समान जान लिया और लोकालोक सभी प्रत्यक्ष हो गये। आकाश का अतिक्रमण करते हुए अर्थात् आकाशमार्ग से, परिमित सहायकों के साथ परिक्रमा करते हुए देवताओं का आगमन हुआ। (इस प्रकार) अठारह वर्षों तक भव्यजनों के चित्त का कुतर्क (मिथ्यात्व) दूर करते रहकर, (अंत में) विपुलगिरी के शिखर पर अष्टकर्मों को त्याग कर मोक्ष के शाश्वत सुख को पा लिया। संलेखनापूर्वक मरण करके पिता-माता ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में इंद्र व प्रतींद्र हुए। चारों बहुएं चंपापुर में वासुपूज्य जिनके चैत्य घर में, एक मास का संन्यास करके (मरणोपरांत) ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में अहमिन्द्र हुई। इसके अनंतर ग्यारह अंगों के धारी, एवं तप से सुशोभित श्रेष्ट विद्युच्चर महामुनि विहार करते हुए अपने श्रमणसंघ सहित ताम्रलिप्ति नामक नगरी में आये ॥24॥

ऋषिसंघ के नगरी के निकट ही ठहर जाने पर एवं सूर्यमंडल के अस्तंगमन के लिए प्रवृत्त होने पर कंकाल को धारण करने वाली भद्रमारी नामकी कात्यायनी देवी वहां आयी, और विनय पूर्वक बोली- 'पांच दिनों तक पूर्ण विस्तार के साथ यहां मेरी यात्रा होगी। उसमें रौद्र भूत समुदाय आमंत्रित है, वह तुम्हें क्षुद्र (असह्य) उपसर्ग करेगा। इस कारण जब तक यात्रा है तब तक इस पुरी को छोडकर अन्यत्र चले जाइए।' यह कहकर वह चली गयी, तो यतिवर विद्युच्चर ने मुनियों को इस तरह कहा-अच्छा (हो कि) आप लोग इस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जावें। तो उन लोगों ने कहा-'रात्रि व्यतीत हो जावे (तब चले जावेंगे), (क्योंकि उपसर्ग से) डरने वालों को क्या धर्मलाभ (हो सकता) है? उपसर्ग सहना ही साधुओं के लिए साधु (कल्याणकर) है।' इस वचन (से अपने) को दृढ़ करके सभी साधु वहीं रह गये, और मौन लेकर निष्कंपरूप से नियम करके स्थित हो गये। रात्रि होने पर दशों दिशाओं को अंधकारमय करने वाले एवं स्याही के समान कृष्णवर्ण वाले क्रूरग्रह (राहु?) के समान, तथा गगनांगन और पृथ्वी मानों एकत्र मिल

रहे हों, ऐसा प्रलयकाल के समान (निबिड) अंधकार सारे लोक को लीलने (ग्रसने) लगा ॥25॥

तब कराल भृकुटियों वाले, कपालों से लोहू की धार बहाते हुए, महामांस (नरमांस)-खंडों को उछालते हुए, धूम्र व अग्नि सहित प्रचंड फेत्कार छोड़ते हुए, गले में कंकाल बांधे हुए, अनेक दुष्प्रेक्ष्य और बीभत्स रूप बनाये हुए बैताल और भूत वहाँ उठ खड़े हुए। कोई स्याही के समान काले भूत हुंकार करने लगे। कोई कुक्कुट के समान विशाल मत्कुणों के रूप में प्रकट हुए और ऋषियों के शरीर खाने को प्रवृत्त हो गये। उस वेदना को सहन नहीं करके कोई (मुनि) योग (ध्यान) छोड़कर बोले, यह दुख तो सहने के लिए बहुत भारी है, अरे तप का फ़ल कब, किसने, कहाँ देखा है? इससे कोई बेचारे अज्ञानी मुनिजन अधीर होकर शरीर खुजलाते हुए भाग निकले। कोई तालाब में, कोई कूप में कोई चिताग्नि में और कोई वृक्षों एवं लताओं के जाल में पड़कर मर गये। केवल एक विद्युच्चर (महामुनि) ही योग में लीन हुए, महाघोर उपसर्ग के प्रसंग में अदीन (निर्भय) भाव से स्थित रहे। चार प्रकार का संन्यास धारण कर, व्रतरूपी खड्ग से मोहशत्रु का वध कर आराधना में शुद्धमन व इंद्रियों का दमन करने वाले वह अकेले वीर वहाँ स्थित रहे ॥26॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर-कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी नामक-
इस श्रृंगार वीररसात्मक महाकाव्य में 'विद्युच्चर का आख्यान'
एवं 'जंबूस्वामि का निर्वाणगमन' नामक यह दशम् संधि समाप्त॥

संधि-11

वे (महाकवि) देवदत्त जयवंत हो, जो कवित्व के धाम हैं, और उन वीर (भ. महावीर) के प्रतितुल्य हैं, जिनके पास सीखे हुए शिष्य सर्वत्र कीर्त्ति को प्राप्त हुए-वीर भगवान के पास तप साधना में सिद्ध हुए शिष्य केवलज्ञान में समस्त अर्थों को व्यक्त करने की शब्द शक्ति प्राप्त करके अंत में सिद्ध हुए व सर्वत्र स्तुत्य हुए, महाकवि देवदत्त के पास काव्य रचना में सिद्ध हुए शिष्यों को कवित्व में समस्त अर्थों को व्यक्त करने योग्य शब्दशक्ति प्राप्त हुई, तथा वे सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त हुए ॥1 ॥

श्री विद्युच्चर महामुनि के मन में उस अत्यंत दु:सह उपसर्ग में जीव के कर्म के कारणों को छेदन करने वाली बारह अनुप्रेक्षाएं स्फुरित हुईं ॥2 ॥

जैसे जैसे वह घोर उपसर्ग अधिक अर्थात् कठोरतम होता जाता था, वैसे वैसे श्री विद्युच्चर महामुनि यह जगत अनित्य है, ऐसा चिंतन करते थे। गिरिनदी के पूर के समान आयुष्य खंडित हो जाती है, और मनुष्य पके फल के समान (जीवन वृक्ष से) टूट जाता है। लक्ष्मी, लावण्य, वर्ण (शरीर का गौर कृष्ण आदि रंग), यौवन और बल देखते देखते अंजलि के जल के समान गलित हो जाते हैं, बांधव, पुत्र और कलत्र ये सभी जीव से अन्य हैं, और इस तरह चले जाते हैं, जैसे पवन से आहत होकर पत्ते (उड़ जाते हैं)। रथ, हाथी घोड़े, यान और जंपानक (पालकी) नये मेघ उन्नयन के समान हैं। चमर, छत्र, ध्वजा और सिंहासन विद्युत के चंचल विलास का भी उपहास करने वाले (अर्थात उससे भी अधिक क्षणिक) हैं। (पहले) जो कुछ अनुराग निमित्त था वही दिन बीतने पर विषाद का कारण हो जाता है। तो भी जीव मोह (वश) से (इस सत्य की) अवमानना करता है, और अपने आपको अजर, अमर मानता है। जिस कामत्यागी के मन में यह अध्रुव भावना उत्पन्न होती है, वही दर्शन, ज्ञान व चारित्र गुणों से युक्त मानव शिवधाम (मोक्ष) का भाजन होता है ॥1 ॥

मरण समय जब यमदूत जीव को ले जाते हैं, उस समय उस अ... जीव की रक्षा कौन कर सकता है। चाहे बड़े बड़े संग्रा... ही (जीव की काल से रक्षा के लिए) धारण कर लें, चाहे गरुड़ध्वज पुरुष या बलिष्ठदानव, चाहे सूर्य, चंद्र, शुक्र चाहे शत्रु को आक्रंदन कराने वाले और हर; चाहे पंद्रह क्षेत्रों में कल्याणकारी कुलकर, चक्रवर्त्ती, या तीर्थकर ... धारण कर लें, चाहे वह सुदृढ़ वज्र पंजर में प्रवेश कर जाये, या गिरि कंदराओं, सागर,नदी अथवा निर्झर में, तो भी जिस प्रकार हरिण सिंह के द्वारा मार डाला जाता है, उसी प्रकार जीव काल से निगल लिया जाता है। जितना आयुष्य कर्म बाँधा है, उतना ही भोगते हुए उसे जीया जाता है। उस आयु कर्म से अधिक एक क्षण भी स्थिर अर्थात् जीवित नहीं रह सकता। तीनों लोकों में कौन उसकी रक्षा कर सकता है? दुस्तर भवसागर सलिल में डूबते हुओं के लिए कौन सहारा देता है? बस एकमात्र जिन शासन द्वारा उपदिष्ट दशविध धर्म ही पार उतार सकता है॥2॥

अनंतर वह संसारानुप्रेक्षा का चिंतवन करने लगे। चर्तुगति भ्रमण में मर्यादा रहित होकर जीव कर्मवश से सैकड़ों योनियों, कुलों, आयुष्य तथा योगों (नाना संयोगों) को प्राप्त करता है। जन्मांतरों को लेते और छोड़ते हुए इसने कौन सा गोत्र नहीं पाया। बाप पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है। मित्र शत्रु और शत्रु बांधव हो जाता है। माता स्त्री और स्त्री माता बन जाती है। बहिन पुत्री हो जाती है। और पुत्री सहोदरा। स्वामी दास होकर उत्पन्न होता है, और दास स्वामि श्रेष्ठ हो जाता है। कितना कहें, अनुमान से जान लीजिए, यहाँ तक कि स्वयं अपने से आप ही उत्पन्न हो जाता है (देखिये भूमिका में महेश्वर दत्त का कथानक) नारक तिर्यंच हो जाता है, व तिर्यच नारकी; देव भी पुरुष हो जाता है, और पुरुष देव। इस प्रकार संसारगति को जानकर जिसने दर्शन ज्ञान को नहीं आराधा, वह मिथ्यात्व से छला जाकर, काम, क्रोध व भय से भूतों से चालित होकर रहता है, अर्थात् काम क्रोधादि कषायों के वशीभूत होकर जीवन व्यतीत करता है॥3॥

जीवका ऐसा कोई सहायक विज्ञ (ज्ञानी) या वैद्य नहीं है जो उसके कर्मफलों को काट दे, जीव अकेला ही महान मोक्ष पद को प्राप्त होता है, और अकेला ही घोर नरक में गिरता है, तथा वहां अकेला ही तीक्ष्ण ताप से (पारद के समान) गलाया जाता है। अकेला ही वैतरणी में डूबता है, अकेला ही असिपत्रों से फाड़ा जाता है, और अकेला ही करौंत से चीरा जाता है। अकेला ही जल में जलचर और वन में वनचर होता है। अकेला ही पर्वत कंदरा में अजगर होता है। अकेला ही चंड परिणामों वाला म्लेच्छ होता है। अकेला ही तीव्र एवं विषय काम (वासना) से युक्त नपुंसक होता है। अकेला ही महिला और अकेला ही पुरुष होता है। अकेला ही महीपति और अकेला ही देव, और अकेला ही योग (ध्यान व तप) से समस्त (सांसारिक) विकल्पों को त्याग कर यह जीव शुद्ध परमात्मा हो जाता है। अकेला ही कर्मफल को भोगता है, जीव का दूसरा (मित्र या बांधव) किसे गिना जाये? (किसी का) शत्रु या मित्र होना कहां सम्भव है? राग व द्वेष किसके ऊपर किया जाये ॥4॥

फिरवह अन्यत्वानुप्रेक्षा का चिंतन करने लगे। शरीर अन्य है, जीव का स्वभाव (गुण) अन्य है। परिणामों के अनुसार यह जीव अन्य (अर्थात् अपने से भिन्न व पुद्गलमय) कर्म परिणामों (कर्म प्रकृतियों) से बंधता है। लोगों में किसी अन्य नाम से ही पुकारा जाता है। भिन्न भिन्न पृथिवियों में भिन्न भिन्न गोत्र बांधता है और भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है। अन्य पिता से उत्पन्न किया जाता है, और अन्य माँ के उदर में धारण किया जाता है। सहोदर भाई भी कोई अन्य ही होता है और घना स्नेह व आदर करने वाला मित्र भी अन्य ही होता है। परिणय करते हुए (अपने से) भिन्न ही स्त्री मिलती है, और कामभोग करने से कोई अन्य ही पुत्ररूप में उत्पन्न होता है। धन के लोभ से सेवक भी अन्य ही होता है, और कल्याणकर दुर्जन भी अन्य ही होता है। जीव का अनादि अनंत सचेतन स्वरूप कुछ अन्य ही होता है तथा संवेदन अर्थात् कर्मों की उदीरणा से युक्त सावधि (सादि-सान्त) स्वरूप कुछ अन्य ही। बार-बार भवविसर्जन अर्थात् शरीरत्याग करने में भिन्न-भिन्न ही शरीर लिये और छोड़े। जीव का निरवधि ज्ञान गुण भी इन बाह्य वस्तुओं से अन्य ही है। अत: इस शरीर के लिए ममत्व ही क्या? ॥5॥

चेतन आत्मा के सहारे से अचेतन (शरीर) का संचरण होता है इस अशुचि शरीर में कुछ भी चंगा नहीं है, आड़े टेढ़े हाड़ों से यही संघटित है, शिराओं से निबद्ध है, और चर्म से मढ़ा हुआ है, यह शरीर पूति रुधिर, मांस व वसा की गठरी और मूत्र का निधान व पुरीष की पोटली है। (मरणोपरांत) इसको रख दिया जाय तो यह कृमि व कीटरूप प्रवृत्त हो जाता है, और श्मशान में जलाने पर क्षार रूप में पलट जाता है। जिस मुखबिंब से चंद्रमा की तुलना की जाती है, (आयु व्यतीत होने पर) कपोलों पर उसकी परिणति देखिये! लोचनों का कटाक्ष से देखना कहाँ गया? दाँतों से वह विचक्षण ईषत् हास्य अर्थात वह मंद-मंद मुसकराना कहाँ गया? ओठों की वह शोभा कहाँ गयी? और कोमल वचन अब क्यों प्रवृत्त नहीं होते? धूप (आदि) विलेपन बाहर ही रहता, (शरीर के भीतर की) अशुचि गंधको कौन मिटा सकता है? अशुचि शरीर के कारण से (अज्ञानी जीव) अनुपम व शुद्ध-आत्मा की अवगणना करते हैं, एवं कृषि, कबाड़ीपन, वाणिज्यफल और सेवा के क्लेशों को सुखकर मानते हैं॥6॥

अब (वह विद्युच्चर) श्री मुनि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में स्थापन करने वाली आस्रव भावना भाने लगे। जीव के आश्रय से होने वाला तन, मन व वचन का योग (क्रिया) ही जो कर्मों के आगमन का द्वार है, वही आश्रव है। सकषाय जीव के अशुभ योग से उसका घना कर्मफल इस तरह आकर लग जाता है, जैसे कषाय (गोंद) से श्लिष्ट कपड़े में मंजीठका रंग खूब गाढ़ा हो जाता हैं जिस प्रकार दुर्बल राजा को शत्रुसेना के द्वारा, एवं मंद प्रकाश वाले दीपक को अंधकार के द्वारा घेर लिया जाता है, उसी प्रकार सकषाय जीव भी कर्मों से वेष्टित कर लिया जाता है, और अधर्म करके जीव दु:ख समुद्र में पड़ता है। अल्पकषाय वाले जीव का आस्रव शुभ बंध का कारण होता है, और वह कुगति और कुमनुष्य (अधम मनुष्य जाति) योनि (में जन्म होने) का निवारण करता है। शुभक्रिया के द्वारा कर्म परमाणुओं का संचय करने वाला जीव तीर्थंकर गोत्र को प्राप्त कर लेता है। सकषाय जीवका भाव (परिणाम) मिथ्यादर्शन से मैला होकर कुटिल हो जाता है, और प्रांजल

(शुभ) काय, वाक् व मन वाले अल्पकषायी जीव का भाव पुण्य (बंध) का निमित्त होता है॥7॥

परीषह को सहन करते हुए उन परमदिगंबर विद्युच्चर महामुनि को आस्रव को रोकने वाला संवर (भाव) उत्पन्न हुआ। इंद्रिय-वृत्तियों रूपी छिद्रों को दृढ़ता से ढंक दिया, जिससे नया कर्म प्रवेश भी नहीं कर सकता। जिस तरह कोई नावारूढ़ व्यक्ति जल में जाते हुए सैकड़ों छिद्रों से प्रवेश करते हुए जल को, छिद्रों को बंद करके रोक देता है, तो उसको तीर पर उतरने से कौन रोक सकता है? परन्तु यदि कोई मति का अंधा मोहित (मूढ़) होकर बैठा रहे (व छिद्रों को बंद नहीं करे), तो इसमें क्या भ्रांति है कि वह डूबकर विनाश को प्राप्त होगा? इस हेतु से कषाय के लिए अकषाय, राग के लिए विरति, क्रोध के लिए क्षांति, अज्ञान के लिए ज्ञान, लोभ के लिये संतोष, और मान के लिए अमान (मानहीनता, मार्दव भाव) रूपी निबंधन अर्थात् उपशम का उपाय करना चाहिए। उसी प्रकार अनशन रस् लोलुपता का निष्कासन करने वाला है, तथा प्रायश्चित प्रमाद को दूर करने वाला है। इस प्रकार जो कूर्माकार के समान अपने को संवृत कर आस्रवों से अपनी रक्षा नहीं करता, वह मानों वन में आग लगाकर पवन के सन्मुख मुँह करके सोता है॥8॥

फिर वह निर्जरा भावना करने लगे, जिससे जन्म, मरण व जरा दूर से ही निरस्त हो जाते हैं। उदित हुए (कर्मानुसार) शुभाशुभ फल भोगने चाहिये, और आसित (स्थित) अर्थात् अभी उदय में न आये हुए कर्मों की (उदीरणा-द्वारा) निर्जरा की जानी चाहिए। मोक्ष और बंध की विशेषताओं के अनुसार उनके मूलकारण रूप से भी कुशलमूल व अकुशलमूल, ऐसी दो प्रकार की जानी जाती है। नारकी जीवों को नरक दुख भोगने से और शेष अपुरुषार्थी (क्लीव) लोगों को दुःख सुख भोगने से निरंतर आर्त व रौद्र ध्यान पूर्वक जो निर्जरा होती है, वह अकुशल (मूल) है, तथा शरीर से दुःख का बोध होते हुए भी कायक्लेश करते हुए परीषहों को सहन करके जो निर्जरा की जाती है, और जो समताभाव से आलोचना है, (कर्मों के) उदय स्वभावानुसार (निर्द्वंद्व व निष्काम भाव से) जो शुभाशुभ का भोगना है, एवं रागद्वेष से रहित

निःशल्य भाव से जो सुख दुख की निर्जरा है, वह भली (कुशलमूल) है। पका फल नीचे गिरकर जिस प्रकार पुनः डंठल में नहीं लगता, उसी प्रकार जो कर्म निर्जरा द्वारा दूर कर दिया गया है, वह भी उस व्यक्ति को पुनः प्राप्त नहीं होता जो ज्ञान में अर्थात् ज्ञानाराधना में निरन्तर जागरूक (सावधान) रहता है॥9॥

फिर उनने लोक के स्वरूप (का चिंतन करने) में अपने मन को लगाया। यह लोक त्रिभुवन शुद्ध आकाश में परिस्थित है। यह चौदह राजू प्रमाणवाला है। तीनों लोक वातवलय से धारण किये हुए हैं। अधोलोक सात राजू प्रमाण है। उसमें अत्यंत दुःखदायक सात पृथिवियाँ हैं। पहली रत्नप्रभा में तीस लाख नरक बिल है और एक सागर आयु है (1)। (दूसरी) शर्करा प्रभा में पचीस लाख नरक (बिल) हैं, और आयुष्य तीन सागर है।(2)। तीसरी बालुकाप्रभा में पंद्रह लाख नरकबिल और सात सागर की अवधि (आयु) है (3)। चौथी पंकप्रभा में दस लाख नरकबिल और दससागर आयु है (4)। पांचवी धूमप्रभा में तीन लाख नरकबिल और सत्रह सागर आयु है (5)। छठीं तमः प्रभा में पांच कम एक लाख नरक बिल और आयुष्य बाईस सागर है (6) तथा सातवीं महातमःप्रभा में केवल पांच नरकबिल और आयु तैंतीस सागर होती है (7)। पहली पृथ्वी में शरीर सातधनुष व सवा तीन हाथ ऊँचा होता है। शेष सब पृथिवियों में नारकियों की ऊंचाई दुगुनी दुगुनी होती जाती है ॥10॥

मध्यलोक विस्तार में चतुर्दिक् एक राजू है, और सारा का सारा द्वीप व समुद्रों से मंडित है। सब द्वीपों के बीच में एक लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्य में सुमेरुपर्वत है जो कि दुगुने विस्तार वाले लवणोदधि से चारों दिशाओं में वलयाकार वेष्टित है। वहाँ हिमवनादि छह पर्वत है। गंगाप्रमुख चौदह नदियां हैं। देवकुरु व उत्तरकुरु के साथ निर्मित और भी चार भोगभूमि क्षेत्र स्थित हैं। पूर्व और अपर (पश्चिम) विदेह में कल्याणकारी व सुखकर चौथा काल सदैव एकरूप स्थित रहता है। भरत और ऐरावत दोनों क्षेत्रों में काल के उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी आरों का प्रवर्त्तन

होता है। हिमालय के मध्य से दक्षिण की ओर विजयार्द्ध (पर्वत) से होकर सागरपर्यंत बहने वाली गंगा व सिंधु इन दोनों नदियों से भारत वर्ष छह खंडों में विभक्त होकर विराजमान है और आकर में चाप चढ़ाये हुए धनुष के समान (अर्धचंद्राकार) माना जाता है। इस क्रम से द्वीपों से क्षेत्रों की संख्या दुगुनी है। फिर धातकी खंड और पुष्करार्द्ध की धुरी (मानुष्योत्तर पर्वत) के परे तिर्यंच और देवों का विशाल संचार क्षेत्र है॥11॥

ऊपर पांच राजू परिमाण मुरज के आकार से सोलह तथा चार विमानों से युक्त नव ग्रैवेयक हैं। (इन सबके) ऊपर सर्वार्थसिद्धि (नामक स्वर्ग) कहा गया। प्रथम दो स्वर्गों में दो सागर, तृतीय और चतुर्थ में सात सागर तथा ऊपर दो स्वर्गो में दस, चौदह, सोलह, अट्ठारह और बीस सागर आयु है। आरण और अच्युत तथा ग्रैवेयकों में क्रमशः बाईस सागर व उससे एक एक सागर बढ़ती हुई सुखाकर (सुखदायक) आयु है। ऊपर के चारों विमानों में एक समान तेंतीस सागर की आयु है। इन कल्पों में विषयसुख भोग सकने में समर्थ बारह वैमानिक देव होते हैं। दूसरे में दस प्रकार के भवनवासी देव हैं, और व्यंतर एकत्र रूप से आठ प्रकार के हैं पाँच प्रकार के ज्योतिष देव कहे गये हैं, इस प्रकार देवों के चार निकाय जाने गये हैं। सबसे ऊपर एक राजू-प्रमाण, लोकाग्र (सिद्धलोक) स्थित है। जो खुले हुए छाते के आकार का शोभायमान है। दर्शन, ज्ञान व चारित्ररूपी शरीर को धारण करने वाला अमल (कर्ममल रहित) व अकलंक सिद्ध पुरुष ही उसे प्राप्त करता है॥12॥

फिर वह मुनींद्र कर्मों को काटते हुए बोधिरूपी महान गुणकारी रत्न (बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा) का चिंतन करने लगे-बालुकासागर में पड़ी हुई हीरे की मणि की इच्छा करने पर उसे कौन पा सकता है? इसी प्रकार नाना योनियों से संकीर्ण तथा स्थावर व जंगम जीवों से भरे हुए इस संसार में विकलेंद्रिय जीवों का अतिशय बाहुल्य है। पंचेद्रिय शरीर बड़े कष्ट से मिलता है। वहाँ पर भी सींगों वाले एवं अन्य पशुओं तथा पक्षियों का ही बहुत्व है। किसी तरह बड़े कष्ट से मनुष्यत्व प्राप्त होता है। मनुष्यत्व मिलने पर (फिर किसी तरह) उच्च कुलपरंपरा, इंद्रियों की पूर्णता, एवं श्रुति (शास्त्र) संगम (संयोग) होता

है। और इन सब दुर्लभ वस्तुओं को उपलब्ध करके भी यदि कोई बुद्धिमान दशलक्षण धर्म को प्राप्त न कर सके तो उसका जन्म वैसे ही निरर्थक हुआ, जिस प्रकार चक्षुरहित निर्मल (सुंदर) मुख। और धर्म पाकर भी जो उसे नहीं पालता, वह मानों राख के लिए केशर को जलाता है। पूर्वोक्त प्रकार से रातदिन सोचना चाहिए, और दृढ़ सम्यक्त्ववृत्ति तथा दया व संयम रखते हुए यह भावना करनी चाहिए कि भव भव में परम जिन (अंतिम तीर्थकर महावीर) हमारे स्वामी (इष्टदेव) हों, व मेरा मरण समाधिपूर्वक हो ॥13॥

(14)

दशविध धर्म के अभ्यास में तत्पर वह श्रेष्ठ यति पुनः पुनः चिंतन करने लगे-दोष (अपराध) करने वालों के प्रति रोष का त्याग करना चाहिए। उत्तम क्षमा से धर्म को अलंकृत करना चाहिए। जातिमद आदि मान का अपहरण करनेवाली मार्दववृत्ति धर्म का आभूषण है। काय, वाक् और मन का अवक्र (निष्कपट, सरल) योग आर्जवभाव में ही होता है और उसी में धर्म स्थित रहता है। पात्र आदि परिग्रह के प्रति लोभ त्यागने वाले और शुद्धाचार परायण व्यक्ति का ही शौच धर्म सच्चा होता है। सत्पुरुषों के साथ साधु संभाषण ही सत्यधर्म है, जो अधर्म का विनाश करने वाला है दुर्दम इंद्रिय लोलुपता का निरोध करना यह संयम नामका धर्म है, जो मन का निग्रह करने वाला है। कर्मक्षय के निमित्त निरपेक्ष (निष्काम) भाव से तप का संचय करने वाला व्यक्ति ही पापों का क्षय करता है। शील से विभूषित व्यक्तियों को जो योग्य दान दिया जाता है, उसे त्यागधर्म कहा जाता है। 'यह मेरा है' इस मति को छोड देना परिवर्जित-किंचित्व अर्थात आकिंचन्य धर्म कहलाता है। जो नव विध ब्रह्मचर्य का रक्षण करता है, वह धर्म (रूपी पर्वत के शिखर) पर चढ़ कर शिववधु को कटाक्षों से देखता हैं, अर्थात् मोक्षलक्ष्मी से परिणय करता है। जब तक जीव दशलक्षण धर्मों का अनुगामी होकर कर्मों का उन्मूलन नहीं करता, तब तक मिथ्यादर्शन से छला हुआ वह जीव शुद्ध चारित्र अर्थात् शुद्ध आत्मस्वभाव में लीनता में कैसे आनंदित हो? ॥14॥

इस प्रकार अनुप्रेक्षाओं की भावना करते हुए, निर्मल (धर्म) ध्यान में अपने चित्त को स्थापित करते हुए, अपने आत्मा को देह से भिन्न मानते हुए, निरवधि-नि:सीम शाश्वत (मोक्ष) सुख को समझते हुए अर्थात् उसी का ध्यान करते हुए, एवं आये हुए परीषह-दु:ख के वशीभूत न होने वाले तथा कषायरहित श्री विद्युच्चर महामुनि का जैसे-जैसे भूतों का वह समुदाय रुधिर पान करता, वैसे-वैसे मुनि अपना भवकलह अर्थात संसार में बार-बार जन्म-मरण का झगड़ा, मिटा हुआ मानते। मांस के तड़-तड़ करके टूटने को वह महामुनि कर्मोपाधि के खंड-खंड होने के समान देखते; और कड़-कड़ करके खाये जाते हुए हाड़ों को वह भग्न किये जाते हुए काष्ठादि पदार्थों के समान जानते थे, इस प्रकार वह शुद्धसत्व अर्थात् शुद्धात्मा मुनि (शुद्धभावों से) समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुए। वहाँ उनका हस्तप्रमाण देह हुआ, और तेंतीस सागर की आयु, जहाँ से च्युत होकर जीव समस्त रति अर्थात् राग (एवं द्वेष) का नाश करके एक बार ही जन्म लेकर पंचमगति अर्थात् मोक्ष को पा लेता है। इस क्रम से आर्ष परंपरा से जैसा जाना, वैसा जंबूस्वामी चारित्र को पूरा किया। श्रोता पुरुषों को तथा पाठकों को और सम्यग्दृष्टियों के चतुर्वर्ण संघ की गोष्ठी के लिए महावीर भगवान् सौख्य परंपरापूर्वक परमफल (मोक्षप्राप्ति) रूपी कल्याण प्रदान करें ॥15॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्त के पुत्र वीर-कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार वीर-रसात्मक महाकाव्य में 'बारह अनुप्रेक्षाओं की भावना से श्री विद्युच्चर महामुनि का सर्वार्थसिद्धि-गमन नामक एकादश संधि समाप्त॥

क्र.	पुस्तक का नाम
	प्रथमानुयोग शास्त्र
1	नंगानंग कुमार चारित्र
2	मौन व्रत कथा
3	व्रताधीश्वर रोहिणी व्रत
4	प्रभंजन चारित्र
5	चारूदत्त चारित्र
6	सीता चारित्र
7	सप्त व्यसन चारित्र
8	बीर वर्द्धमान चारित्र
9	वेशभूषण कुलभूषण चारित्र
10	चित्रसेन पदमावती चारित्र
11	सुदर्शन चारित्र
12	सुरसुन्दरी चारित्र
13	करकंडु चारित्र
14	नागकुमार चारित्र
15	भद्रबाहु चारित्र
16	हनुमान चारित्र
17	महापुराण भाग 1
18	महापुराण भाग 2
19	श्री जम्बूस्वामी चारित्र
20	यशोधर चारित्र
21	व्रत कथा संग्रह
22	राम चरित भाग 1
23	राम चरित भाग 2
24	राम चरित संयुक्त प्रकाशन
25	आराधना कथा कोष भाग 1
26	आराधना कथा कोष भाग 2
27	आराधना कथा कोष भाग 3
28	शान्ति पुराण भाग 1
29	शान्ति पुराण भाग 2
30	सम्यक्त्व कौमुदी
31	धर्मामृत भाग 1
32	धर्मामृत भाग 2
33	पुण्यास्रव कथा कोष भाग 1
34	पुण्यास्रव कथा कोष भाग 2
35	पुराण सार संग्रह भाग 1
36	पुराण सार संग्रह भाग 2
37	सुलोचना चारित्र
38	गौतम स्वामी चारित्र
39	अमरसेन चारित्र
40	श्रेणिक चारित्र
41	महीपाल चारित्र
42	जिनदत्त चारित्र
43	सुभौम चक्रवर्ती चारित्र
44	बेलना चारित्र
45	धन्यकुमार चारित्र
46	सुकुमाल चारित्र
47	क्षत्रचूड़ामणि जीवंधर चारित्र
48	चन्द्रप्रभ चारित्र
49	कोटिभट् श्रीपाल चारित्र
50	महावीर पुराण
51	बसंथ चारित्र
52	पांडव पुराण
53	सुशीला उपन्यास
54	भरतेश वैभव
55	पार्श्वनाथ पुराण
56	त्रिवेणी
57	मल्लिनाथ पुराण
58	विमलनाथ पुराण
59	चौबीसी पुराण
60	पदम पुराण
61	सिंदूर त्रकरण

काव्य शास्त्र

1	जैन की जिन्दगी
2	हीरों का खजाना
3	कल्याणी
4	हाइकु
5	क्षरातीत अधर
6	न मैं चुप हूँ न मैं गाता हूँ
7	मुक्ति दूत के मुक्तक

विधान-पूजन साहित्य

1	शान्ति नाथ विधान
2	अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
3	पंचपरमेष्ठी विधान
4	श्री शान्तिनाथ, भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
5	संभवशरण महार्चना
6	याग मंडल विधान
7	श्री महावीर विधान
8	श्री भक्तामर विधान
9	अजितनाथ विधान
10	णमोकार महार्चना
11	दु:खों से मुक्ति, सहस्त्रनाम विधान
12	चन्द्रप्रभ विधान
13	श्रद्धा के अंकुर
14	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
15	श्री जम्बूस्वामी विधान
16	श्री वासुपूज्य विधान
17	श्री नंदीश्वर विधान
18	श्री पदमप्रभ विधान
19	श्री संभव नाथ विधान
20	निग्रंन्थ विधान
21	पूजा अर्चना

प्रवचन

1	मीठे प्रवचन भाग-1
2	मीठे प्रवचन भाग-2
3	मीठे प्रवचन भाग-3
4	मीठे प्रवचन भाग-4
5	मीठे प्रवचन भाग-5
6	दशामृत
7	श्रुत निर्झरी
8	तैयारी जीत की
9	गुरुत्तं भाग-1
10	गुरुत्तं भाग-2
11	गुरुत्तं भाग-3
12	गुरुत्तं भाग-4
13	गुरुत्तं भाग-5
14	गुरुत्तं भाग-6
15	न मिटना बुरा न पिटना
16	ठहरों ऐसे चलो
17	जीवन का सहारा
18	सीप का मोती
19	चुको मत
20	खोज क्यों रोज रोज
21	जय बजरंगबली
22	शायद यही सच है
23	सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की शौर्य कथा
24	नारी का धवल पक्ष
25	आईना मेरे देश का
26	उत्तम क्षमा
27	मान महा विष रूप
28	रंचक दगा बहुत दुख:दानी
29	लोभ पाप को बाप बखाना
30	सतवादी जग में सुखी
31	जिस बिना नही जिनराज सीजे
32	तप चाहे सुरराय
33	निज हाथ दीजे साथ लीजे
34	परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो
35	उत्तम ब्रहमचर्य
36	वसुनंदी उवाच प्रवचनांश
37	धर्म की महिमा
38	सफलता के सूत्र
39	आज का निर्णय
40	गुरू कृपा
41	गुरूवर तेरा साथ
42	स्वाति की बूंद
43	गागर में सागर
44	खुशी के आंसू
45	वसु विचार
46	एक हजार आठ
47	सर्वोदयी नैतिक धर्म